भाकृअनुप
ICAR

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

स्मारिका

तकनीकी ज्ञान-स्वस्थ एवं समृद्ध किसान

कृषक-वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस

5 अक्तूबर, 2019

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल - 132001, भारत

नाबार्ड

सहयोगी संस्था

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

National Bank for Agriculture and Rural Development

Our Mission: Promotion of sustainable and equitable agriculture and rural prosperity through effective credit support, related services, institution development and other innovative initiatives.

- **Research and Development on matter of importance pertaining to agriculture, agricultural operations and rural development including the provision of training and research facilities.**
- **Consultancy services related to Agriculture & Rural Development through subsidiary (NABCONS).**

Our Functions:

- Provide Credit/Refinance for production credit and investment credit to eligible banks and financing institutions.
- Development functions undertaken through Farm Sector Promotion Fund (FSPF), Financial Inclusion Fund (FIF), Watershed Development Fund (WDF), Tribal Development Fund (TDF) Rural Infrastructure Development Fund,(RIDF) etc.
- Supervisory functions in respect of Cooperative Banks and Regional Rural Banks.

Head Office Plot C-24, 'G' Block Bandra Kurla Complex, Bandra (East) Mumbai - 400 051

स्मारिका

तकनीकी ज्ञान-स्वस्थ एवं समृद्ध किसान

कृषक-वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस-2019

सही उद्धरण : भूमेश कुमार, अनिल खिप्पल, अमित कुमार शर्मा, चरण सिंह, पूनम जसरोटिया एवं अजय वर्मा (2019). स्मारिकाः तकनीकी ज्ञान–स्वस्थ एवं समृद्ध किसान। भाकृअनुप–भारतीय गेंहू एवं जौ अनुसंधान संस्थान। पृष्ठ 145

प्रकाशक :
डॉ ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक, भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल–132001 (हरियाणा)

संपादक मंडल :
भूमेश कुमार
अनिल खिप्पल
अमित कुमार शर्मा
चरण सिंह
पूनम जसरोटिया
अजय वर्मा

प्रतियाँ : 3000

मुद्रक :
एरोन मीडिया
यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12,
करनाल–132001, हरियाणा (भारत)
फोन न. 9896433225, 9996547747

नोट : इस पुस्तक में प्रकाशित सभी लेखों में सम्बन्धित लेखकों के उनके निजी विचार हैं। किसी भी विरोधाभास की स्थिति में प्रकाशक तथा सम्पादक मंडल किसी भी रूप में जिम्मेदार नहीं होंगे।

कृषक सहायता टोल फ्री दूरभाष नं. – 1800 180 1891

www.iiwbr.org

नरेन्द्र सिंह तोमर
Narendra Singh Tomar

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF AGRICULTURE
& FARMERS WELFARE
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

बड़े हर्ष की बात है कि दिनांक 5 अक्तूबर, 2019 को करनाल स्थित भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान में किसानों के लिए एक दिवसीय कृषक–वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस का आयोजन किया जा रहा है। मैं इस अवसर पर भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों को उनके इस प्रयास के लिए बधाई देता हूँ। वर्ष 2018–19 के दौरान भारत में गेहूँ के उत्पादन का कीर्तिमान स्थापित हुआ है जो कि अत्यन्त सन्तोष एवं प्रसन्नता का विषय है। इस उपलब्धि के लिए सभी गेहूँ शोधकर्ता एवं विशेष रूप से देश के किसान बधाई के पात्र हैं। भारतवर्ष में पिछले कुछ दशकों के दौरान गेहूँ उत्पादन के क्षेत्र में हुए अभूतपूर्व विकास का खाद्य आपूर्ति एवं देश की समृद्धि में विशेष योगदान रहा है। यद्यपि बढ़ती जनसंख्या, घटते संसाधन एवं बदलती जलवायु के परिपेक्ष्य में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना अभी भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि गेहूँ से जुड़े समुदायों को प्राथमिकता प्रदान करके भविष्य की चुनौतियों से निपटना एवं कृषि क्षेत्र को समृद्ध बनाना सम्भव है।

किसानों को प्रेरित और जागरूक करने में वैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुझे आशा है कि इस कार्यशाला में वैज्ञानिकों द्वारा किसानों को वर्तमान एवं भविष्य में आने वाली कृषि सम्बंधित समस्याओं एवं उनके समाधान की विस्तृत जानकारी दी जायेगी। इस कार्यशाला के उपलक्ष्य पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है। मैं आशा करता हूँ कि स्मारिका के माध्यम से किसानों को गेहूँ एवं जौ के साथ–साथ अन्य फसलों के बारे में भी समुचित जानकारियां प्राप्त हो सकेंगी।

इस कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए मैं आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।

(नरेन्द्र सिंह तोमर)

सत्यमेव जयते

त्रिलोचन महापात्र, पी.एच.डी.

एफ.एन.ए., एफ.एन.ए.एस.सी., एफ.एन.ए.ए.एस
सचिव एवं महानिदेशक

TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.

FNA, FNASc, FNAAS
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 110 001
Tel. : 23382629; 23386711 Fax : 91-11-23384773
E-mail : dg.icar@nic.in

संदेश

अभी भी कृषि हमारे देश की जीवन रेखा बनी हुई है और देश का समग्र विकास कृषि क्षेत्र का विकास किए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। देश की खाद्य सुरक्षा को सतत आधार पर सुनिश्चित करने में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए सफल अनुसंधान परिणामों, उन्नत तकनीकों, कम समय में अधिक उपज देने वाली एवं जलवायु अनुकूल किस्मों तथा उन्हें किसानों तक पहुंचाने का उल्लेखनीय योगदान है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में कृषि की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान में भारत सरकार का मुख्य उद्देश्य खाद्यान्न उत्पादन की दर को बनाये रखना एवं वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने पर केन्द्रित है।

हमारी खाद्य श्रृंखला में गेहूँ एक प्रमुख फसल है। परिषद् द्वारा सफल कृषि अनुसंधान परिणामों व उन्नत तकनीकों के परिणामस्वरूप गेहूँ की अग्रणी किस्म एच डी 2967 की खेती देश के गेहूँ बुवाई क्षेत्र में 30 प्रतिशत से भी अधिक कृषि रकबे में की जाती है। वर्ष 2018–19 के दौरान भारत में गेहूँ उत्पादन का कीर्तिमान स्थापित हुआ है और इस उपलब्धि के लिए हमारे वैज्ञानिक एवं किसान बधाई के पात्र हैं। पिछले कुछ दशकों में गेहूँ उत्पादन में हुई गुणात्मक प्रगति के कारण खाद्य आपूर्ति सुनिश्चित करने में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। हालांकि, लगातार बढ़ रही जनसंख्या, घटते प्राकृतिक संसाधन एवं जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप खाद्य उत्पादन के लक्ष्यों को पूरा करना अभी भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

इस दिशा में भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान (ICAR-IWBR), करनाल द्वारा दिनांक 5 अक्तूबर, 2019 को कृषक–वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस का आयोजन एक सराहनीय प्रयास हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वैज्ञानिकों एवं किसानों के परस्पर सहयोग से भविष्य की चुनौतियों से निपटना एवं कृषि क्षेत्र को और अधिक समृद्ध बनाना संभव है। इस अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकशित की जाएगी जिसके माध्यम से किसानों व अन्य हितधारकों को गेहूँ व अन्य फसलों की समुचित जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी।

कार्यशाला एवं स्मारिका की सफलता हेतु मेरी शुभकामनाएं !!!

त्रि. महापात्र

(त्रिलोचन महापात्र)

डा. आनन्द कुमार सिंह
उपमहानिदेशक (उद्यान एवं फसल विज्ञान)
Dr. Anand Kumar Singh
Deputy Director General
(Horticulture and Crop Science)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डा. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली–110001
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI BHAWAN, DR. RAJENDRA PRASAD ROAD, NEW DELHI-110001

संदेश

अत्यंत हर्ष का विषय है कि भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा दिनांक 5 अक्तूबर, 2019 को एक दिवसीय कृषक–वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस आयोजित किया जा रहा है। इस कार्यशाला मे रबी की फसलों के विभिन्न पहलुओं पर किसानों को नवीनतम जानकारी दी जायेगी। देश की लगातार बढ़ती आबादी तथा घटती कृषि जोत के कारण आज हमारी खेती कठिन प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रही है। एक तरफ जहाँ प्रति इकाई जमीन पर उत्पादन एवं आय बढ़ाने की आवश्यकता है, वही दूसरी ओर मिट्टी एवं भूजल की सेहत एवं वातावरण को बचाने की जिम्मेदारी भी हमारे किसानों के कन्धों पर है। मैं आशा करता हूँ कि हमारे किसान भाई संस्थान के वैज्ञानिकों के साथ मिलकर उन्नत एवं पर्यावरण हितैषी तकनीकियों को अपनाकर कृषि उपज एवं आय में बढ़ोत्तरी करके राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में भी अपना अमूल्य योगदान देंगे। इस कार्यशाला में एक कृषक–वैज्ञानिक संवाद कार्यक्रम भी रखा गया है जिसमें किसानों को कृषि सम्बंधित विभिन्न समस्याओं का समाधान पाने का मौका मिलेगा।

इस अवसर पर किसान भाइयों के लिए एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे विश्वास है की यह स्मारिका किसानों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

मैं इस कार्यक्रम की सफलता के लिए हार्दिक कामना करता हूँ।

(आनन्द कुमार सिंह)

Ph. : (Off.) 23382545 Fax : 23097003 E-mail : ddgcs.icar@nic.in

डा. दिनेश कुमार
सहायक महानिदेशक
(खाद्यान्न एवं चारा फसलें)

Dr. Dinesh Kumar
Assistant Director General
(Foods and Fodder Crops)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डा. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली–110001

INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI BHAWAN, DR. RAJENDRA PRASAD ROAD, NEW DELHI-110001

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष एवं गर्व का विषय है कि भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 5 अक्तूबर, 2019 को किसानों के लिए एक दिवसीय कृषक–वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस का आयोजन किया जा रहा है। गेहूँ खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण फसल है जबकि जौ अपने औषधीय गुणों एवं प्रतिकूल मृदा तथा जलवायु की सहनशीलता के लिए जाना जाता है। मुझे आशा है कि इस कार्यशाला में किसानों को गेहूँ एवं जौ की नई किस्मों एवं उनके उत्पादन की तकनीकों से अवगत कराया जाएगा। ऐसी कार्यशालाएं किसानों को फसल विशेषज्ञों के साथ सीधे संवाद एवं उनकी समस्याओं को सुलझाने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती हैं। मेरा विश्वास है कि इस कार्यशाला में भाग ले रहे किसानों को जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों तथा किसानों की आय बढ़ाने में गेहूँ एवं जौ के योगदान के बारे में अवगत कराया जायगा।

इस अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे आशा है कि इस स्मारिका के माध्यम से किसानों को गेहूँ एवं जौ के साथ–साथ अन्य फसलों और खेती सम्बंधित अन्य व्यवसायों पर भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

मैं इस कार्यशाला के सफल आयोजन की कामना करता हूँ।

डा. दिनेश कुमार

डा. देवेन्द्र कुमार यादव
सहायक महानिदेशक (बीज)

Dr. Devendra Kumar Yadav
Assistant Director General (Seeds)

भाकृअनुप
ICAR

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डा. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली–110001

INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI BHAWAN, DR. RAJENDRA PRASAD ROAD, NEW DELHI-110001

संदेश

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की दो–तिहाई जनसँख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर करती है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान गेहूँ उत्पादन के क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व प्रगति का देश की खाद्य आपूर्ति एवं समृद्धि में विशेष योगदान रहा है। हर्ष की बात है कि दिनांक 5 अक्तूबर, 2019 को करनाल स्थित भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान में किसानों के लिए एक दिवसीय कृषक–वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर किसानों को नई किस्मों के बीज वितरण के साथ–साथ विशेषज्ञों द्वारा नयी तकनीकियों की जानकारी भी दी जाएगी। मैं भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों को उनके इस प्रयास के लिए बधाई देता हूँ।

इस कार्यशाला के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है। स्मारिका के माध्यम से किसानों को गेहूँ एवं अन्य फसलों के बारे में समुचित एवं व्यवहारिक जानकारियां मिल सकेंगी।

इस कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए मैं आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।

देवेन्द्र कुमार यादव

(देवेन्द्र कुमार यादव)

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
पोस्ट बॉक्स 158, अग्रसेन मार्ग, करनाल-132001, हरियाणा
ICAR-Indian Institute of Wheat and Barley Research
(Indian Council of Agricultural Research)
Post Box 158, Agrasain Road, Karnal-132001, Haryana

डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक
Dr. G.P. Singh
DIRECTOR

संदेश

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, कृषि के क्षेत्र में भारत का एक अग्रणी संस्थान है। अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ एवं जौ सुधार परियोजना के माध्यम से देश के विभिन्न हिस्सों में नई उत्पादन तकनीकियों एवं उन्नत किस्मों का सफलतापूर्वक प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है। शोध कार्य के साथ–साथ यह संस्थान किसानों के कल्याण के लिए सतत् प्रयास करता रहा है जिसके अंतर्गत किसान मेलों, किसान गोष्ठी एवं प्रक्षेत्र प्रदर्शनों के माध्यम से किसान भाईयों से सीधे संवाद स्थापित करना शामिल है। इस वर्ष भी यह संस्थान किसानों के हितों के लिए दिनांक 5 अक्तूबर 2019 को एक दिवसीय कृषक–वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस का आयोजन करने जा रहा है।

अभी हाल ही में संस्थान द्वारा गेहूँ एवं जौ की कई नवीनतम किस्में विकसित की गई हैं मुझे उम्मीद है कि ये किस्में गेहूँ एवं जौ का उत्पादन बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगी। इस अवसर पर गेहूँ की नयी किस्मों के बीजों का वितरण सीधे किसानों को करने का हमारा प्रयास रहेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसे आयोजनों से किसानों की कृषि आमदनी बढ़ाने में मदद मिलेगी। इस अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है। जिसमें प्रकाशित लेखों से किसान भाइयों को कृषि सम्बंधित व्यवहारिक जानकारियां मिल सकेगीं।

(ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह)

सम्पादकीय

भारत एवं विश्व के परिदृश्य में खाद्यान्न फसलों में गेहूँ का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। खाद्यान्न सुरक्षा एवं पोषण सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी गेहूँ की फसल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में इस फसल की खेती सभी प्रमुख राज्यों में की जाती है। सिन्धु घाटी का मैदानी भू–भाग गेहूँ की खेती के लिए काफी उपयुक्त पाया गया है। हाल के वर्षों में पर्यावरण में हो रहे बदलाव के बावजूद वर्ष 2018–19 के दौरान अब तक का सर्वाधिक गेहूँ का उत्पादन 102.19 मिलियन टन रहा है। इससे यह साफ जाहिर है कि हमारे देश में बदलते जलवायु परिवेश के लिए उपयुक्त किस्में व तकनीकियाँ हैं जिनके अंगीकरण द्वारा किसान अच्छी उपज ले सकते हैं। आज कृषि के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती अवशेष प्रबंधन की है। जिसके प्रबंधन के लिए हैप्पी/ट्रर्बो सीडर मशीन काफी कारगर साबित हुई है और सरकार भी इसे लोकप्रिय बनाने के लिए अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से अनुदान दे रही है। संसाधन संरक्षण द्वारा गेहूँ उत्पादन को अधिकाधिक श्रेय देने के लिए जीरो टिलेज, मेंड़ पर बुआई, रोटरी डिस्क ड्रील से बुआई, लेजर लैंड लेवलर से भूमि का समतलीकरण, रीपर से भूसा बनाना, स्ट्रा चौपर, स्ट्रा बेलर, रीपर वाईंडर आदि मशीनों के प्रयोग को प्रचारित/प्रसारित किया जा रहा है।

गेहूँ एवं जौ उत्पादन की तकनीकों को संस्थान लगातार श्रेय देता आ रहा है तथा उनका किसानों के खेतों पर उपज व आर्थिक लाभ का मूल्यांकन भी करता आ रहा है। **कृषक वैज्ञानिक कार्यशाला एवं बीज दिवस** भी एक ऐसा मंच है जो किसानो को संस्थान की तकनीकों से अवगत होने का मौका देता है तथा वैज्ञानिकों को किसानों के साथ सीधा संवाद स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

''स्मारिका'' का संपादक मंडल सभी किसानों का आभारी है जिन्होने इस आयोजन में असीम रूची दिखाई है और इसे सफल बनाया है।

''इस कार्यशाला की कार्यवाही एवं स्मारिका के प्रकाशन के लिए राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की अनुसंधान और विकास निधि से वित्तीय सहायता प्राप्त हुई हैं जिसके लिए हम नाबार्ड के प्रति आभार व्यक्त करते हैं''

शुभकामनाओं सहित !!!

संपादक मंडल

विषय सूची

क्र.सं.	शीर्षक एवं लेखक	पृ.सं.
	आमंत्रित लेख	
1.	तकनीकी ज्ञानः स्वस्थ एवं समृद्ध किसान अनुज कुमार, भूमेश कुमार, अनिल खिप्पल, सत्यवीर सिंह, चरण सिंह, राजपाल मीणा, लोकेन्द्र कुमार, अमित शर्मा, सेन्दिल आर एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह	1
2.	कृषि उन्नति में सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम सुनील कुमार, पूनम कश्यप, अनिल खिप्पल, आजाद सिंह पंवार, अमित कुमार, प्रकाश चन्द घासल, ललित, कृष्ण मीणा, चेतन कुमार जी एवं जयराम चौधरी	4
3.	गेहूँ की पैदावार और लाभ बढ़ाने के तरीके रमेश कुमार शर्मा, राजेन्द्र सिंह छोकर, सुभाष चन्द्र गिल, राज पाल मीणा, अंकिता झा, राम कुमार सिंह, नीरज कुमार एवं निधि कम्बोज	7
4.	जैविक खेती में खरपतवार प्रबंधन अमित कुमार, प्रकाश चन्द घासल, देबाशीष दत्ता, अमृत लाल मीणा, ललित कृष्ण मीणा, चेतन कुमार जी, सुनील कुमार, जयराम चौधरी, कमलेश कुमार एवं रंजना	13
5.	लेजर लेवलर मशीन से भूमि समतलन एवं रख–रखाव हिमांशु पांडेय, मुकेश कुमार सिंह एवं घनश्याम तिवारी	17
6.	फसल अवशेष प्रबन्धन की चुनौतियाँ एवं उपाय निशा कटारिया, दिशा काम्बोज, शारीक अली, सतीश कुमार एवं चन्द्र नाथ मिश्र	20
7.	हरे चारे का परिरक्षण सतपाल, डी.एस. फोगाट, नीलम एवं अनिल खिप्पल	22
8.	अमरूद आधारित मूल्यवर्धित उत्पादः एकीकृत बागवानी सम्मिलित प्रणालियों में ग्रामीण महिलाओं हेतु आय सृजन का स्रोत निशा वर्मा, अमित नाथ, आजाद सिंह पँवार, महेन्द्र पाल सिंह एवं पूनम कश्यप	24
9.	दलहनी फसलों का पोषकीय महत्व भूपेन्द्र कुमार एवं सरिता जोशी	26
10.	जौ उत्पादन में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन का प्रभाव सत्यवीर सिंह, अनिल खिप्पल, मंगल सिंह, अनुज कुमार, सेन्धिल आर, दिनेश कुमार, लोकेन्द्र कुमार, अजीत सिंह खरब, रमेश चन्द एवं जी.पी. सिंह	28
11.	मछली पालन सह सब्जी उत्पादन – रोजगार का जरिया आशिष कुमार प्रुष्टि, पूनम कश्यप, सुनील कुमार, आजाद सिंह पँवार एवं जयराम चौधरी	31
12.	मधुमक्खी पालन प्रद्युम्न भटनागर, जय नारायण भाटिया, फतेह सिंह, प्रेम लता एवं सूबे सिंह	33
13.	कृषि उपकरणों का चयन एवं रखरखाव नीरज कुमार, आर. के. शर्मा, एस. सी. त्रिपाठी, एस. सी. गिल, राजेन्द्र सिंह छोकर, राजपाल मीणा, अंकिता झा एवं निधि कम्बोज	38
14.	जरबेरा के फूलों की खेती हेमंत कुमार सिंह एवं अनुपम आदर्श	41
15.	सरसों का बीज उत्पादन भूपेन्द्र कुमार	43
16.	मक्का की फसल में फाल आर्मी वर्म कीट प्रबंधन प्रमोद गुप्ता एवं योगिता घरडे	46
17.	शिशु मक्का (बेबी कॉर्न) की वैज्ञानिक खेती सुबोध कुमार	48
18.	तोरिया (लाही) की वैज्ञानिक खेती जे.पी. सिंह एवं सुबोध कुमार	50
19.	भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए गेहूँ की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताएँ चंद्र नाथ मिश्र, अमित शर्मा, सतीश कुमार, शारिक अली, ज्ञानेंद्र सिंह एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह	52
20.	बैंगन का संकर बीज का उत्पादन लीला भट्ट, एम.के. नौटियाल एवं अपर्णा	55
21.	ब्रायलर फार्म का प्रबन्धन डी.के. सिंह	58

22. पर्यावरण प्रदूषण के कृषि पर दुष्प्रभाव 62
संजीव कुमारी, लोकेन्द्र कुमार, अनिल खिप्पल, ओमप्रकाश अहलावत एवं अमित शर्मा
23. चना की वैज्ञानिक खेती 63
जे.पी. सिंह एवं सुबोध कुमार
24. मसूर की वैज्ञानिक खेती 65
सुबोध कुमार एवं जे.पी. सिंह
25. अमरुद के बाग की स्थापना एंव प्रबन्धन 66
लाल चन्द, आर के तिवारी, शुकुमार तरीया, संग्राम चव्हाण, आशा राम, पवन सैनी एंव अमित गोस्वामी
26. जैविक खेती के प्रमुख घटक 69
कामिनी कुमारी
27. जलवायु परिवर्तन का गेहूँ उत्पादन पर प्रभाव 75
दीपक, चरण सिहं, अरूण गुप्ता, विकास गुप्ता, भूमेश कुमार एंव ज्ञानेन्द्र सिहं
28. जौ के विभिन्न उपयोग 77
दीपक, चरण सिंह, अरूण गुप्ता, अनुज कुमार, दिनेश कुमार, लोकेन्द्र कुमार अजीत सिंह खरब एंव जी पी सिंह
29. जौ की सस्य क्रियाएं 79
विनोद कुमार
30. मध्य भारत में गेहूँ की नई लाभदायक किस्में 81
अनिल कुमार सिंह, एस. व्ही. साई प्रसाद एवं दिव्या अंबटी
31. पौधा किस्म और कृषक अधिकार सरक्षंण अधिनियम 85
चरण सिहं, अरूण गुप्ता, दीपक, विनित कुमार, भूमेश कुमार, विकास गुप्ता, ज्ञानेन्द्र सिहं एंव जी पी सिहं
32. संरक्षित कृषि –बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का आधुनिक विकल्प 88
निधि कम्बोज, आर.के. शर्मा, आर.एस. छोकर, सुभाष चंद्र गिल, एस.सी. त्रिपाठी, राज पाल मीना, विकास जून, संदीप कुमार एवं दिनेश चौधरी
33. गन्ना की फसल में हानिकारक कीटों की पहचान, नुकसान पहुँचाने के लक्षण एवं उनका प्रबंधन 91
महासिंह जागलान एवं अश्वनी कुमार
34. प्रोबायोटिक के उपयोग द्वारा पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता में वृद्धि 97
विकाश कुमार एवं प्रकाश पाटिल
35. गेहूँ का सहभागी गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन 99
के.के. सिंह
36. छत्तीसगढ़ में देर से बुवाई हेतु गेहूँ उत्पादन तकनीक 104
दिनेश पाण्डेय, अजय प्रकाश अग्रवाल एवं माधुरी ग्रेस मिंज
37. बागवानी एवं सब्जियों में जल संरक्षण प्रौद्योगिकियों का प्रयोग 107
भूपेन्द्र कुमार
38. मैं हूँ ड्रैगन फ्रूट (Dragon fruit) 109
सुरेन्द्र सिंह एवं मंगल सिंह
39. जौ की प्रमुख बीमारियां एवं उनकी रोकथाम 111
अंजू शर्मा, रवि शेखर कुमार, पालिका शर्मा, कृष्ण गोपाल, ईश्वर सिंह, प्रेम लाल कश्यप, पूनम जसरोटिया, सुधीर कुमार एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह
40. जैविक खेती में फसल सुरक्षा 113
पूनम जसरोटिया, जयंत यादव, प्रेम लाल कश्यप एवं सुधीर कुमार
41. गेहूँ जानकारी : किसानों के लिए एंड्राइड ऐप 118
अजय वर्मा एवं जी पी सिंह
42. खुम्ब (मशरुम) के पोषक गुण 119
ओ. पी. अहलावत, लोकेन्द्र कुमार, अनिल खिप्पल, सोनिया श्योराण एवं भूमेश कुमार
43. मखानाः पौषक तत्वों एवं औषधीय गुणों का खजाना 122
लोकेन्द्र कुमार, ओमप्रकाश अहलावत, अनिल खिप्पल, भूमेश कुमार, अनुज कुमार एवं चरण सिंह
44. वर्तमान परिदृष्य में जीरो बजट प्राकृतिक खेती की संभावनाए एवं चुनौतियां 125
सुरेन्द्र सिंह, रतन तिवारी, निशु राघव एवं रुचिका शर्मा
45. भारत में गेहूँ की उन्नत किस्में एवं प्रबंधन 130
ऋषि पाल गंगवार, स्नेहांशु सिंह, अमनदीप कौर, सुरेश कुमार, अमित कुमार शर्मा एवं संजय कुमार सिंह
सारांश 133

आमंत्रित लेख

तकनीकी ज्ञान: स्वस्थ एवं समृद्ध किसान

अनुज कुमार, भूमेश कुमार, अनिल खिप्पल, सत्यवीर सिंह, चरण सिंह, राजपाल मीणा, लोकेन्द्र कुमार, अमित शर्मा, सेन्दिल आर. एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

ज्ञान के बगैर जीवन के किसी भी क्षेत्र में अच्छे प्रदर्शन और सफलता की कोरी परिकल्पना नहीं की जा सकती है और आधुनिक कृषि की व्याख्या तकनीकी ज्ञान के बिना अधूरा है। ज्ञान और कौशल आज की कृषि का पर्याय बन चुके हैं। इनके बिना लाभप्रद कृषि संभव नहीं है साथ ही संसाधनों का समुचित इस्तेमाल भी नहीं हो सकता है। वर्तमान में भारत में 14 करोड़ किसान हैं जिनकी जीविका का मुख्य जरिया कृषि और उससे जुड़े उद्यम हैं। कृषि क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा और मूल्य निर्धारण की व्यवस्था की वजह से परिशुद्ध कृषि आज की आवश्यकता बन गयी है। लगातार बढ़ रहे कृषि आदानों की कीमतों और विपणन में बिचौलियों की भूमिका ने कृषि की लाभप्रदता को हमेशा कठघरे में रखा है। आज के सन्दर्भ में अगर बात की जाए तो खेती ज्ञान आधारित और कौशल आधारित होती जा रही है। सत्तर के दशक में प्राथमिकता तकनीकों को किसानों के खेतों तक पहुँचाने की थी तथा उनके परिणामों से किसानों को अवगत करते हुए उनके अंगीकरण की थी। अस्सी और नब्बे के दशक में कृषि तकनीकों के विकास का ध्येय प्रति इकाई उत्पादकता का था। फिर इक्कीसवी सदी में कृषि को नए नजरिये से देखने का दौर शुरू हुआ जिसमें प्रतिदिन आमदनी को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई। किसानों को अपने सभी संसाधनों (मृदा, जल, उर्वरक, पूँजी, श्रम, मशीन आदि) की उपयोग दक्षता को बढ़ाने और समुचित प्रबंधन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। कृषि में हाईटेक तकनीकों के प्रादुर्भाव से कृषि को नई दिशा मिली है तथा इसकी दशा में सुधार हुआ है। संरक्षित कृषि, वर्टीकल फार्मिंग, रिमोट सेंसिंग तकनीकों का खेती में प्रयोग, ड्रोन का प्रयोग, एनडीवीआई सेंसर का उर्वरकों की मात्रा के निर्धारण में प्रयोग आदि तकनीकों का प्रयोग एवं उनसे सम्बंधित जानकारी किसानों को होना ही चाहिए। इन तकनीकों में लागत भी बहुत अधिक है इसलिए इससे सम्बंधित विस्तृत जानकारी और कौशल ही किसानों को इन तकनीकों से अधिक लाभ लेने में सक्षम बनाएगा।

हाल के वर्षों में प्रायः देखने को मिला है कि हमारे किसान भाई अधिक उत्पादन लेने की चाहत में अधिक मात्रा में उर्वरक खासकर यूरिया का प्रयोग करते हैं। नत्रजन एवं

अन्य उर्वरकों की अनुशंसा शोध संस्थानों द्वारा लम्बे समय के अनुसंधान के बाद की जाती है. अतः सदैव अनुशंषित मात्रा में ही नत्रजन एवं अन्य उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि अधिक मात्रा में नत्रजन के प्रयोग से पौधों में कीट एवं बीमारियों का प्रकोप अधिक हो जाता है और लागत के अनुरूप पैदावार भी नहीं मिलती है। सभी किसान भाई अपने सभी खेतों के मिट्टी की जांच अवश्य करवाएं और यह प्रक्रिया 3 वर्षों में निश्चित रूप से दोहराए। बहुत से खेतों में शूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे लोहा, जस्ता, मैंग्नीज, बोरोन, मैग्नीशियम, कोबाल्ट, सल्फर आदि की मृदा में उपलब्धता में कमी आई है जिससे फसलों की पैदावार तथा कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में कमी आई है। मृदा से अधिक मात्रा में पोषक तत्वों का लगातार दोहन करने वाली फसलों की लम्बे समय तक खेती बहुत हद तक इसके लिए उत्तरदायी है। उर्वरकों के प्रयोग में न्यूनतम का सिद्धांत लागू होता है अर्थात् जिस पोषक तत्त्व की न्यूनतम मात्रा में प्रयोग होता है वह उत्पादन को उतना ही प्रभावित करता है। इसलिए पोषकतत्वों का समुचित मात्रा में प्रयोग अधिकतम उपज के साथ-साथ मुनाफा के लिए भी आवश्यक है। नत्रजन का अधिक मात्रा में प्रयोग की वजह से भूमिगत जल के प्रदूषित होने की संभावना बढ़ जाती है। भूमिगत जल की नाइट्रेट विषाक्तता का प्रमुख कारण भी यूरिया का अधिक मात्रा में प्रयोग है। ऐसे जल को पीने से कई तरह की बीमारियाँ हो सकती है। किसी भी फसल के लिए नत्रजन, फॉस्फोरस और

पोटाश की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। संभव हो तो एनपीके खाद का प्रयोग करें। बहुत से किसान पोटाश का प्रयोग नहीं करते हैं। मृदा परीक्षण की रिपोर्ट में अगर जमीन में पोटाश की मात्रा पर्याप्त है तो इसका प्रयोग नहीं करें अन्यथा नत्रजन और फॉस्फोरस के साथ पोटाश का होना बहुत जरूरी है। मृदा के सेहत में निरंतर ह्रास को देखते हुए गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट, जैव उर्वरक आदि का भी प्रयोग जरूरी है। हो सके तो हरी खाद और भूरी खाद को भी अपने खेतों में अपनाये। टिकाऊ खेती और निरंतर अच्छे उत्पादन के लिए इनको अपनाना आवश्यक है।

विभिन्न फसलों के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल भण्डार का एक बहुत बड़ा हिस्सा कृषि और कृषि कार्यों में खर्च हो जाता है। धान–गेहूँ जैसी फसलों में जल की खपत बहुत है। जहाँ एक किलोग्राम चावल पैदा करने में 3000–5000 लीटर पानी लगता है वहीं एक किलोग्राम गेहूँ पैदा करने में 1200–1500 लीटर पानी खर्च होता है। इसी प्रकार अन्य फसलों में भी पानी की बहुत बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है। जल स्रोतों पर बढ़ते हुए दबाव को ध्यान में रखते हुए सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों को प्रयोग में लाने की आवश्यकता है। ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई का अंगीकरण आज बहुत से किसान अपना रहे है। सब्जियों, फलों और फूलों की खेती में अब भारत में इसका प्रयोग काफी बढ़ा है। पाली हाउस के अंदर ड्रिप से ही सिंचाई की जाती है। अब इनका उपयोग खाद्यान्न फसलों में भी करने पर बहुत जोर दिया जा रहा है। प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत इसको बड़े पैमाने पर प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है। गेहूँ की खेती में ड्रिप और स्प्रिंकलर के प्रयोग के अच्छे परिणाम मिले हैं। पानी की बचत के साथ–साथ अधिक पैदावार भी मिलती है। इन परिणामों को किसानों तक पहुंचाने की आवश्यकता है। जल उपयोग दक्षता को बढ़ावा देने वाले सिंचाई विधियों एवं अन्य कृषि कार्यों को अमल में लाकर किया जा सकता है। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं से अवगत करवाकर अधिक संख्या में किसानों को जोड़ा जा सकता है।

सभी फसलों में खरपतवार एक प्रमुख समस्या है जिसका समय पर प्रबंधन नहीं किया गया तो काफी नुकसान हो सकता है। किसान अकसर रासायनिक विधि से ही खरपतवारों का प्रबंधन करते हैं। फसल के चुनाव के साथ ही उसके उत्पादन प्रौद्योगिकी की सही जानकारी का होना बहुत जरूरी है। उस फसल के खरपतवारों की जानकारी उनके प्रबंधन में काफी सहायता करती है। अगर खेत में बीजाई के पहले ही खेत में खरपतवार हों तो उनका प्रबंधन करने के बाद ही बीजाई का कार्य सम्पादित करें। विगत वर्षों में प्रतिरोधकता की समस्या देखने को मिली है। अगर इस समस्या की तह में जाए तो यह पता चलता है कि खरपतवारनाशियों की समुचित मात्रा में प्रयोग नहीं करना, एक ही खरपतवारनाशी का साल दर साल इस्तेमाल, स्प्रे की गलत तकनीक तथा पानी की समुचित मात्रा नहीं होना आदि कारण देखने को मिले। अभी भी इस विषय में किसान अनभिज्ञ है। यही कारण है कि इन दवाओं पर हर वर्ष खर्च बढ़ता जा रहा है एक स्प्रे की जगह दो या तीन स्प्रे होने लगे है। लगातार लागत बढ़ने का बावजूद भी इस समस्या का समाधान नहीं मिल पा रहा है। अधिक मात्रा में खरपतवारनाशियों के प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषित होता है। स्प्रे करते समय सुरक्षा के आवश्यक नियमों का पालन नहीं होने के करण कई बार जान भी चली जाती है। यहाँ पर यह बताना अतिआवश्यक है कि हमेशा अनुशंषित खरपतवारनाशियों का ही प्रयोग करें, दवा की मात्रा पूरी रखे तथा पानी की मात्रा का भी ध्यान रखें। हमेशा इस विषय में कृषि विशेषज्ञों की राय लें और स्प्रे करते समय सभी सावधानियों और हिदायतों पर अमल करें। किसी भी दवा के प्रयोग के पहले उस पर लिखे दिशा–निर्देशों को जरूर पढ़ें। स्प्रे करते समय बताये गए परिधान का प्रयोग करें। पैर में जूते अवश्य पहने यह भी आपकी सुरक्षा की दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

समय–समय पर फसलों में तरह–तरह के कीड़ों और बीमारियों का प्रकोप देखने को मिलता है। उन बीमारियों और कीड़ों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है तभी हम उनका नियंत्रण कर सकते है। कई बार देखने में आता है कि किसान भाई बिना खेत का मुआयना किये ही साथी किसान को देखकर स्प्रे कर देते हैं जबकि उसकी आवश्यकता नहीं होती है। यहाँ पर यह जानना सबसे पहले जरूरी है कि खेत में पौधों पर जो लक्षण दिखाई दे रहे हैं वे किस प्रकार के हैं इसके बारे में निश्चिन्त होना सबसे पहली आवश्यकता है तभी निदान की बात हो सकती है। कई बार खेतों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण और बीमारियों के लक्षण मिलते–जुलते होते हैं। ऐसे में पौधे के प्रभावित भाग को कृषि विशेषज्ञों को दिखाना जरूरी होता है। ऐसा करने से आप समस्या के विषय में आस्वस्त हो जाते हैं और प्रभावी कदम उठाने में समय नहीं लगता है। नुकसान को समय रहते रोका जा सकता है और बेवजह दवाओं पर होने वाले फिजूलखर्ची से भी बचा जा सकता है।

फसलों को किसी भी प्रकार के नुकसान से बचाने के लिए उस फसल का बीमा होना अनिवार्य है। यह हमारी फसलों से होने वाली एक निश्चित आमदनी को सुनिश्चित करता है और किसानों के लिए आपदा की स्थिति में सुरक्षा कवच का

काम करता है। सरकार द्वारा चलाई जा रही प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना के दायरे में सभी किसानों का आना जरूरी है। व्यवसायिक फसलों में तो यह अनिवार्य है। यहाँ पर किसानों को तकनीकी ज्ञान के साथ–साथ कुछ व्यवहारिक ज्ञान का होना भी उतना ही जरूरी जिससे वे सरकार की विभिन्न योजनाओं का लाभ ले सकें।

भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही प्रधान मंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना, प्रधान मंत्री सुरक्षा बीमा, प्रधान मंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, अटल पेंशन योजना आदि के बारे में जानकारी का होना किसान भाईयों और बहनों के लिए बहुत जरूरी है। साथ ही इन योजनाओं में उनकी भागीदरी से सुरक्षा, संरक्षा और समृद्धि आ सकती है। अन्य योजनाओं की जानकारी से कृषि और उससे जुड़े व्यवसाय में काफी मदद मिल सकती है। कृषि ऋण के लिए किसान क्रेडिट कार्ड, ब्याज छूट योजना और संयुक्त देयता योजना, कृषि विपणन के लिए ई–नाम, लघु किसान एग्री बिजनेस कंसोर्टियम के तहत विभिन्न योजनायें, प्रसंस्करण के लिए प्रधान मंत्री किसान सम्पदा योजना, शीत श्रृंखला, एग्रो प्रसंस्करण क्लस्टर आदि किसान हितैषी योजनाओं की जानकारी से ही किसान लाभान्वित हो सकते हैं। स्टार्टअप और स्टैंडअप उद्यमों जैसी पहल से लाभान्वित किसान नये–नये रोजगारों का सृजन कर रहे हैं।

सूचना प्राप्ति के लिए एम किसान पोर्टल पर पंजीकरण, किसान कॉल सेंटर के नंबर की जानकारी, टोल फ्री नम्बर, मोबाइल ऐप आदि की जानकारी मात्र से बहुत से कार्य आसानी से हो जाते हैं। कृषि में कौशल विकास योजना सरकार द्वारा चलाई जा रही है जिसका मुख्य उद्देश्य सह उद्यमिता विकास को बढ़ावा देना और रोजगार के नए अवसरों का सृजन है।

निष्कर्ष : ज्ञान में शक्ति है और इसके बिना जीवन के किसी भी क्षेत्र में बेहतरी संभव नहीं हैं। अतः सूचना क्रान्ति के इस युग में आवश्यक सूचनाओं की समय पर उपलब्धता आवश्यक है। सभी किसान भाई अपना ज्ञान आधार बढ़ाने का भरसक प्रयास करें और चतुराई से कृषि एवं कृषि व्यवसाय का संपादन करें और अपने सेहत के प्रति सजग रहें तभी समृद्धि आ सकती है।

कृषि उन्नति में सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम

सुनील कुमार, पूनम कश्यप, अनिल खिप्पल[1], आजाद सिंह पंवार, अमित कुमार, प्रकाश चन्द घासल, ललित, कृष्ण मीणा, चेतन कुमार जी एवं जयराम चौधरी

भाकृअनुप- भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ-250110

[1]भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

आज के बदलते परिवेश में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास से गहरा संबंध है। सूचना प्रौद्योगिकी किसानों को नई दिशा के साथ–साथ उन्नत तकनीकी की जानकारी प्रदान करती है। इससे किसानों से संबंधित जानकारियां जैसे उन्नत फसल, गुणवत्ता वाले बीज, कीटनाशक, पोषक तत्व प्रबंधन और उत्पादन, विपणन, उर्वरकों के बेहतर उपयोग, फसल कीट प्रबंधन के उपाय, फसल चक्र से मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाना, दुग्ध व्यवसाय, मधुमक्खी पालन, सुअर पालन, मुर्गी पालन, मछली पालन, मौसम अनुमान इत्यादि का ज्ञान होता है। वर्तमान परिदृश्य में रेडियों, टेलीफोन, दूरदर्शन, समाचार पत्र व पत्रिकाए, एंव कम्पयूटर/ इंटरनेट इत्यादि। इन सूचना तकनीकों के माध्यम से विकास में महत्वपूर्ण योगदान हो रहा है।

वर्तमान परिवेश में क्षेत्र में किसानों को नवीनतम विचारों और उन्नत तकनीक की जानकारी देने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का अहम स्थान है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग प्रसार को और अधिक प्रभावी बनाता है। 21वीं सदी में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी विकास प्रक्रिया को बढ़ावा देने में एक प्ररेणा शक्ति के रूप में कार्य कर रही है। इस तरह इलेक्ट्रोनिक्स, दूरसंचार, कम्पयूटर और मल्टीमीडिया के तीव्र विकास ने प्रौद्योगिकी के उपयोग की नई–नई संभावनाए पैदा कर दी हैं। बाजारों के बीच सम्पर्क और निर्यातकों, उत्पादकों, व्यापारियों, उद्योग क्षेत्र एंव उपभोक्ताओं के मध्य विस्तृत राष्ट्रीय नेटवर्क स्थापित करने में भी सूचना प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आवश्यकता इस बात की है कि सूचना प्रौद्योगिकी को अनुसंधान के क्षेत्र में प्राथमिकता तय करके मजबूत बनाया जाना चाहिए– जैसे फसल पूर्वानुमान, इनपुट प्रंबधन, कमान क्षेत्र प्रबंधन, जल प्रबंधन, भूमि और जल संसधानों का विकास, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन, मत्स्य प्रबंधन, पहाड़ी क्षेत्र विकास और कटाई उपरान्त फसल प्रबंधन प्रमुख क्षेत्र हैं। जहां पर सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभावी उपयोग किया जा रहा है।

हमारे देश में भारतीय संरचना पर एक नजर डाले तो उसमें सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग की असीम सम्भवनाएं नजर आती हैं। उदाहरणार्थ भारत में 130 से भी अधिक विभिन्न जलवायु क्षेत्र, विशाल जैव विविधता और प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसाय व जोत के अनुसार सूचना की मांग भी भिन्न प्रकार की है।

सम्बंधित समस्याओं का समाधान बहुत हद तक सूचना प्रौद्योगिकी की मदद से किया जा सकता है। कुछ प्रमुख सूचना प्रौद्योगिकी साधन और उनका कृषि में उपयोग का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

रेडियो: रेडियो सूचना संचार का सबसे पुराना माध्यम होने के साथ ही आम जनता के लिए अभी भी सबसे सस्ता और मनोरंजक साधन है। किसानों के लिए ग्रामीण विकास के कार्यक्रम, फस्लोत्पादन, पशुपालन, पादप संरक्षण, वर्मी कम्पोस्ट बनाना, कीटनाशकों से फसल बचाव के उपाय एंव मौसम से संबधित जानकारी, विभिन्न कार्यक्रमों जैसे चौपाल, खेत और खलियान और अन्य कार्यक्रमों द्वारा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में प्रसारित करने में रेडियों की प्रमुख भूमिका रही है।

दूरर्दशन : प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में दूरदर्शन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज के तकनीकी युग में दूरदर्शन वास्तव में सबसे शक्तिशाली और बहुमुखी मीडिया है। दूरर्दशन पर आज 515 से भी ज्यादा मीडिया चैनल हैं, जो सार्वजनिक सूचनाएं उपलब्ध कराते हैं। निजी दूरदर्शन चैनल व्यापार और उद्योग से जुड़ी सूचनाएं उपलब्ध कराने में अहम योगदान दे रहे हैं। भारत में राष्ट्रीय टेलीविजन 'दूरदर्शन' दुनिया में सबसे बड़ा स्थलीय नेटर्वक है। विगत दशकों में 'दूरदर्शन' से ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी नीतियों और प्रौद्योगिकी की जानकारी उपलब्धता में वृद्वि हुई है।

राष्ट्रीय दूरदर्शन के पांच चैनल, डी.डी.1, डी.डी 2, डी.डी. न्यूज, डी.डी. भारती, डी.डी. स्पोर्टस और डी.डी. उर्दू हैं। इसके अतिरिक्त ग्यारह क्षेत्रीय भाषाओं के उपग्रह चैनल डी.डी. उत्तर पूर्व, डी.डी. बंगाली, डी.डी. गुजराती, डी.डी.

कन्नड़, डी.डी. पंजाबी, डीडी. पोढ़ी और डी.डी. सप्तगिरी हैं। विभिन्न राज्यों में स्थानीय भाषाओं में क्षेत्रिय सूचनाओं के लिए दूरदर्शन के क्षेत्रिय केन्द्र हैदराबाद, गुवाहटी, पटना, रायपुर, अहमदाबाद, शिमला, श्रीनगर, रांची, बैंगलोर, तिरूअनंतपुरम, भोपाल, मुम्बई, भुवनेश्वर, जालंधर, जयपुर, चेन्नई, लखनऊ एंव कोलकता शहरों में स्थित हैं। ये सभी केन्द्र किसानों के लिए सीधें तौर पर सरल भाषा में क्रियाओं संबधित सूचनाएं प्रसारित करते हैं।

श्रव्य दृश्य साधन : श्रव्य दृश्य साधन सीधे तौर पर श्रोताओं/दर्शकों को हर बात से रूबरू कराता है और किसानों को सीधे तौर पर सरल भाषा में हर वो बात बताते और दिखाते हैं, जिससे किसानों को खेती में फायदा मिल सकता है। श्रव्य दृश्य साधन की व्यवहार सुदृढीकरण, सामुदायिक भागीदारी और मनोंरजन बड़े पैमाने पर किसानों को एक साथ और प्रभावी ढ़ग से सूचना देने (वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग) में विशेष उपयोगिता है। इसके अलावा विश्वविद्यालयों, राज्य विभागों तथा भारतीय अनुंसाधन परिषद के तत्वाधान में समय–समय पर माासिक सेमीनार एंव सभाओं का आयोजन किया जाता है और समय–समय पर लगने वाले किसान मेलों का आयोजन किसानों को नई मशीनों और बीजों व कीटनाशक दवाईयों, तथा नई तकनिकीयों की जानकारी देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

टेलीफोनः आज की जरूरतों और समय के अनूसार टेलीफोन संचार का सबसे लोकप्रिय साधन बन गया है। टेलीफोन के माध्यम से समस्याओं के समाधान के लिए 1 जनवरी 2004 को समस्त देश में 13 कॉल सेंटरों की स्थापना की गई है। जिनका निशुल्क हेल्प लाइन नम्बर 1800–180–1551 व 1800–425–4085 है जो संबधित जानकारी किसी भी क्षेत्रीय भाषा में उपलब्ध कराते हैं। इसके अतिरिक्त टेलीफोन का उपयोग एस.एम.एस. द्वारा बाजार भाव एंव मौसम संबधित जानकारी उपलब्ध कराने में दिनों–दिन बढ़ रहा है।

समाचार पत्र व पत्रिकाएंः से सम्बधित पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से सम्बन्धित विभिन्न पहुलओं पर जानकारी किसान भाइयों के लिए बहुत उपयोगी होती है। कृषि की नवीनतम प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के लिए समाचार पत्र एंव पत्रिकाओं द्वारा सूचना का आदान प्रदान का बहुत महत्व होता है। इससे आम आदमी को भी नई सोच, नई दिशा मिलती है, जिसका लाभ आम जन को होता है। कुछ मुख्य पत्रिकाओं के विषय में (तालिका 1) में जानकारी दी गई है।

तालिकाः प्रमुख पत्रिकाओं के सम्पर्क सूत्र

पत्रिका का नाम	मूल्य	सम्पर्क सूत्र
विज्ञान	वार्षिक वर्गणी ₹. 200 पंचवार्षिक वर्गणी ₹. 600 दशवार्षिक वर्गणी ₹. 2400	www.drbawasakartechnologies.com
कृषि चयनिका	एक प्रति ₹. 25 वार्षिक ₹. 75	email. bmicar@icar.org.in www.icar.org.in
खेती	एक प्रति ₹. 25 वार्षिक ₹. 250	www.icar.org.in email. bmicar@icar.org.in
इण्डियन फार्मिंग (अग्रेंजी)	एक प्रति ₹. 50 वार्षिक ₹. 500	www.faidelhi.org
फल फूल	एक प्रति ₹. 25 वार्षिक ₹. 125	email. bmicar@icar.org.in www.icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान पत्रिका	संरक्षक /आजीवन सदस्य ₹. 1500 असदस्य ₹. 1800 सेवानिवृत वैज्ञानिक, कृषक एंव विद्यार्थी ₹. 800	 www.krishivigyan.com

कम्प्यूटर एंव इंटरनेट का क्षेत्र में योगदान

कम्प्यूटर एंव इंटरनेट के उपयोग ने क्षेत्र में एक नई सूचना क्रांति को जन्म दिया है। कम्प्यूटर व इंटरनेट प्रणाली से हम से जुड़ी हर वो जानकारी प्राप्त कर सकते है जो हमें खेती में मदद करती है। जैसे हम अपने धर पर बैठकर ही यह जान सकते हैं कि देश में किस किस्म की फसल उगाई जाती है और कौन सी फसल किस समय पर उगानी होती है, उसके बोने के तरीके व बीज की आवश्यकता, खाद और पानी की जरूरत तथा फसल पकने पर उसका सम्भावित मूल्य क्या होगा, आज के बाजार में उसकी मांग कितनी है और आने वाले समय में उस फसल में लोगों का क्या रूझान है। अक्सर ये कहा जाता है कि हमारे किसान भाई तो कम पढ़े लिखे है तो कम्पयूटर से जानकारी कैसे लेगें। लेकिन इंटरनेट पर उपलब्ध सुविधाओं में एक सुविधा ये भी है कि आप इंटरनेट सर्च इंजिनः जैसे (www.google.co.in) के प्रयोग से आसानी से उपयोगी जानकारी चुनिंदा स्थानीय भाषाओं में भी प्राप्त कर सकते हैं। कृषि से सम्बंधित जानकारी के कुछ वेब साईटों के नाम एंव उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

आज हम वेब साईटों की मदद से हम से संबंधित हर वो जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जिससे हम उत्पादन को बढ़ा सकते है। जैसे कि बाजार की मंडियों के दैनिक भावों में हो रहे परिवर्तन के बारे में पता लगाया जा सकता है और जी. आई.एस आाधारित राष्ट्रीय बाजार, उत्पाद, भंडारण के क्षेत्रों के बारे में, कार्यक्रमों/योजनाओं, फसल, बीमारियों से संबंधित, बीज, किस्मों, उत्पादन और उपज, तिलहन फसलों की बुवाई का समय व सही कीमतों की जानकारी मिलती है। इसके साथ–साथ विभागीय योजनाओं, प्रकाशन कार्यक्रम, सम्मेलनों, सेमिनारों, फसल स्थिति, न्यूतम सर्मथन मूल्य, जलाशय स्तर एवं मौसम पूर्वानुमान आदि संबंधित जानकरी प्राप्त होती है।

भारत सरकार व राज्य सरकारों द्वारा चलायी जाने वाली ऐसी बहुत सी योजनाएं है जो हमारे ज्ञान को आगे बढ़ाने में मदद करती हैं। जैसे कि फसल बीमा, गैर सरकारी संगठन द्वारा मदद करना, किसान कॉल सेंटर, आत्मा परियोजना, के.वी.के, बैंक से ऋण की सुविधा इत्यादि।

देश में चलाई जाने वाली इन सभी आईटी संस्थाओं, केन्द्र या परियोजनाओं का चलाने का उदेश्य यही था कि किसानों में जागरूकता लाई जाये और आज के तकनीकी युग में वे इन संस्थाओं की मदद से कृषि को और बेहतर बनाये और अपनी आर्थिक जरूरतों को समय पर पूरा कर सके।

इलेक्ट्रॉनिक मेल (e-mail):

तकनीकी युग में कम्पयूटर की मदद से आप जन लोक संदेश और आप अपने विचारों को एक–दूसरे तक पहुचां सकते है। कम्पयूटर में बहुत सारी सुविधाएं है उनमे से ई–मेल भी एक साधन है। ई–मेल के द्वारा भी आप अपनी संबधित समस्याओं का समाधान कर सकते हो और नए विचारों को नई तकनिकियों को अपनाने से किसानों को में भरपूर फायदा हो सकता है।

बैकअप सेवाएः सूचना तकनीकी ने हमें बैकअप सेवाओं की सुविधा भी प्रदान की है। आपके पास समय का अभाव है तो आप मंडियों के भाव, बीजों का मूल्य, फसलों में लगी बीमारियों के उपाय, मौसम की जानकारी, राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर पर आज कौन सी फसल/उत्पाद का ज्यादा महत्व है और उसके उगाने/पैदा करने के फायदे व नुकसान एंव भविष्य में कौन सी फसल की उपयोगिता ज्यादा है इत्यादि जानकारी बैकअप सेवाएं के रूप में कम्पयूटर, इंटरनेट, टेलीफोन, द्वारा उपलब्ध हैं।

निष्कर्ष :–

आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) का उपयोग अब हमारी मुख्य जरूरत बन गया है। सूचना प्रौद्योगिकी आपके हर फैसले को लेने में सहायता करता है। भारतीय किसानों के हित में आज आईटी ने हर वो सुविधा उपलब्ध करवाई है जो वो चाहते हैं आज ग्रामीण और शहरी तंत्र को जोड़ने में और उसके विकास में आई टी ने मुख्य रोल अदा किया है। सूचना प्रौद्योगिकी से आज हम किसी भी प्रकार की सूचना को दूसरों तक पहुंचाने में सफल हुए हैं। आज के बदलते माहौल में आईटी ने एक नई सोच, नई उमंग और नई विचारधारा के रूप में कार्य किया है। भारतीय किसान के कल्याण के लिए आईटी ने आज हर वो सुविधा दी जिससे भविष्य में आप हर मुश्किल से लड़ सके। किसानों के लिए इ–किओस्क, ई–चौपाल, के.वी.के व विभाग से समय–समय पर जानकारी मिलती रहती है इसे और सुदृढ करने की आवश्यकता है। आज के समय में बहुत सारी वैज्ञानिक जानकारियों का संचार माध्यम के उपयोग से समय की बचत और अधिक उत्पादन सुनिशिचित किया जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी की सेवाओं से ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में एक नई सूचना क्रांति का जन्म हुआ है।

गेहूँ की पैदावार और लाभ बढ़ाने के तरीके

रमेश कुमार शर्मा, राजेन्द्र सिंह छोकर, सुभाष चन्द्र गिल, राज पाल मीणा, अंकिता झा, राम कुमार सिंह, नीरज कुमार एवं निधि कम्बोज

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत में गेहूँ, चावल के बाद दूसरी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। इसे, चौथे अग्रिम अनुमान के अनुसार, रबी 2018–19 में लगभग 291.4 लाख हैक्टर क्षेत्र में उगाया गया तथा प्रति हैक्टर 35.07 कु. उत्पादकता के साथ इसका कुल उत्पादन लगभग 1021.9 लाख टन दर्ज किया गया । देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में गेहूँ का योगदान लगभग 37.1 प्रतिशत है। गेहूँ में प्रोटीन की मात्रा अन्य अनाजों की तुलना में सबसे अधिक होती है और इसका मुख्य रूप से चपाती, दलिया और मैकरोनी के रूप में सेवन किया जाता है। इसके अलावा, इसका भूसा पशुओं के लिए चारे का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसलिए, राष्ट्रीय भोजन, चारा और पोषण सुरक्षा के लिए, शहरीकरण के कारण सिकुड़ती कृषि योग्य भूमिं और निरन्तर बढ़ती आबादी की मांग को पूरा करने के लिए हमें गेहूँ का उत्पादन और उत्पादकता को लगातार बढ़ाना होगा। और क्षेत्र में वृद्धि की कोई गुंजाइश नहीं होने के कारण केवल उत्पादकता में सुधार करके ही उत्पादन में वृद्धि करनी होगी । इसलिए, बेहतर गेहूँ उत्पादकता के लिए, उन्नत किस्मों के साथ–साथ हमें आदानों के कुशल प्रबंधन पर ध्यान रखते हुए नई कृषि पद्धतियों को अपनाना होगा । उपज में सुधार के अलावा आदानों के कुशल उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के साथ–साथ खेती की लागत कम करने में भी मदद मिलेगी, जिससे लाभ बढ़ेगा जो किसानों की आय को दोगुना करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। गेहूँ की उपज बढानें के लिए "6प्रबंधन" दृष्टिकोण अति आवश्यक है।

1. उपयुक्त किस्मों का प्रबंधन
2. उपयुक्त समय और बुवाई प्रबंधन
3. उपयुक्त भूमि प्रबंधन
4. उपयुक्त उर्वरक प्रबंधन
5. उपयुक्त जल प्रबंधन
6. उपयुक्त खरपतवार प्रबंधन

1. उपयुक्त किस्मों का प्रबन्धन

भारत ने गेहूँ उत्पादकता में साठ के दशक के अंत में एक लम्बी छलांग लगाई थी, जब स्थानीय कम उपज वाली किस्मों को अधिक उपज वाली बौनी किस्मों के साथ प्रतिस्थापित किया गया था । तदुपरान्त, प्रमुख योगदान संसाधनों के कुशल प्रबंधन का रहा है तथा किस्म सुधार से उत्पादकता पर कम असर पड़ा है । विभिन्न उपज परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नवीनतम अधिक उपज वाली किस्म का चयन उचित फसल स्थापना और अधिक उत्पादकता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है । हरित क्रांति से पहले, लम्बी गेहूँ की किस्में उगाई जाती थीं, जो अधिक खाद और सिंचाई सहन ना करने के कारण गिर जाती थीं, लेकिन हरित क्रांति के बाद छोटी किस्मों, जो अधिक खाद और सिंचाई सहन कर लेती हैं, के कारण उत्पादन और उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार हुआ । वर्तमान में, विभिन्न जलवायु स्थितियों के तहत देश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में उपयोग के लिए कृषि–जलवायु क्षेत्र विशिष्ट उन्नत किस्मों, जैसे कि, समय पर, देर से बोई गई, सिंचित, वर्षा आधारित और लवणता–क्षारीयता की स्थिति के लिए एक विस्तृत श्रृंखला उपलब्ध है ।

2. उपयुक्त समय और बुवाई प्रबंधन

गेहूँ की कम पैदावार का एक बड़ा कारण बुवाई का अनुचित समय और तरीका हो सकता है। अधिकतम उत्पादकता का दोहन करने के लिए बुवाई का समय इस तरह से होना चाहिए कि दाना भरने की अवधि अनुकूलतम रहे। भारत में, गेहूँ के प्रमुख क्षेत्रों में बुवाई का सबसे उपयुक्त समय नवंबर का पहला पखवाड़ा है । उत्तरी मैदानों में, फसल पकने के समय गर्मी के प्रभाव से बचने अतः उत्पादकता में वृद्धि के लिए, अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में बुवाई की जा सकती है । हालांकि, कभी–कभी फसल प्रणाली के आधार पर कपास, बासमती चावल, गन्ने और कुछ सब्जियों की फसलों के बाद बोई जाने वाली गेहूँ समय पर बोना संभव नहीं होता । ऐसी स्थितियों में, शून्य जुताई, रिले फसल, सूखे में बुवाई

उपरान्त सिंचाई, बीज की प्रायिमिंग और उपयुक्त किस्मों का चयन जैसी कुछ रणनीतियाँ उपयोगी हो सकती हैं। पूर्वी भारत की दियारा भूमि जैसी कुछ स्थितियों में बुवाई के समय को आगे बढ़ाने के लिए शून्य जुताई या सतह की बोने की तकनीक को भी अपनाया जा सकता है।

3. उपयुक्त भूमि प्रबंधन

परंपरागत रूप से समतल खेतों में, पोषक तत्वों और पानी की एक समान उपलब्धता की समस्या रहती है, विशेष रूप से पानी जो पोषक तत्वों की उपलब्धता को भी प्रभावित करता है। खेत के ऊँचे हिस्सों में पानी की कमीं और कम निचले हिस्सों में पानी की अधिकता के कारण फसल को नुकसान होता है । इसलिए, उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए सबसे पहली और महत्वपूर्ण आवश्यकता सटीक भूमि समतलन है जो कि एक समान फसल स्थापना, सिंचाई के पानी के वितरण और बढ़ती गेहूँ की फसल को अन्य आदानों की उपलब्धता के लिए अतिआवश्यक है। जहां तक खेत की तैयारी का संबंध है, पहले की धारणा कि अच्छी गेहूँ की पैदावार के लिए खेत की अच्छी तैयारी ही आवश्यक है के विपरीत यह लंबे समय के प्रयोगों से अच्छी तरह से स्थापित और प्रलेखित है कि गेहूँ के लिए गहन जुताई आवश्यक नहीं है । गेहूँ की फसल आसानी से और लाभदायक रूप से विभिन्न फसल प्रणालियों के तहत शून्य जुताई से उगाई जा सकती है। सामान्य तौर पर, गेहूँ की अच्छी पैदावार के लिए भूमि की बेहतर जल निकासी आवश्यक होती है तथा शून्य जुताई और लेजर भूमि समतल इसमें सहायक होती है।

इसके अलावा, जीरो टिलेज में फसल अवशेषों को सतह पर रखना यानी संरक्षण कृषि (सीए) और भी बेहतर है क्योंकि सतह पर छोड़े अवशेष धीरे–धीरे गलने के कारण मिट्टी स्वास्थ्य सुधारने में मदद करते हैं । मृदा स्वास्थ्य कार्बनिक कार्बन बढ़ने के कारण सुधरता है जिससे मिट्टी अधिक पानी और पोषक तत्व प्रतिधारण कर सकती है। सतह पर 4 टन/है. से अधिक अवशेष रखने पर खरपतवार संक्रमण को काफी हद तक कम करने में मदद मिलती है । इसके अतिरिक्त मिट्टी की सतह रखा अवशेष वाष्पीकरण को काटकर और बढ़ते पौधों को उपलब्ध कराकर पानी का भी संरक्षण करता है। संरक्षण कृषि अपनाना पकने के समय फसल को बढ़ने वाले तापमान को सहन करने की क्षमता प्रदान करता है क्योंकि पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के लिए अधिक पानी उपलब्ध होता है जिससे पौधों को ठंडा रखने के कारण उच्च उत्पादकता प्राप्त होती है। लंबे समय तक संरक्षण कृषि अपनाने से फसल अवशेषों का धीमाँ विघटन मिट्टी से पोषक तत्वों की अधिक उपलब्धता, मिट्टी के सूक्ष्म वनस्पति और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार के कारण उर्वरकों की आवश्यकता को कम करने में सहायक हो सकता है। इसके अतिरिक्त, वैकल्पिक जुताई और संरक्षण कृषि अपनाने से कीट और बीमारियों को कम करने में भी मदद मिलती है। दो मशीनें, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित "हैप्पी सीडर" और भाकृअनुप–भागेजौअनुसं, करनाल द्वारा निजी मशीनरी निर्माता मेसर्स बेरी उद्योग लिमिटेड की सक्रिय भागीदारी द्वारा विकसित "रोटरी डिस्क ड्रिल", के उपयोग ने लाभ दिखाना शुरू कर दिया है और अधिक से अधिक किसान संरक्षण कृषि को अपना रहे हैं। संरक्षण कृषि को अपनाना अधिक लाभदायक है क्योंकि यह किसानों को धान के बाद गेहूँ बोने के लिए समय बचाने के अतिरिक्त 80 प्रतिशत से अधिक ऊर्जा, समय और कठिन परिश्रम से बचाता है, जो विशेष रूप से उत्तर पश्चमी मैदानों में बासमती उत्पादक क्षेत्रों अतः उत्तर पूर्वी मैदानों में धान के बाद गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों के अधिकांश भागों के लिए अति आवश्यक है। इनमें से एक मशीन "रोटरी डिस्क ड्रिल" गन्ने के बाद भूमि सतह पर पड़ी पूरी गन्ने की पत्ती में बिना जुताई के अन्य फसल बोने में भी सक्षम है जिसे विशेषकर मूढ़े गन्ने में एक अतिरिक्त फसल उगाने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है ।

4. उपयुक्त उर्वरक प्रबंधन

किसान आम तौर पर उर्वरकों के माध्यम से केवल नाइट्रोजन और फॉस्फोरस का ही प्रयोग कर रहे हैं और कभी कभार जैविक खाद जैसे गोबर की खाद का भी आवेदन करते हैं। असंतुलित रासायनिक उर्वरकों के निरंतर उपयोग के कारण, देश के विभिन्न हिस्सों से सल्फर, जस्ता, लोहा, मैंगनीज, तांबा और बोरान जैसे पोषक तत्वों की कमीं देखी गई है। इसके अतिरिक्त वर्षों से पोटाष का उपयोग ना कारण के कारण कुछ क्षेत्रों में इसकी कमीं भी दिखाई देने लगी है। गहन फसलीकरण और असंतुलित रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के कारण, मिट्टी की पोषक आपूर्ति क्षमता कम हो गई है विशेष रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की। फसल अवशेषों को जलाने के परिणामस्वरूप स्थिति और भी खराब हो गई, जिससे बहुत महत्वपूर्ण जैविक स्रोत के नुकसान के साथ–साथ मिट्टी के सूक्ष्म वनस्पतियों का भी नुकसान हुआ, जिनका उपयोग मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल करने के लिए किया जा सकता है। मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, फसल अवशेष

जलाने से बचना चाहिए। फसल के अवशेषों को सतह पर छोड़ने से नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण, मिट्टी के तापमान में कमी के साथ–साथ समय के साथ मिट्टी की जैविक कार्बन स्थिति को बढ़ाने में मदद मिलेगी। उर्वरकों से अधिकतम लाभ का एहसास करने के लिए, इन्हें सही स्रोत, सही समय पर, सही मात्रा में और सही विधि द्वारा उपयोग करना चाहिए।

विभिन्न गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों या प्रदेशों में पोषक तत्वों की अनुशंसित दरें औसत पर आधारित हैं। असल में अच्छी पैदावार के लिए उर्वरकों की दरें समायोजन मिट्टी परीक्षण के आधार होनी चाहिए। सामान्यत नाइट्रोजन का छिडकाव पानी लगाने के तीन से पांच दिन बाद किया जाता है। यह इस सोच पर आधारित है कि नाइट्रोजन पानी के साथ बहकर खेत के निचले हिस्सों में जमा हो सकती है। यह सोच बिलकुल गलत है क्योंकि नाइट्रोजन पानी के साथ बिलकुल भी नहीं बहती तथा जहाँ पर डाली जाती है वहीँ पर भूमि के अन्दर चली जाती है जैसा कि चित्र में देखा जा सकता है। यह भी सामान्यतः कहा जाता है कि पानी से पहले यूरिया डालने पर वह भूमि में गहराई में चला जाता है अतः पौधे उसे प्रयोग नहीं पाते। यह धारणा इसलिए है क्योंकि अधिकतर लोग, जिनमें अधिकतर वैज्ञानिक भी शामिल हैं, यह मानते हैं कि गेहूँ की जड़ें भूमिं में केवल 15–20 सेंटीमीटर गहराई तक ही जाती हैं। लेकिन तथ्य यह है कि गेहूँ की जडें 150 सेंटीमीटर से भी गहरी होती हैं तथा कई मिट्टियों में लगभग तीन मीटर की गहराई तक नीचे चली जाती हैं। इसमें जो चित्र–1 में धागा बंधा हुआ दिख रहा है नाइट्रोजन पानी लगाने के तुरन्त पहले इसी धागे के अन्दर डाली गई थी जोकि पानी के साथ एक इंच भी आगे–पीछे नहीं गई। यह दोनों चित्र पानी लगाने के लगभग 10 और 20 दिन बाद के हैं। इसी को आधार मानकर भारतीय गेहूँ और जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा समन्वित परीक्षणों में पाया गया कि सिंचाई से ठीक पहले नाइट्रोजन का छिडकाव करना सिंचाई के बाद डालने (जो सार्वभौमिक सिफारिश है) की तुलना में अधिक लाभदायक है। सिंचाई के बाद यूरिया डालने की तुलना में सिंचाई से ठीक पहले यूरिया का छिडकाव करने पर बिना किसी अतिरिक्त लागत के 4–6% अधिक उपज होती है। अन्य प्रयोगों में पाया गया है कि गेहूँ की नई किस्में सिफारिश की गई 120–150 कि./है. नाइट्रोजन से भी अधिक तक पैदावार बढ़ाने में सक्षम हैं। यह देखा गया है कि अधिक पैदावार लेने के लिए गेहूँ की बिजाई 25 अक्टूबर के आसपास करनी चाहिए तथा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा क्रमशः 225, 90 एवं 60 कि.ग्रा./है. रखनी चाहिए। अधिक पोषक तत्व डालने पर फसल के गिरने की आशंका रहती है जिसे रोकने के लिए लिहोसिन / 0.2% फॉलिकुर (430 एस सी)/ 0.1% का पहली गांठ बनने पर तथा बूट लीफ स्टेज पर स्प्रे करना आवश्यक होता है। इस स्प्रे से पौधों की लम्बाई 10–15 सेंटीमीटर तक कम हो जाती है इसलिए फसल गिरती नहीं है। इस प्रबंधन विधि को अपनाकर गेहूँ की उत्पादकता 70 से 90 कु./है. तक दर्ज की गई।

5. उपयुक्त जल प्रबंधन

पानी की कमी अंकुरण से परिपक्वता तक गेहूँ की वृद्धि और विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। नमी के कमी का प्रभाव इसकी गंभीरता, कमी की अवधि और फसल के विकास चरण पर निर्भर करता है । गेहूँ फसल की चंदेरी जड़ शुरुआत और प्रजनन विकास चरणों में नमी के कमी के लिए सबसे अधिक संवेदनशील है और इन विकास चरणों के दौरान नमी का कमी होने पर पैदावार में भारी कमी आती है । फसल विकास के सभी चरणों में नमी की सुनिश्चित उपलब्धता गेहूँ की पैदावार को अधिकतम करने में मदद करती है क्योंकि इससे उर्वरकों जैसे अन्य आदानों के कुशल उपयोग में मदद मिलती है। साठ के दशक के दौरान हरित क्रांति के लिए जिम्मेदार कारकों में भी सिंचाई सुविधाएं एक मुख्य कारक थी । इसके उपरांत सिंचाई सुविधाओं में लगातार वृद्धि के कारण वर्तमान में गेहूँ का क्षेत्र 90% से अधिक सिंचित है। भविष्य में, बढ़ती आबादी और बढ़ते औद्योगिकीकरण से प्रतिस्पर्धा के कारण खेती के लिए उपलब्ध पानी में कमीं आने के कारण हमारे सामने एक बड़ी चुनौती ''प्रति बूंद अधिक फसल'' उत्पादन करना होगा।

सामान्य तौर पर गेहूँ की फसल को मिट्टी के प्रकार और वर्षा के आधार पर 4–6 सिंचाई की आवश्यकता होती है। गेहूँ फसल के महत्वपूर्ण चरण हैं चंदेरी जड़ शुरुआत, कल्ले फूटना, ध्वज पत्ती का आना, फूल आना, दानों का दूधिया और दानों का सख्त होना इत्यादि हैं। प्रारंभिक नमी की कमीं कल्लों की संख्या को कम करती है जबकि बाद के चरणों के दौरान कमीं से दानों की संख्या और उनका वजन कम हो जाता है जिससे अंततः पैदावार कम हो जाती है। उच्च जल उपयोग दक्षता के लिए, फसल के विकास के चरणों के अनुसार सिंचाई की समयबद्धता महत्वपूर्ण हैं क्योंकि पानी की अधिकता और कमीं दोनों ही गेहूँ की

पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। अधिक पानी लगाने से फसल गिरने और भूमिं के अन्दर जड़ों के लिए उपयुक्त वायु ना होने की समस्या के साथ–साथ पोषक तत्वों के जड़ों से नीचे गहराई में चले जाने, विशेष रूप से नाइट्रोजन, के कारण भूजल संसाधनों का भी प्रदूषण होता है। वर्तमान में कई क्षेत्रों में भूमिं के नीचे पानी का स्तर काफी गिर गया है और भविष्य में पानी की कमीं को ध्यान में रखते हुए, हमें पानी की कुशल सूक्ष्म सिंचाई प्रौद्योगिकियों जैसे छिड़का और टपका सिंचाई विधियों को अपनाना आवश्यक होगा।

इसके अलावा, लेजर लैंड लेवलिंग को बड़े पैमाने पर लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए क्योंकि यह विशेष रूप से पानी और नाइट्रोजन की उपयोग दक्षता में सुधार करने में मदद करता है । इस तकनीक को अपनाने से कम मेंढ़ों और नालियों की आवश्यकता होने के कारण फसली क्षेत्र को बढ़ाने में मदद मिलती है तथा जल उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि होती है । जीरो टिलेज, लेजर लैंड लेवलिंग और मेंढ़ पर वुवाई करने से 5–30 फीसदी सिंचाई पानी की बचत होती है।

6. उपयुक्त खरपतवार प्रबंधन

फसल उत्पादन के लिए खरपतवार एक मुख्य समस्या है। गेहूँ में संकरी व चौड़ी पत्ती दोनों तरह के खरपवार पाए जाते हैं। नई अधिक उपज देने वाली किस्मों की पूर्ण उपज क्षमता लेने के लिए, उचित खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है। गेहूँ में खरपतवार के प्रकार तथा इनकी संख्या एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में सिंचाई, उर्वरक उपयोग, मिट्टी के प्रकार और प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण प्रथाओं और फसल अनुक्रमों के आधार पर भिन्न होती हैं। यदि खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित नहीं किया जाये तो विभिन्न क्षेत्रों में इनके कारण औसत उपज हानि 20 से 30% तक होती है। लेकिन कभी–कभी खरपतवार के प्रकार तथा इनकी संख्या पर निर्भर होते हुए शत–प्रतिशत तक की भी हानि हो जाती है।

गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण की महत्वपूर्ण अवधि बुवाई के 30–45 दिन तक होती है और अच्छी पैदावार लेने के लिए इस अवधि के दौरान फसल को खरपतवार मुक्त रखना अति आवश्यक होता है। खरपतवार नियंत्रण के विभिन्न तरीकों में से समय और लागत प्रभावशीलता के कारण रासायनिक विधि व्यापक रूप से उत्पादकों द्वारा पसंद की जाती है। हालांकि, शाकनाशीयों पर एकमात्र निर्भरता

वांछनीय नहीं है और खरपतवार प्रबंधन के गैर रासायनिक तरीकों को भी शाकनाशियों के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। गैर रासायनिक तरीके जैसे कि फसल पौधों का घनत्व, बुवाई का समय, गेहूँ की किस्म, बीज दर, लाइनों में दूरी, जुताई तकनीक, उर्वरक डालने का समय और सिंचाई के पानी की मात्रा कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं, जो खरपतवार–फसल प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करते हैं। इनके अतिरिक्त मेंढ़ पर दो पंक्तियों में बोई गेहूँ में ट्रेक्टर द्वारा भी

यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण की संभावना रहती है। इसके अलावा, जल्दी बोये गए गेहूँ (अक्टूबर का अंतिम सप्ताह) में देर से बोए गए गेहूँ की तुलना में मंडूसी की कम संख्या होती है। स्टेल सीड बेड तकनीक या शून्य जुताई से गेहूँ की बुवाई को खरपतवार प्रतिरोधी मंडूसी के प्रबंधन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। हालांकि, जंगली पालक का प्रकोप शून्य जुताई में पारंपरिक जुताई प्रणाली की तुलना में अधिक रहता है । सतह पर छोड़ा हुआ फसल अवशेष मिट्टी के तापमान और नमी को प्रभावित करता है, जो बदले में खरपतवार के प्रकार और मिट्टी की स्थिति के आधार पर खरपतवारों के अंकुरण को भी प्रभावित करता है । गेहूँ की फसल में 0 से 8 टनध्हे. सतही फसल अवशेष के

साथ किये गए प्रयोगों में पाया गया कि 4 टन/ है. से अधिक अवशेष खरपतवारों का प्रकोप को बहुत ही कम कर देते हैं। इसलिए, खरपतवारों के प्रभावी प्रबंधन के लिए फसल अवशेष को शाकनाशियों के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण के लिए अन्य विधियों की तुलना में रासायनिक विधि अधिक लोकप्रिय है क्योंकि इसमें कम लागत व समय में प्रभावी नियंत्रण मिलता है। गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण के लिए कुछ प्रमुख शाकनासी सारणी–1 में दी गई है।

खरपतवार नियंत्रण के लिए शाकनाशियों को 120 ली./मएकड पानी मे घोल कर छिड़काव करें। सल्फोसल्फयूरॉन, संकरी तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रन करता है। लेकिन यह शाकनाशी, कुछ खरपतवार जैसे जंगली पालक पर असरदायक नहीं है। जीरो टीलेज में मंडूसी कम और यह खरपतवार अधिक पाया जाता है। जहां जंगली पालक की समस्या है वहां एलग्रीप 8 ग्राम प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें। जीरो टिलेज वाले खेतों में सल्फोसल्फयूरॉन का प्रयेग पहली सिंचाई से पहले करें। इसका प्रयोग देर से करने पर मंडूसी पर असर कम हो सकता है। इन खरपतवारनाशियों को हर साल बदल कर प्रयोग करें।

जीरो जुताई में परम्परागत जुताई की तुलना में मंडूसी के पौधों की संख्या कम होती है। इसलिए जीरो जुताई एक कम खर्च तथा लम्बे समय तक मंडूसी नियन्त्रण प्रणाली में सहायक हो सकती है। जीरो टीलेज,शाकनाशी प्रतिरोधकता के नियन्त्रण में भी सहायक है। इसके लिए धान की कटाई के बाद बुआई सें पहले, मंडूसी को सिंचाई देकर, उगनें के लिए प्रेरित किया जाता है तथा उसके बाद नोन सलेक्टीव खरपतवार नाशक जैसे ग्लाईफोसेंट से नष्ट कर दिया जाता है। जिन खेतों में बहुवर्षीय या अन्य खरपतवार बिजाई से पहले अधिक हो वहां नोन सलेक्टीव खरपतवार नाशक जैसे ग्लाईफोसेंट 41 एस. एल. 7–12 मी. ली./ली. पानी 0.7–1.2 प्रतिशत की दर से प्रयोग करें और इसके उपरांत बुआई कर दें।

शाकनाशी के अलावा कुछ सस्य क्रियायें भी अपनाकर खरपतवार निंयत्रित किया जा सकता है। जैसे किय

- खरपतवार रहित बीज उपयोग में लाए।
- समय पर बिजाई करे तथा पंक्तियां की दूरी घटा दें।
- प्रतिस्पर्धा वाली किस्में प्रयोग में लाए।
- गेहूँ की बिजाई से पहले हल्की सिंचाई कर खरपतवारों को उगने दे तथा हल्की जुताई कर इन्हे नष्ट करें।
- खरपतवारों के बीज न बनने दें ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मिट्टी, पानी और अन्य संसाधनों के उपयुक्त प्रबंधन के साथ उच्च उपज देने वाली किस्मों का उपयोग करके उच्च उत्पादकता स्तर प्राप्त किया जा सकता है। बुवाई के समय में बदलाव करके उच्च तापमान के प्रतिकूल प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। थोड़ा जल्दी बुवाई फूल आने और अनाज भरने के दौरान उच्च तापमान से बचने में मदद करता है। इसके अलावा, सतह अवशेष के साथ शून्य जुताई से बुवाई तापमान संयम और नमी संरक्षण में मदद मिलती है, जिससे फसल बढ़वार अच्छी होने के कारण अधिक उत्पादकता होती है। छिडकाव/टपका सिंचाई से मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखने में मदद मिलती है, जिससे फसल की आवश्यकता अनुसार पोषक तत्व उपलब्ध कराने के अलावा

सारणी 1. गेहूँ में प्रयोग होने वाली मुख्य शाकनासी

क्रं.सं.	शाकनाशी	उत्पाद पदार्थ मात्रा, ग्रा. या मि.ली./एकड़	बिजाई के कितने दिन बाद प्रयोग	खरपतवार के प्रकार का नियंत्रण
1.	आइसोप्रोट्यूरान 75 डब्ल्यू पी	500	20–35	घास व चौडी पत्ती
2.	सल्फोसल्फयूरॉन 75 डब्ल्यू डी जी	13.5	20–35	घास व चौडी पत्ती
3.	सल्फोसल्फयूरॉन+मैटसल्यूरॉन 80 डब्ल्यू डी जी	16	20–35	घास व चौडी पत्ती
4.	मैजोसल्फयूरॉन+आइडोसल्यूरॉन 3.6 डब्ल्यू डी जी	160	30–35	घास व चौडी पत्ती
5.	फिनोक्साप्रोप 10 ई सी	400	30–35	घास वाले
6.	क्लोडिनाफोप15 डब्ल्यू पी	160	30–35	घास वाले
7.	पिनोक्साडेन 5 ई सी	400	30–35	घास वाले
8.	पैन्डिमैथलिन 30 ई सी	1500	0–3	घास व चौडी पत्ती
9.	2, 4–डी 38 ई सी	500	30–35	चौडी पत्ती
10.	मैटसल्फयूरॉन 20 डब्ल्यू पी	8	30–35	चौडी पत्ती
11.	कारफैन्ट्राजोन 40 डब्ल्यू डी जी	20	30–35	चौडी पत्ती
12.	मैटसल्फयूरॉन 20 डब्ल्यू पी़कारफैन्ट्राजोन 40 डब्ल्यू डी जी	820	30–35	चौडी पत्ती
13.	फ्लूमिओक्साजिन 50 एस सी	80–100	0–3	घास व चौडी पत्ती
14.	पायरॉक्सासल्फोन 85 डब्ल्यू डी जी	60	0–20	घास व चौडी पत्ती

पौधों तथा मिट्टी के तापमान को कम किया जा सकता है। जल्दी बुवाई के साथ अधिक उर्वरक प्रयोग उत्पादकता में सुधार लाने में मदद कर सकता है लेकिन ऐसी स्थिति में फसल का गिरना एक मुख्य अड़चन रहती है जिससे 40% तक नुकसान हो सकता है यदि फसल बाली निकलने के 10 दिनों के भीतर गिरती है । ऐसी परिस्थितियों में फसल का गिरना रोकने के लिए लिहोसिन / 0.2%. फॉलिकुर (430 एस सी) / 0.1% का पहली गांठ बनने (बिजाई के 40–45 दिन बाद) तथा बूट लीफ स्टेज (बिजाई के 80–85 दिन बाद) पर स्प्रे करें जिससे पौधों की लम्बाई 10–15 सेंटीमीटर तक कम होने के कारण फसल गिरती नहीं है तथा काफी अधिक पैदावार ली जा सकती है। इन सभी तकनीकों को "6वां दृष्टिकोण" के तहत एकीकृत तरीके से अपना कर गेहूँ की पैदावार बढानें तथा उपज अवरोध तोड़ने में सहायता मिलने के साथ–साथ यह किसानों की आय दोगनी करने में एक मुख्य भूमिका निभा सकती है।

जैविक खेती में खरपतवार प्रबंधन

अमित कुमार[1], प्रकाश चन्द घासल[1], देबाशीष दत्ता[1], अमृत लाल मीणा[1], ललित कृष्ण मीणा[1], चेतन कुमार जी[1], सुनील कुमार[1], जयराम चौधरी[1], कमलेश कुमार[1] एवं रंजना[2]

[1]भाकृअनुप-भारतीय प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ-250 110

[2]गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर-263 145

पिछले चार दशकों से आधुनिक कृषि की प्रथाओं के अनुचित प्रयोग से अनेक समस्याएँ जैसे कि उर्वरकों और कीटनाशकों के कारण प्रदूषण, भूजल स्तर में कमी, मिट्टी की बड़ी लवणता तथा अन्य मृदा से जुडी समस्याएं, आनुवंशिक क्षरण, और खाद्य गुणवत्ता में कमी आदि उत्पन्न हो गयी हैं। आधुनिक कृषि के अंतर्गत उत्पादन के साधनो की कम उत्पादकता और उचित उत्पाद मूल्य के न मिलने से किसान पारम्परिक कृषि से जैविक कृषि की ओर अग्रसर हो रहे हैं। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि और बड़ी स्वास्थ्य चेतना के कारण वर्तमान परिवेश में उपभोक्ता जैविक उत्पादों को अधिक मूल्य देकर भी क्रय कर रहे हैं। उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि जैविक कृषि वर्तमान समय में एक प्रमुख कृषि बनकर उभर रही है।

जैविक कृषि एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जो कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, विकास नियामक, और पशुओं के लिए योगात्मक चारे के प्रयोग के प्रयोग की अनुसंशा नहीं देती है। पर्यावरण, सामाजिक, और आर्थिक स्थिरता जैविक कृषि के मूल उद्देश्य हैं। यूरोपीय देशों में सरकारी नीतियों द्वारा सब्सिडी, उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान, शिक्षा और विपणन के रूप में समर्थन के माध्यम से जैविक कृषि को प्रोत्साहित किया जा रहा है। भारत में कृषि प्रथाएं चार हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन हैं तथा उनमे भी जैविक कृषि देश में बहुत अधिक मूल की है। चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में भी वैदिक काल के किसानों में मिट्टी की उर्वरता, बीज चयन, पौध संरक्षण, बुवाई के मौसम, और विभिन्न भूमियों में फसलों की स्थिरता के उचित ज्ञान के विषय में उल्लेख किया गया है। कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए प्रभावी खरपतवार प्रबंधन महत्वपूर्ण है।

खरपतवारों से हानियाँ

रासायनिक दवाओं के प्रयोग की अनुशंसा न होने तथा खरपतवारों के बीजों से प्रदूषित गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग के कारण आज जैविक कृषि में खरपतवार एक मुख्य समस्या बन गए हैं। खरपतवार फसलों से पोषक तत्व, नमी, प्रकाश, स्थान आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करके उनकी वृद्धि, उपज एवं गुणवत्ता में कमी कर देते हैं। खरपतवारों द्वारा फसलों में की गई हानि अन्य कारणों जैसे कि कीट-पतंगों व रोग ब्याधि आदि की अपेक्षा अधिक होती है। एक अनुमान के आधार पर हमारे देश में विभिन्न व्याधियों द्वारा कृषि में प्रतिवर्ष लगभग 1 लाख 40 हजार करोड़ रूपये के बराबर की आर्थिक हानि होती है जिसमें लगभग एक तिहाई से अधिक हानि खरपतवारों द्वारी की जाती है (सारणी 1)। लन्दन में खरपतवारों की सापेक्ष आवृति के विश्लेषण में जैविक रूपांतरण के 3 वर्ष बाद प्रक्षेत्र की मृदा में खरपतवारों की कुल बीज संख्या में बढ़ोतरी (4050 से 17320 प्रति वर्ग मीटर) पाई गई। उपरोक्त अध्ययन के परिणाम यह दर्शाते है कि जैविक कृषि के अंतर्गत खरपतवार एक प्रमुख समस्या बनकर आ रहे हैं। इसलिए खरपतवारनाशकों के उपयोग के बिना खरपतवारों के प्रबंधन के परिणामों के बारे में आशंका पारंपरिक उत्पादकों द्वारा जैविक खेती के उत्थान को सीमित करने वाला एक प्रमुख कारण बन गयी हैं। आमतौर पर विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा 10 से 85 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई है। लेकिन कभी-कभी यह कमी शत-प्रतिशत तक हो जाती है। खरपतवार फसलों के लिए भूमि में निहित पोषक तत्व एवं नमी का एक बड़ा भाग शोषित कर लेते हैं तथा साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से भी वंचित रखते है। फलस्वरूप पौधे की विकास गति धीमी पड़ जाती है एवं उत्पादन स्तर गिर जाता है।

जैविक खेती में खरपतवार प्रबंधन

खरपतवारों का यदि उचित समय पर प्रभावी नियंत्रण नहीं किया जाता है तो अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए किये गये उपाय निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं। सामान्यतः फसलें अपनी प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाती हैं। अतः फसलों को प्रारम्भ से ही खरपतवार रहित रखना आवश्यक हो जाता है ताकि खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण पाकर फसल को होने वाली क्षति से बचाया जा सके। चूंकि जैविक कृषि में रासायनिक खरपतवार

नाशी दवाओं के प्रयोग की अनुमति नहीं है इसलिए सांस्कृतिक, जैविक और यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण मुख्य रूप से अच्छी फसल उपज और गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

जैविक कृषि प्रणालियों में, पूर्व और बाद के उद्भव यांत्रिक और थर्मल खरपतवार विधियों और खरपतवार नियंत्रण के लिए प्लास्टिक और अपघटन योग्य मल्च के उपयोग की अनुमति है। जैविक खेती के तहत सांस्कृतिक उपायों के न्यूनतम हस्तक्षेप और खरपतवारों के गैर–पूर्ण उन्मूलन की सिफारिश की जाती है, हालांकि कृषि व्यवस्था के भीतर खरपतवार बनाए रखना एक आशीर्वाद और उपद्रव दोनों हो सकता है। खरपतवार जीवविज्ञान और खरपतवार प्रतिस्पर्धा के पहलुओं की जानकारी जैविक कृषि प्रणालियों में खरपतवार प्रबंधन के लिए विशेष प्रासंगिकता रखती है। जैविक कृषि में खरपतवार प्रबंधन के लिए निम्नलिखिल विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन के लिए निवारक विधि

खरपतवार रोकथाम के अंतर्गत एक नए क्षेत्र में नए खरपतवारों के प्रवेश और स्थापना को रोकने के उपायों को शामिल किया जाता है। यह खरपतवार मुक्त फसल के बीज, बीज प्रमाणीकरण, खरपतवार कानून और संगरोध कानूनों के उपयोग से प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यतया, देश के भीतर खरपतवारों के फैलाव को साफ बीज कानूनों, कृषि उपकरणों की सफाई और उत्पादन, सिंचाई के पानी की सफाई, रेत और बजरी की सफाई और मिट्टी में लौटे हुए खरपतवार बीज की संख्या को कम किया जा सकता है। फसल क्षेत्र में खरपतवार की प्रविष्टि को पूरी तरह से विघटित गोबर की खाद या कम्पोस्ट के प्रयोग, बुवाई से पहले कृषि मशीनरी की सफाई करके, मेड तथा सिंचाई/जल निकासी चौनल को खरपतवार से मुक्त रखकर, खरपतवार मुक्त बीज के उपयोग से रोका जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन के लिए सांस्कृतिक विधि

सांस्कृतिक विधियाँ खरपतवारों के विरुद्ध फसलों को प्रतिस्पर्धी लाभ प्रदान करती हैं। ये फसलों को तेजी से वृद्धि तथा विकास करने में सहायता प्रदान करती हैं। खरपतवार प्रबंधन के लिए प्रयुक्त विभिन्न सांस्कृतिक विधियों का वर्णन निम्न है।

स्टेल सीडबेड विधि

इस विधि में खेत की तैयारी के बाद उसे सिंचित कर खरपतवारों के अंकुरण के लिए छोड़ा जाता है। अंकुरण की क्रिया पूरी होने पर खेत की जुताई से खरपतवारों का प्रबंधन किया जाता है। यह विधि खरपतवारों के जमाव को कम करने के साथ साथ प्रारंभिक फसल–खरपतवार प्रतियोगिता में देरी करती है और खरपतवार बीज बैंक को भी कम कर देती है।

ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई

इस विधि के अंतर्गत ग्रीष्म ऋतु में खेतों की मिट्टी पलटने वाले हल द्वारा गहरी जुताई की जाती है जिससे खरपतवारों के बीज और कंद जमीन के ऊपर आ जाते हैं। इस प्रकार निरंतर तीव्र प्रकाश लगने के कारण खरपतवारों के बीज और कंद अंकुरण छमता खोकर निष्क्रिय हो जाते हैं। इस विधि से कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप भी काफी कम हो जाता है। खरपतवारों को नष्ट करने की यह पद्धति वहां अपनाई जा सकती है, जहां ग्रीष्म ऋतु में कोई भी फसल न ली गयी हो अथवा खरपतवारों का अत्यधिक संक्रमण हो।

बीजों का चयन तथा उपचार

बीज के उपचार से पूर्व, सुनिश्चित कर लें कि बीज स्वस्थ, आकार में एक समान और कीट क्षति अथवा रोग से मुक्त हों। प्रमाणित तथा स्वच्छ बीजों के चयन से जैविक कृषि के अंतर्गत अप्रत्यक्ष रूप से खरपतवारों का प्रबंधन किया जा सकता है । बिजाई के लिए अच्छे बीज की निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए –

1. बीज शुद्ध प्रजाति का होना चाहिए।
2. बीज स्वस्थ, रोग रहित, विषाणु, सूत्रकृमि तथा जीवाणु आदि से मुक्त होना चाहिए।
3. बीज अंकुरण की सही अवस्था में होना चाहिए।

स्वस्थ बीज के चयन के उपरांत जैविक कृषि के अंतर्गत अभिनव बीज उपचार के सूत्र निम्नानुसार हैः

- गर्म पानी (53 डिग्री सेल्सियस) 20–30 मिनट के लिए का उपचार।
- गौ मूत्र द्वारा बीजों का उपचार
- बीजामृत से उपचार
- हींग (एस्फोएटिडा) 250 ग्राम/लीटर विलयन से प्रति 10 किलो बीज का उपचार
- गौ मूत्र के साथ मिश्रित हल्दी कंद पाउडर द्वारा उपचार
- पंचगव्य द्वारा उपचार

- ट्रायकोडर्मा विरिडी (4 ग्राम/किग्रा बीज) या स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस (10 ग्राम/किग्रा बीज) से बीजोपचार
- बायोफर्टिलाइजर्स (राइजोबियम/एजोटोबैक्टर . पीएसबी) से उपचार

बीज दर

फसलों का कृषि क्षेत्र पर धनत्व उनकी खरपतवारों के साथ प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करता है। साधारणतया इष्टम या कुछ उच्च बीज दर का उपयोग खरपतवारों की संख्या व उनके शुष्क भार को काम करता है तथा फसलों को प्रतिस्पर्धी लाभ प्रदान करता है। अतः फसलों में इष्टम पौध संख्या को सुनिश्चित करके जैविक कृषि के अंतर्गत खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। विश्व स्तर पर हुए विभिन्न शोधकार्यों से पता चला है कि जैविक पद्धति से उगाई अनाजवाली फसलों में बीज दर को बढाकर प्रभावी खरपतवार प्रबंधन किया जा सकता है।

बुवाई/रोपण समय

फसलों की बुवाई का समय एक गैर–मौद्रिक निवेश है जो फसल उत्पादकता को बहुत प्रभावित करता है। प्रारंभिक रोपण फसलों को खरपतवारों से अधिक प्रतिस्पर्धी बनाता है जिससे खरपतवारों को उनके उद्भव और विकास के लिए पर्याप्त सूर्य प्रकाश व अन्य आवश्यक साधन प्राप्त नहीं हो पाते है।

उन्नतशील फसल प्रजातियों का प्रयोग

जैविक खेती में प्रभावी खरपतवार प्रबंधन प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धी फसल किस्मों का चयन जरुरी है। खरपतवार दमन और खरपतवार सहिष्णुता खरपतवार प्रतिस्पर्धी फसल किस्मों के चयन के लिए महत्वपूर्ण है। बहुत से गुण जैसे कि जड़ों की आकृति, प्रारंभिक वृद्धि, पत्तियों का आकार तथा एलिलोपैथिक अंतःक्रिया किसी प्रजाति को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाती हैं। अतः उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रजातियों के चयन द्वारा जैविक कृषि में खरपतवार संक्रामकता को कम किया जा सकता है।

सिंचाई का समुचित प्रयोग

फसलों में सिंचाई का इष्टतम समय और उसकी संख्या खरपतवारों के घनत्व और शुष्क भार को कम कर देती है। कुछ अध्ययनों के अनुसार बुवाई से पूर्व की गयी सिंचाई से चीनोपोडियम (बथुआ) खरपतवार के संक्रमण को लगभग 20 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। अतः जैविक विधि से फसलों के उत्पादन के समय सिंचाई के साधनो का समुचित प्रयोग अति आवश्यक है।

फसल चक्रीकरण/फसल विविधीकरण

एक ही फसल को बार–बार एक खेत में लेने से उस फसल में खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाता है। उदाहरणार्थ एक ही खेत में बार–बार चने की फसल उगाने से बथुआ तथा फेलरिस माइनर (गेहूँ के मामा) खरपतवार का प्रकोप बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप कुछ समय बाद इनकी संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि उस खेत में चने की पैदावार ले पाना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं रहता है। विभिन्न जीवन अवधियों की फसलों को एक चक्रीय क्रम में लगाकर फसल और खरपतवारों के बीच की साझेदारी को तोडा जा सकता है। उपर्युक्त साझेदारी को तोड़कर मुख्य रूप से स्मूथरिंग और एलोपैथिक प्रभाव से खरपतवार बीज उत्पादन में महत्वपूर्ण कमी की जा सकती है। अतः यह आवश्यक है कि एक ही फसल को बार–बार एक ही खेत में न बोया जाए एवं उचित फसल चक्र अपनाया जाए।

हाथ से निराई –गुड़ाई

यह खरपतवारों पर नियंत्रण पाने की सरल, प्रभावपूर्ण तथा उत्तम विधि है। फसलों की आरंभिक अवस्था बुवाई के 15–45 दिन के मध्य का समय खरपतवारों से प्रतियोगिता की दृष्टि से क्रांतिक समय है। परिणामस्वरूप, आरंभिक अवस्था में ही फसलों को खरपतवार से मुक्त करना अधिक लाभदायक होता है। बुवाई के 20 दिनों के बाद ही खुरपी से पहली तिराई करके खेत को खरपतवार रहित करना आवश्यक होता है, जिससे खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण किया जा सके। हाथ से खरपतवार निकालने की विधि तभी अपनाई जानी चाहिए जब खेत का क्षेत्रफल थोड़ा हो तथा श्रमिक आसानी से कम मूल्य पर उपलब्ध हो।

इन्टरक्रोपिंग (अंतर–फसल की बुवाई) तथा मल्चिंग का प्रयोग

विभिन्न प्रकार की फसलें जो कि आकारीय रूप से अलग हो को साथ उगाकर जैविक खेती के अंतर्गत खरपतवार प्रबंधन किया जा सकता है। इंटरक्रॉपिंग (अंतर–फसलीकरण) के माध्यम से उत्पादन के साधनो का एक बड़ा भाग लाभकारी फसलों तक पहुंचाया जा सकता है जोकि समय के साथ उनकी वृद्धि और विकास को अधिक गति प्रदान कर उन्हें प्रतिस्पर्धी बनता है। इसके अतिरिक्त अंतर–फसल की बुवाई से खरपतवारों के नियंत्रण में लगी लागत को भी कम किया जा सकता है तथा कृषकों की आमदनी को भी काफी सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। विभिन्न शोधकर्ताओ के अनुसार केवल गन्ने की मुख्य फसल की तुलना में गन्ने तथा मूंग की इन्टरक्रोप्पिंग द्वारा खरपतवारों के शुष्क भार को प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है।

कवर फसलों व हरी खाद का प्रयोग

जैविक कृषि के अंतर्गत कवर और हरी खाद वाली फसलों जैसे कि ढैंचा, लोबिआ आदि के अनुप्रयोग की अनुशंसा की जाती है। ये फसलें अपने त्वरित विकास, अधिक जैवभार उत्पादन, एलीलोपैथिक प्रभाव इत्यादि गुणों के कारण जैविक कृषि में खरपतवारों का प्रबंधन करने में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त कवर फसलों और हरी खाद वाली फसलों के उपयोग से मृदा में लाभदायक फफूंद, जीवाणु और मायकोराइजा समुदायों को बढ़ावा मिलता है जो खरपतवारों को अपने द्वारा बने वृद्धि नियामक पदार्थों से नियंत्रित करते हैं। जुताई के दौरान हरी खाद का भूमि में अधिग्रहण खरपतवार के जमाव को रोकने के साथ साथ उनकी वृद्धि को भी रोकता है।

थर्मल खरपतवार नियंत्रण ज्वाला निराई (फ्लेम वीडिंग)

थर्मल खरपतवार नियंत्रण के अंतर्गत फ्लेम तथा खरपतवारों के मध्य सीधा संपर्क बनाने के लिए ज्वलनशील उपकरणों का उपयोग किया जाता है। इस विधि में तीव्र ज्वाला के प्रभाव से खरपतवारों में कोशिकीय स्तर पर हानि पहुँचती है तथा उनके जलाकर भी तेजी से नष्ट किया जा सकता है। थर्मल खरपतवार नियंत्रण विधि का प्रयोग फसलों के जमने से पूर्व किया जा सकता है ताकि फसल को खरपतवारों की तुलना में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त हो सके। इस विधि का प्रयोग फसलों के जमने के बाद भी किया जा सकता है हालाँकि, फसल उत्पादन की अवधि के दौरान थर्मल खरपतवार नियंत्रण से फसलों को भी नुकसान पहुँच सकता है। इस विधि के अंतर्गत खरपतवार नियंत्रण के लिए फ्लेमर्स उपयोगी होते हैं। सामान्यतया प्रोपेन से परिचालित फ्लेमेर्स का प्रयोग इस विधि में किया जाता है। ज्वाला निराई से खरपतवारों का तापमान 130 डिग्री फारेनहाइट तक बड़ जाता है। तापमान में अचानक वृद्धि से पौधों की कोशिकाओं में कोशिका द्रव्य का विस्तार हो जाता है, जिससे कोशिकाओं की दीवार टूट जाती है तथा खरपतवार नष्ट हो जातें हैं। खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण प्राप्त करने के लिए उनकी 2 से 3 पत्ती वाली अवस्था में ज्वाला निराई का प्रयोग किया जाना चाहिए।

मृदा सौरकरण (सोयल सोलरिजेशन)

इस विधि के अंतर्गत नम मृदा में सौर विकिरण को फँसाने के लिए पॉलीथीन फिल्म (आमतौर पर काला या स्पष्ट प्लास्टिक शीट) द्वारा ढक दिया जाता है। इस प्रकार कई सप्ताह तक सौरकरण द्वारा मिट्टी के तापमान में वृद्धि से खरपतवार, खरपतवार बीज व अन्य रोग ब्याधियों का नियंत्रण किया जा सकता है। विभिन्न अध्ययनों में खरपतवारों पर मृदा सौरकरण के नकारात्मक प्रभाव की जानकारी देखने को मिलती है। साथ साथ यह भी पाया गया है कि तंबाकू और सब्जी फसलों में ऑरोबांचे परजीवी खरपतवार और घातक साइपरस रोटंडस का बेहतर नियंत्रण मृदा सौरकरण से किया जा सकता है।

जैविक खरपतवार प्रबंधन

जैव खरपतवार नियंत्रण विधि के अंतर्गत खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए बायोएजेंट जैसे कि कीट, रोगजनक जीव तथा अन्य जीवों का प्रयोग किया जाता है। कीट और रोगकारक जीव खरपतवारों को संक्रमित करके उनकी वृद्धि और विकास को अवरुद्ध करते हैं अथवा उनको पूर्णतया नष्ट कर देते हैं। जैविक नियंत्रण विधि से खरपतवार कम हो सकते हैं लेकिन उनका पूर्णतः उन्मूलन संभव नहीं है। जैविक नियंत्रण खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रदूषण मुक्त और आर्थिक विकल्प है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन खरपतवार प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए दो या अधिक खरपतवार नियंत्रण विधियों का संयोजन है। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन प्रणाली मूल रूप से प्रभावी, भरोसेमंद और व्यावहारिक खरपतवार प्रबंधन प्रथाओं का एकीकरण है जिसे उत्पादकों द्वारा आर्थिक रूप से उपयोग किया जा सकता है। यह खरपतवार प्रबंधन सिद्धांतों पर निर्भर करता है जो सांस्कृतिक, यांत्रिक, थर्मल, और जैविक साधनों के संयोजन से दीर्घकालिक खरपतवार प्रबंधन के लिए उपयुक्त साबित हुए हैं।

उपरोक्त सूचना से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जैविक कृषि में खरपतवार नियंत्रण के लिए कोई एक मानकीकृत विधि के प्रयोग द्वारा प्रभावी खरपतवार प्रबंधन प्राप्त नहीं किया जा सकता है। हालांकि पारंपरिक कृषि में खरपतवारों को रासायनिक शाकनाशियों की सहायता से काफी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है। जैविक कृषि के अंतर्गत खरपतवारों से उपज को होने वाली हानि से बचाने के लिए निवारक उपाय करते हुए एक दीर्घकालिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। खरपतवार नियंत्रण की लागत को कम करने तथा खरपतवारों से होने वाली उपज के नुकसान को रोकने के लिए दीर्घकालिक लक्ष्य के साथ–साथ विभिन्न प्रत्यक्ष और सांस्कृतिक विधियों को एकीकृत करने की आवश्यकता है।

लेजर लेवलर मशीन से भूमि समतलन एवं रख–रखाव

हिमांशु पांडेय, मुकेश कुमार सिंह एवं घनश्याम तिवारी

सी. टी. ऐ. ई., महाराणा प्रताप यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर एंड टेक्नोलॉजी, उदयपुर, राजस्थान

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 329 मिलियन हैक्टर है। इसमें से 195 मिलियन हैक्टर सकल फसल क्षेत्र है और लगभग 140–142 लाख हैक्टर क्षेत्र मे बुआई की जाती है। दूसरी ओर, शुद्ध सिंचित क्षेत्र केवल 65.3 लाख हैक्टर है। भारतीय कृषि का लगभग 45 प्रतिशत भाग सिंचिंत कृषि भूमि है, बाकी वर्षा आधारित है। हमारे देश में विभिन्न प्रकार की कृषि पद्धतियों एवं फसल प्रणालियां हैं, जिनको स्थानीय जलवायु एवं किसानों के पास उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखकर विकसित किया गया है। फसल प्रणालियों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली महत्वपूर्ण है। जिसके अन्तर्गत लगभग 10.5 मिलियन हैक्टर क्षेत्र आता है। इस देश की खाद्यान सुरक्षा के दृष्टिकोण से हमेशा राष्ट्रीय प्राथमिकता दी जाती रही है। इसको आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद और टिकाऊ बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। हाल के वर्षों में धान की कीमतों में उतार चढ़ाव की वजह से यह और कठिन हो गया है। अतः इतने बड़े भूभाग में अपनाई जाने वाली फसल प्रणाली को मुनाफे का सौदा बनाना और लंबे समय तक बनाये रखना देश हित में बहुत जरूरी है। अतः इस फसल प्रणाली के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली सभी तकनीकों विकल्पों पर नए सिरे से विचार कर उनको अधिकाधिक क्षेत्रों में प्रश्रय देना आज की प्राथमिकता है। यदि हम हमारे पास उपलब्ध पानी से सिंचाई उचित तरीके से करें तो हम उतनी ही पानी की मात्रा से अधिक भूभाग की सिंचाई कर सकते है, खेत में पानी का समान रूप से वितरण सुनिश्चित करने के लिए खेत को सावधानी पूर्वक समतल करना आवश्यक हो गया है समतल खेत में जल इकट्ठा नहीं हो पाता तथा उसकी निकासी भी आसानी से हो जाती है। समतलीकरण द्वारा पादप पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग एवं उच्च जल उपयोगी क्षमता सुनिश्चित होती है, जो की फसल की एक समान वृद्धि के लिए उत्तरदायी होता है। जमीन असमतल होने की वजह से फसल पर्याप्त मात्रा में पानी का उपयोग नहीं कर पाता जिससे उपज तथा कृषि आय में कमी होती है। खेत में सिंचाई की अच्छी खासी मात्रा २५–३० प्रतिशत जमीन के असमतल होने की वजह से बेकार हो जाती है। जिन खेतों को समतल नहीं किया जाता है उनमे खड़ी फसल ऊँची नीची होती है। ज्यादा खर–पतवार का बोझ पड़ता है और फसल एक जैसी नहीं पकती है और ये सभी खाद्यान की खराब गुणवत्ता का कारण बनते है।

किसान अपने खेतो को अच्छी तरह से समतल करने में पर्याप्त समय और साधन लगाते है जिस्के लिये समतलीकरण के उद्देश्य को पूरा करने हेतु नवविकसित तकनीक लेजर लैण्ड लेवलर का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। संसाधन संरक्षण तकनीकियों से फसलों में उच्चतम् परिणाम तभी आते हैं जब किसान आवश्यकतानुसार लेजर भूमि समतलीकरण के बाद खेती करता है। सतही सिंचाई क्षेत्रों में यह आवश्यक है कि सतह उपयुक्त रुप से समतल हो व उसमें उचित ढ़लान हो ताकि सिंचाई प्रक्रिया सुचारु हो। सतही सिंचित क्षेत्रों के समतलीकरण के लिए लेजर निर्देशित उपकरणों का उपयोग आर्थिक रुप से संभव हो गया है। इन सुविधाओं का किराये पर उपलब्ध होने की वजह से इनका प्रयोग छोटे किसान भी कर सकते है।

इस लेख में खेत को समतल करने के लिए आधुनिक यंत्र के उपयोग तथा रख–रखाव की जानकारी दी गयी है। यह यन्त्र लेजर लेवलर के नाम से जाना जाता है और भारत में भी यह काफी प्रचलित है। मिट्टी की सतह की असमता से अंकुरण, स्टैंड और फसल पैदावार पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। लेजर लेवलर वांछित ढलान के कुछ डिग्री के भीतर खेत को समतल करता है। लेजर लेवलर गहराई तक खेत के उच्च बिंदु से कम बिंदु को मिट्टी बदलाव करता है और इसलिए मिट्टी की पैदावार क्षमता में वृद्धि में मदद करता है।

कार्य करने का सिद्धांत

लेजर लैंड लेवलर में मुख्य रूप से चार पुर्जे लेसर ट्रांसमीटर, लेजर बीम रिसीवर या सेंसर, कंट्रोल बाक्स और हाइड्रोलिक मांझे (बकेट) होते हैं। पहले पुर्जे लेसर ट्रांसमीटर से लेजर किरणों निकलती हैं जो कि 300 मीटर से 1500 मीटर तक चारों तरफ अपनी लेजर किरणों का जाल बिछा देती हैं। दूसरे पुर्जे लेजर बीम रिसीवर या सेंसर को कराहे पर लगे एक पाइप पर ऊंचा करके फिट किया जाता है जो कि लेसर ट्रांसमीटर से निकलती किरणों को

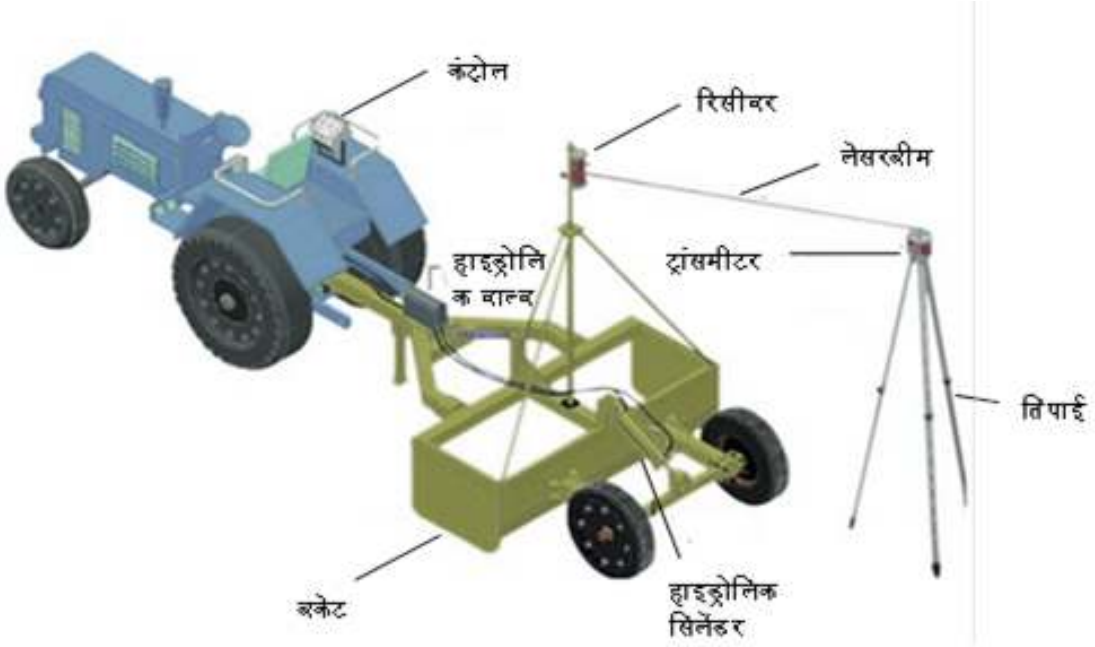

चारों तरफ से रिसीव करके ट्रैक्टर पर लगे कंट्रोल बाक्स को सिगनल भेजता है। तीसरा पुर्जा कंट्रोल बाक्स ट्रैक्टर चालक के दाईं ओर फिट होता है जो रिसीवर से प्राप्त सिगनल को हाइड्रोलिक डिस्ट्रीब्यूटरी वाल्व के माध्यम से कराहे पर लगे सिलेंडर तक भेजता है और चौथा पुर्जा बकेट पर हाइड्रोलिक सिस्टम लगा होता है। हाइड्रोलिक वाल्व ट्रैक्टर से हाइड्रोलिक पंप के माध्यम से एक खास प्रैशर से कराहे पर फिट सिलेण्डर को सही मात्रा में तेल भेजता है। फालतू तेल दूसरी पाईप से वापस ट्रैक्टर के रिजरवियर में आ जाता है। इस सिस्टम से ही कराहा ऊपर नीचे होता है।

विशेषताएं :

- खेत को समतल करने के लिए उन्नत और सटीक लेजर तकनीक जो स्वचालित रूप से मिट्टी को उठती और नीचे करती है। यह लेवलर में स्वचालित रूप से नहीं होता है।
- इलेक्ट्रिक कंट्रोल पैनल ग्रेड से संबंधित ड्रैग बकेट स्थिति दर्शाने वाले संकेत डिस्प्ले करता है।
- आम तौर पर किसानों द्वारा पसंद किया गया जिनके पास काफी भूमि है विशेषकर वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए।
- बेहतर समतल कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाता है जैसे धान के लिए बीजरोपण की तैयारी।
- लेजर लेवलर द्वारा भूमि समतल करना पानी के अधिकतम उपयोग, उच्च गति से कार्य और निराई लागत में कमी के परिणाम में आता है।

खेत को समतल करने का तरीका:

खेत को समतल करने के लिए मिट्टी को खेत की ऊँची जगहों से निकली जगहों पर कुशलतम तरीके से ले जाने की जरूरत होती है। समतल करने से पहले खेत को जोतना और उसका स्थानीय सर्वेक्षण करना आवश्यक होता हैप् खेत को पहले जोतना चाहिए फिर उपयुक्तता के अनुसार रोटरी टिलर , डिस्क हीरो या कल्टीवेटर का प्रयोग करे सतह पर पड़े सारे अवशेषों एवं जड़ों आदि को निकल दें ताकि मिटटी में से आसानी से निकाल सके। खेत में ऊँचे और निचले स्थानों को अंकित करने के लिए सर्वेक्षण राड से खेत का सर्वेक्षण करके औसत ऊंचाई निकाल ले इसके उपरांत लेवलर ट्रेक्टर (45 हा. पा.) से जोड़कर कर निकाली गयी औसत उंचाई पर ब्लेड को सेट करने बाद खेत के ऊँचे स्थानों से निचे स्थानों की तरफ ट्रैक्टर को गोल घेरे में चलाएं लेसर लेवलर स्वचालित ढंग से आवश्यकता के अनुसार मांझे को ऊपर उठाता या नीचे गिराता है, कार्य क्षमता को अधिकतम करने के लिए जैसे ही मांझे (बकेट) मिट्टी से भरने भरने की स्थिति में आए ऑपरेटर को तुरंत बकेट को नीचले इलाके की ओर मोड़देना चाहिए। इसी तरह जैसे ही बकेट खाली हो उसे तुरंत उंचाई वाले इलाके की ओर मोढ़ दिया जाना चाहिए। जब वृतीय ढंग से पूरा खेता का मुआयना कर लिया जाए तो बकेट को एक बार खेत के उंचाई वाले इलाके से निचले इलाके तक अंतिम बार मुयाअना करते हुए लेवर करना चाहिए।

इस्तेमाल से फायदे :

- लेजर लैंड लेवलर इस्तेमाल के उपरांत किसान अपने खेतों में पानी का सही प्रयोग कर खेती का लाभ उठा सकते हैं।
- लगभग २५–३० प्रतिशत पानी की बचत तथा जमीन की बचत सिंचाई के लिए मेड बनाने की जरूरत नहीं।
- फसल के लिए एक समान नमी का वातावरण, फसल की वृद्धि के लिए उपयोगी उपज में १०–१५ प्रतिशत की बढ़ोतरी पूरे खेत में फसल के बराबर बढ़ने के कारण पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता में सुधार।
- खरपतवार नियंत्रण श्रम की बचत समय की बचत,जमीन की बचत आदि।

लेजर लैंड लेवलर प्रयोग के बाद रख–रखाव

लेजर लेवलर का उपयोग एक सीमित अवधि में होता है, और बाद में इनको रखना पड़ता है । वर्तमान युग में देश की तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या एवं महंगाई में किसान भाइयों को अपने यंत्रों के सही प्रयोग के साथ देखभाल एवं रखरखाव के बारे में सही जानकारी होना अति आवश्यक है, जिससे यंत्रों को अधिक समय तक उपयोग करके कृषि उपज को बढ़ा सकें, साथ ही साथ कृषि उत्पादन लागत पर नियंत्रण करके अधिक लाभ कमा सके तथा उचित देखभाल एवं रखरखाव करके कृषि यंत्रों को खराब होने से बचा सकें ।

लेजर लेवलर के उचित रूप से कार्य करने के लिए इसमें आवश्यक समायोजन यानि एडजैस्टमेंट कर लेना चाहिए जिससे यह सुचारु रुप से कार्य करे।

- मशीन को प्रयोग करने के बाद ठीक ढंग से साफ करना चाहिए ताकि धूल, मिट्टी आदि निकल जाए ।
- प्रयोग करने के बाद कुछ मुख्य पुर्जे जैसे कि लेसर ट्रांसमीटर, लेजर बीम रिसीवर या सेंसर आदि को अच्छी तरह से साफ कर के सुरक्षित जगह पर रखे ताकि वह खराब ना हो ।
- मशीन के घूमने वाले भाग को ग्रीस से लुब्रिकेट करना चाहिए ।
- ऐसे भाग जो मिट्टी के संपर्क में आते हों जैसे कि हाइड्रोलिक मांझे (बकेट) उन्हें अच्छी तरह से साफ करना चाहिए ।
- कल–पूर्जों जैसे – नट बोल्ट, आदि को अच्छी तरह से चेक कर लें. यदि नट–बोल्ट ढीले हों तो कस देना चाहिए ।
- मशीन को अच्छी तरह से साफ कर के छांव में सुरक्षित जगह पर रखे ।

अगर किसान भाई इन सभी बातों का ध्यान रखते हुए मशीन की देखभाल एवं रखरखाव करते हैं तो निश्चित रुप से कई वर्षों तक कार्य कर सकते हैं और आर्थिक लाभ कमा सकते हैं ।

फसल अवशेष प्रबन्धन की चुनौतियाँ एवं उपाय

निशा कटारिया, दिशा काम्बोज, शारीक अली, सतीश कुमार एवं चन्द्र नाथ मिश्र

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत 371 मिलियन टन का वार्षिक फसल अवशेष उत्पादक देश है जिसमें से क्रमशः गेहुँ के अवशेष 27–36 प्रतिशत एवं धान के अवशेष 51–57 प्रतिशत है । हम प्रतिवर्ष 98 मिलियन टन धान का उत्पादन करते है, जिससे हमें 140 मिलियन टन पराली फसल अवशेष के रूप में प्राप्त होती है। हम गेहूँ के शेष बचे अवशेषों को पशुओं के चारे के रूप में तुड़ी, भुसा बनवा कर सुखे चारे के रूप में प्रयोग कर लेते है। लेकिन धान का बचा अवशेष किसान के लिये एक समस्या बन जाता है जिससे, गेहूँ की शीघ्र बुआई के लिए किसान धान की पुआल को खेत में ही आग लगा देता है।

हर साल धान की कटाई के बाद इतनी मात्रा में पराली एव कंबाइन की कतरन खेतों में रह जाती है कि इसको पूर्ण रूप से इकट्ठा करके किसी तकनीकी केंद्र में ढुलाई करके ले जाना बहुत कठिन एवम महंगा है । वर्तमान में इसकी ढुलाई करने का कोई कारगर तकनीकी समाधान मौजूद नही है और ना ही धान की कटाई और गेहूं की बुआई के बीच की 15 दिन की अवधि के अंदर इसको गलाने का कोई प्रभावी जीव वैज्ञानिक उपाय है, ऐसे में खेतों में खड़े धान ठूंठ को जलाना ही किसानो के लिए सबसे सरल समाधान लगता है।

गावों में लगातार घट रही पालतू जानवरों की संख्या और बढ़ती महंगाई खेत में अवशेष जलाने के मुख्य कारण है। किसानो के पास एक समस्या आधुनिक मशिनो का न होना भी एक प्रमुख कारण है। अगर किसान के पास ऐसी मशीन होगी जो फसल अवशेष में ही अन्य फसल की बिजाई कर दे तो वह अवशेष आग नहीं लगाएगा । किसानों को फसल अवशेष जलाने से होने वाले हानिकारक प्रभाव का भी पूर्ण ज्ञान ना होना भी फसल अवशेष जलाने का प्रमुख कारण है।

फसल अवशेष जलाने वाले प्रमुख राज्यः

नासा के द्वारा माड़रेड रिजोलुशन इमेजिंग स्पेक्ट्रो रेडियोमीटर उपग्रह से लिए गए आकड़ों के अनुसार अकेले भारत में पंजाब, हरियाणा उत्तर प्रदेश व राजस्थान के कुछ जिलों में सबसे अधिक फसल अवशेषों को जलाया जाता है।

हरियाणा में निम्न जिलों में अधिक अवशेष जलाए जाते हैः–

कुरूक्षेत्र, करनाल, अम्बाला, पानीपत, कैथल, यमुनानगर, सोनीपत, जीन्द।

पराली जलाने के कारण होने वाले दुष्प्रभावः–

(अ) वायु की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभावः–

पराली जलाने से हानिकारक धुआ प्रदुषण का कारण बनता है तथा वायुमण्डल मे बड़ी मात्रा में जहरीली गैसों का निर्माण होता है। एक टन पराली जलाने से हवा में 3 किलो कार्बन कण, 60 किलो कार्बन–मोनोक्साइड 1500 किलो कार्बन आक्साईड, 200 किलो राख व 2 किलो सल्फरडाइ आक्साईड फैलाती है इससे लोगों में त्वचा व सांस संबंधी तकलीफें बढ़ रही है ।

(ब) मृदा के स्वास्थ्य और उपजाऊ शक्ति पर प्रभाव :–

अवशेष जलाने से मृदा में उपस्थित पोषक तत्व नष्ट हो जाते है तथा भूमि की उर्वरता शक्ति भी नष्ट हो जाती है । खेत में मौजूद भूमिगत मित्र कीट जैसे की केचुए, सुक्ष्म जीव, आग की गर्मी के कारण मर जाते है । इसके अतिरिक्त तरह तरह की बिमारियाँ व शत्रु कीट का सक्रमण बढ़ जाता है।

धान के पुआल को जलाने से पोषक तत्वों की हानि (प्रति हेक्टेयर) :–

नाइट्रोजन – 5.5 kg

सल्फर – 1.2 kg

फॉस्फोरस – 2.3 kg

पोटाश – 25.0 kg

आर्गेनिक कार्बन – 400 kg

(स) मानव, पशु पक्षिओं पर प्रभावः

अवशेषों को जलाने से वायुमण्डल में हानिकारक गैसों का निर्माण होता है जोकि मानव, पशु–पक्षियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जिससे हवा में सांस लेने में, दिल की बिमारियाँ, अस्थमा, खाँसी जैसी भयानक समस्या बढ़ रही है

। पेड़ पोधौ की पत्तियां जल जाने से हरियाली नष्ट हो जाती है, पक्षियों के घोसले नष्ट हो जाते है चील गिद्ध आदि प्रजातियों के विलुप्त होने का एक कारण यह भी है। गर्भवती महिलाओं में प्रदुषण का प्रभाव भ्रूण की वृद्धि पर भी पड़ रहा है।

फसल अवशेषों में आग लगाने से रोकने के उपायः

मल्चिंग के रूप में फसल अवशेषों की अवधारणः जमीन की सतह पर फसल अवशेष छोड़ने से उगने वाले खरपतवारों से भौतिक बाधा उत्पन्न होती है। जीरो टिलेज विधि (फसल अवशेषों के साथ) खरपतवारों के बीजों को खाने वाले परभक्षियों की मात्रा को बढ़ावा देती है जोकि खरपतवार के बीज भंड़ार को कम करने में सहायक होते हैं। धान के फसल अवशेष गेहूं की फसल में मंडुसी (फेलेरिस माइनर) के अंकुरण एवं वृद्धि को रोकते हैं।

खाद के रूप में: किसानों को जागरूक किया जाये की इन अवशेषों से उत्तम किस्म की खाद मिल सकती है। फसल अवशेष को कंपोस्ट खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

मशरूम की खेतीः ढींगरी (ऑयस्टर) मशरूम को किसी भी प्रकार के कृषि अवशिष्टों पर आसानी से उगाया जा सकता है, इसको उत्पादन करने के लिए उत्पादन कक्ष की जरूरत होती है, जो बाँस, कच्ची ईटों, पॉलीथीन तथा पुआल से बनाऐ जा सकते है।

जागरूकता अभियानः अवशेषों को जलाने से रोकने के लिए हमको सबसे पहले जागरूकता अभियान शुरू करने चाहिए । किसानो को फसल अवशेष जलाने के दुष्प्रभावों के विषय में पोस्टर, पत्राचार व फिल्मों आदि के माध्यम से बताना चाहिए।

मशीनों का प्रयोगः भारत में अब ऐसी बहुत सी मशीनें है जो फसल अवशेष को बिना जलाए ही उसमें सुगमता से अगली फसल की बिजाई कर देती है। आज जो मशीन भारत में अवशेष प्रबन्धन में सहायक है इस प्रकार है –

(1) टर्बो हैपी सीडर

(2) रोटरी डिस्क ड्रिल

(3) पेडी स्ट्रा चोपर

(4) सुपर स्ट्रा मेनेजमेंट सिस्टम

(5) मल्चर (6) हे रोवर (7) बेलर

किसानों से इन मशीनों के लाभकारी कार्यो की चर्चा करे व साथ ही साथ इनको उपयोग में कैसे लाए समय से बताना चाहिए।

सरकारी योजनाओं को लागु करेः

- किसानों को इर्सेटिव देने से पहले जाँच की जाये कि उसने खेत में पराली जलाई है या नहीं इसके बाद लाभ डीबीटी के जरिए, सीधा खातें में ट्रासफर किया जाए।
- पराली के बायोंथेनाल और बिजली बनाने के प्लांट लगाने के लिए भी सरकार इसैटिव देने की तैयारी में है। पराली का इस्तेमाल नवीकरण योग्य ऊर्जा सयत्रों में ईधन के रूप में करने के अलावा, गत्ता निर्माण फैक्टरी में भी प्रयोग में लाया जा सकता है ।
- सरकार ने 10 लाख अमेरिकी डालर का 'पेड़ी स्ट्रा चैलेज फड' स्थापित किया है जिसका उद्देश्य वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिकों की भागीदारी से इसका तकनीकी समाधान तलाश करना है
- सरकार किसानों को फसल अवशेष प्रबन्धन मशीनरी खरीदने हेतु 50 प्रतिशत तक का अनुदान दे रही है जो की एक अच्छी पहल है ।

फसल अवशेषों के अतिरिक्त लाभः

फसल अवशेषों को घरेलु उपयोग जैसे छतों पर इसुलेशन द्वारा कमरों को गरम व् ठण्डा रखने, फसल अवशेष की गाठों से पशुओं का चारा बनाने, पशुओं के लिए बिछावन आदि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। अवशेषों को कागज, बोर्ड, पैनेल और पैकेजिंग के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

हरे चारे का परिरक्षण

सतपाल, डी.एस. फोगाट, नीलम एवं अनिल खिप्पल[1]

चौ.चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार-125004

[1]भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत की पशुधन संख्या अत्यंत विशाल है। देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के संपूर्ण भू–भाग का मात्र 2 प्रतिशत है जबकि यहां पशुधन संख्या का 15 प्रतिशत है। वर्ष 2012 में हुई 19 वीं पशुगणना के अनसार देश में पशुओं की संख्या 512 मिलियन है जिसमें 37 प्रतिशत गौवंश, 21 प्रतिशत भैंस, 13 प्रतिशत भेड़ व 26 प्रतिशत बकरी है। प्रारंभ से ही पशुधन का हमारे देश की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देश की कुल जोत के लगभग 4 प्रतिशत क्षेत्रफल में ही चारा उगाया जाता है जबकि वर्तमान में 12 से 16 प्रतिशत क्षेत्रफल में चारा उगाने की आवश्यकता है। इसलिए हमारे देश में 36 प्रतिशत हरे व 11 प्रतिशत सूखे चारे की एवं 50 प्रतिशत पशु आहार दाने की कमी आंकी गई है। वर्तमान में देश का हरा चारा उत्पादन 465 मिलियन टन जिसमें चारा अवशेष, उत्पादित चारा एवं चारे का योगदान क्रमशः 54, 28 तथा 18 प्रतिशत है।

अनेक कारणों से हमारे पशुओं की उत्पादकत्ता कम रही है जिसमें से एक मुख्य कारण उन्हें आवश्यक व पौष्टिक आहार का ना मिलना रहा है। यदि हम अपने चारे की आवश्यकता को पूरा करना चाहते हैं तो हमें उपलब्ध सीमित संसाधनों में ही पशुओं को भरपेट गुणवत्तापूर्ण पौष्टिक चारा उपलब्ध करवाने में आने वाली कठिनाईयों का हल खोजना होगा। पशु पालन में कुल लागत का 60 से 70 प्रतिशत खर्च पशुओं को खिलाने में लगता है। हरे चारे का उत्पादन बहुत अधिक जरूरी है इसकी पुर्ति के लिए उपयुक्त घासों का चुनाव करके उच्च गुणवत्ता का चारा उत्पादन कर सकते हैं। पशुओं से अधिक उत्पादन लेने के लिए सबसे जरूरी है कि उनको वर्ष भर पौष्टिक व संतुलित मात्रा में हरा व सूखा चारा मिलते रहना चाहिए। मानसून के मौसम में जब भी चारे का उत्पादन अधिक हो तो उसको संरक्षित करके रख लेना चाहिए ताकि वर्ष भर उपयुक्त चारा मिलता रहे।

किसानों की आय बढ़ाने में पशु पालन की भूमिका बहुत अहम है। कृषि के सकल घरेलु उत्पाद में पशु पालन का लगभग 30 प्रतिशत योगदान है जिसे कम करके नहीं आंका जा सकता। वर्ष 2030 तक पशुओं से बने उत्पाद जैसे कि मांस व अंडे की 75 प्रतिशत व लगभग 65 प्रतिशत तक दूध की मांग बढ़ने की संभावना है। इसलिए पशु पालकों को पशुओं के अच्छे खान–पान एवं स्वास्थ्य का ध्यान रखना होगा तभी उनकी आय बढ़ेगी व आर्थिक स्थिति मजबूत होगी।

पशु आहार में हरे चारे का बड़ा महत्व है। हरे चारे के आभाव में पशु कमजोर हो जाते हैं तथा उनका उत्पादन भी गिर जाता है यदि पशुओं को पौष्टिक हरा चारा मिलता रहे तो उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है तथा उनके आहार पर दाना भी कम खर्च होगा परन्तु अप्रैल–जून व नवम्बर–दिसम्बर के महिनों में हरे चारे की काफी कमी हो जाती है। इसलिए कुछ अहतियात पहले से ही बरतने चाहिए ताकि किसान भाई अपने पशुओं को पूरे वर्ष हरा चारा उपलब्ध करवा सकें। बरसात के मौसम, खरीफ व रबी में पशु पालकों के पास फालतू चारे उपलब्ध होते हैं, अतः इन दिनों में चारों को हमें परिरक्षित करके रखा जाना चाहिए, जिसे कमी के समय पशुओं को खिलाया जा सके। पशु पालकों के पास खरीफ के हरे चारे, ज्वार मक्का, बाजरा व लोबिया तथा रबी के मौसम में बरसीम, जई, लुर्सन होते हैं। परिरक्षण करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि चारे की गुणवत्ता पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े तथा परिरक्षित चारे का उपयोग उन महिनों में किया गया जा सके, जब हरा चारा उपलब्ध न हो। हरे चारे को परिरक्षित करने की दो उत्तम विधियां निम्नलिखित हैं–

(1) **साईलेजः** उच्च नमी वाले चारे को वायु रहित वातावरण में परिरक्षित करना ही साईलेज होता है यानि हरे चारे का आचार बनाना ही साईलेज है।

साईलेज बनाने के लाभः

(अ) साईलेज बनाकर हरे चारे को लम्बे समय तक रखा जा सकता है।

(ब) साईलेज से कम खर्च पर बढ़िया किस्म का भोजन मिल सकता है।

(स) खरपतवार वाले पौधों का भी अच्छा साईलेज बन सकता है।

(द) साईलेज बनाने वाली हरे चारे खरीफ की फसल को जल्दी काटकर, रबी फसल की बुआई की जा सकती है।

(म) साईलेज बनाने से चारे के पोषक तत्वों को नुकसान नहीं होता और अच्छी प्रोटीन वाला चारा तैयार हो जाता है।

साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त चारे: हरे चारे वाली फसलें: जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, जई आदि साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त हैं। दाल वाली फसलें जैसे बरसीम, लुर्सन तथा लोबिया साईलेज बनाने के लिए उपयुक्त नहीं है लेकिन कुछ उपचार करने के बाद इनको भी अच्छे साईलेज में बदला जा सकता है।

साईलेज बनाना: हरे चारे को फूल आने के बाद दूधिया अवस्था में काट लेना चाहिए। इस चारे की कुट्टी कर लेनी चाहिए जिसकी लम्बाई 1 इंच से ज्यादा न हो। इस चारे में शुष्क पदार्थ 30 से 40 प्रतिशत तक अवश्य होना चाहिए। अधिक सूखे चारे का साईलेज भली प्रकार बंधता नहीं बीच में हवा रह जने से फफूंदी लग जाएगी। यदि पानी की मात्रा अधिक है तो साईलेज सड़ जाएगा।

साईलेज तैयार करने के लिए गड्ढे की लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है सामान्यतः एक घन फुट जगह में 15 किलो साईलेज आता है । उदाहरण के तौर पर एक गड्ढा जिसकी लम्बाई 10 फीट, चौड़ाई 5 फीट व गहराई 6 फीट हो उसमें 50 क्विंटल हरे चारे साईलेज बनाया जा सकता है।

भराई: भरने से पहले कच्चे गड्ढे की दीवारें व धरातल को पूरी तरह गोबर + मिट्टी से लीप देना चाहिए। मिट्टी व हरे चारे के सीधे सम्पर्क को रोकने के लिए गेहूँ का भूसा चारों तरफ व धरातल पर लगा देना चाहिए। हरा चारा परतों में भरें व प्रत्येक परत को अच्छी तरह दबाना चाहिए ताकि हवा बाहर निकल जाए। ऊपर के भाग में विशेषकर दीवारों के आसपास, साईलेज बनाने की सामग्री को दबा दें। गड्ढे को दो तीन फीट ऊंचा भरना चाहिए ताकि ऊपर का भाग दबने के बाद भी यह जमीन से ऊंचा रहे।

मुहरबंदी: साईलेज को हवा से बचाने के लिए मिट्टी व गोबर से मोहर बंदी करनी चाहिए। मुहरबंदी वाली सामग्री की परत काफी मोटी होनी चाहिए (5–6 इंच) तक तथा गड्ढे को भरने के तुरंत बाद मुहरबंदी कर दें। साईलेज 45 दिनों में बन कर तैयार हो जाता है। हरे चारे की कमी के दिनों में इस उत्तम पौष्टिकता वाले चारे का प्रयोग किया जा सकता है। पशुओं को दिए जाने वाले साईलेज की मात्रा–

दूध देने वाली गाय	–	25 किलो
ग्रभित गाय	–	20 किलो
भैंस	–	30 किलो
बछड़ी / बछड़े	–	10 किलो

बरसीम, रिजका, लूर्सन आदि फसलों का स्वतंत्र रूप से साईलेज नहीं बनता क्योंकि इनमें प्रोटीन की बहुतायत होती है। फूल वाली अवस्था में इन फसलों को काटकर गेहूं की सूखी तुड़ी के साथ 3 और 1 के अनुपात में मिलाकर साईलेज बनाया जा सकता है। इससे चारा ही सुरक्षित नहीं होता बल्कि गेहूं के भूसे की उपयोगिता बढ़ जाती है।

(2) **'हे' बनाना:** चारे वाली फसल को जब हरी अवस्था में काट कर सुखाया जाता है तो इसे 'हे' कहते हैं। 'हे' बनाने के लिए हरी फसल को काटने के बाद तब तक सुखाया जाता है जब तक उनकी नमी बिल्कुल कम न हो जाए और इनका भण्डारण करने पर इसमें फफूंदी न लगे। यह निश्चित करने के लिए कि फसल सूख गई है या नहीं 'हे' को हाथों में ले कर मोड़ें अगर वह टूट जाए तो समझ लें कि 'हे– बनकर तैयार है।

'हे' बनाने का तरीका: 'हे' बनाने के लिए रिजका बरसीम, लोबिया आदि फलीदार चारों को काम में लाया जाता है क्योंकि इनके तने पतले तथा घने पत्तियों वाले होते हैं इन चारे वाली फसलों को फूल शुष्क होने के बाद काटें तथा फिर इसे धूप में सूखने के लिए खेत के किनारों पर या छत आदि पर रखें। बीच–बीच में जेली के साथ पलटते रहें। कुछ दिनों के बाद यह सूख कर भण्डारण के लिए तैयार हो जायेगी।

कुछ फसल जैसे बरसीम, जिनको तना खोखला होता है उन्हें गंडासे से काट कर छोटे टुकड़े कर लें। इस कटे चारे को 4 से 5 इंच मोटी तहों में किसी पक्के स्थान या समतल भूमि या मकानों की पक्की छतों पर धूप में सुखाएं। ऐसा करने से इनकी पत्तियों को नुकसान नहीं होगा और आप को पशुओं के लिए कमी वाले दिनों में पौष्टिक चारा उपलब्ध हो जाएगा।

'हे' बनाने के लाभ: 'हे' बनाने के भी लगभग वही लाभ हैं जो साईलेज बनाने के हैं क्योंकि दोनों विधियों में फसल को उसी अवस्था में काटा जाता है जिससे फसल के साथ खरपतवार भी हरी अवस्था में कट जाते हैं और उनको फैलना कम हो जाता है और जमीन अगली फसल के लिए जल्दी तैयार हो जाती है एवं पशुओं के लिए हरे चारे की कमी के दिनों में पौष्टिक चारा उपलब्ध हो जाता है।

अमरूद आधारित मूल्यवर्धित उत्पादः एकीकृत बागवानी सम्मिलित प्रणालियों में ग्रामीण महिलाओं हेतु आय सृजन का स्रोत

निशा वर्मा, अमित नाथ, आजाद सिंह पँवार, महेन्द्र पाल सिंह एवं पूनम कश्यप

भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ 250110

अमरूद (साइडियम ग्वाजवा एल.) भारत के उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कीटबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण फल है। अमरूद सभी सामजिक वर्ग में लोकप्रिय है। जिसका कारण इसकी पोषक गुणवत्ता, विशिष्ट स्वाद होते हुए भी कम कीमत होना है। इसके अतिरिक्त अमरूद पेक्टिन, एस्कॉर्बिक एसिड तथा खनिजों का संभावित स्रोत है। अमरूद में करीब 500 से अधिक वाश्पशील यौगिक पाए जाते हैं जोकि इसकी विशिष्ट सुगंध का कारण है, हांलाकि उच्च नमी की मात्रा के कारण अमरूद एक सप्ताह की भंडारण अवधि के दौरान खराब हो जाता है अतः इसका जीवन अल्प होता है। फलस्वरूप फसल की कटाई के उपरांत क्षय कम करने तथा अमरूद के फल की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए संभव समाधान खोजने की तत्काल आवश्यकता है। उत्पादों को तैयार करते समय कई फलों का संयोजन करने से उत्पाद की गुणवत्ता सुधार के साथ–साथ प्राकृतिक रंग, प्रचुर मात्रा में पोषक व अन्य महत्वपूर्ण तत्वों का समावेश भी होता है।

उत्तर प्रदेश में एकीकृत बागवानी सम्मिलित कृषि प्रणाली : अमरूद उत्पादन में उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान आता है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि प्रणालियाँ पायी गई जिनमें अमरूद की व्यापक या सहायक उद्यम के रूप में खेती की जाती है।

- कृषि प्रणालियाँ जिनमें व्यपक रूप से अमरूद की खेती सम्मिलित हैं:
- तराई व भाभर क्षेत्रः फसल (गन्ना–गेंहूँ धान) + बागवानी (आम+अमरूद)+ डेयरी।
- मध्य –पश्चिम क्षेत्रः फसल (गन्ना–गेंहूँ धान) + पशुधन (गाय/भैंस/बकरी)+ बागवानी (आम+ अमरूद)।
- दक्षिण पश्चिमी अर्ध शुष्क क्षेत्रः फसल (गेंहूँ–बाजरा)+ बागवानी (आम/अमरूद/आलू) + पशुधन (गाय/भैंस/बकरी)।
- उपयुक्त कृषि प्रणालियों के अतिरिक्त सहायक उद्यम के रूप में भी उत्तर प्रदेश में लगभग सभी क्षेत्रों जैसे कि पश्चिमी मैदानी, उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र, पूर्वी मैदानी क्षेत्र, विन्धायन क्षेत्र में पाया जाता है।

अमरूद आधारित मूल्य वर्धनः फार्मर फरस्ट परियोजना के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह के माध्यम से विभिन्न आय सृजन के रूप में स्थानीय रूप से उपलब्ध अमरूद आधारित मूल्य वर्धन पर कौशल विकास कार्यक्रम संस्थान द्वारा कराए गए।

अमरूद आधारित मिश्रित उत्पादों का निर्माण महिलाओं के समूह के साथ मिलकर किया गया। मूल्य वृद्धि और विभिन्न उत्पादों के प्रसंस्करण पर विभिन्न प्रशिक्षण महिलाओं के समूह को दिए गये हैं । समूह ने विभिन्न उत्पादों जैसे कि मिश्रित स्क्वैश (अमरूद+संतरा) मिश्रित जैम (अमरूद + सेब + ऑवला + संतरा + अमरफल) में विशेषज्ञता प्राप्त की है। मिश्रित स्क्वैश व जैम प्राकृतिक रंग के साथ –साथ विटामिन और एंटी ऑक्सिडैंट में समृद्ध हैं। इसलिए कई दृश्टिकोणों से यह बहुत महत्वपूर्ण है।

मिश्रित स्क्वैश (अमरूद+संतरा)

मिश्रित स्क्वैश (चार लीटर) की तैयारी के लिए पूरी तरह से पके हुए 1 किलो अमरूद लें, साफ पानी से धोएं फलों को पतले पतले टुकड़ों में काट लें तथा लगभग 4 से 5 घंटे के लिए 1:1 अनुपात में पीने योग्य पानी में डाल दें तदोपरांत अमरूद को मिक्सर ग्राइंडर में डाल कर पीसें तथा छान लें इसी तरह से 1 किलो संतरों का जूस निकाल लें । अमरूद की लुगदी तथा संतरों के जूस को मिला लें। पानी, जिसमें अमरूद डुबा कर रखे थे पेक्टिन से समृद्ध हो जाता है। अतः इसे जैम बनाने के लिए अलग से रख लें। लगभग 60% चीनी की चाशनी (1.6 कि.ग्रा/ 1.3 लीटर) अलग से पानी में तैयार करें तथा उसमें लगभग 40% (1 लीटर) तैयार अमरूद व संतरों को मिलाएँ। सिट्रिक एसिड (0.4%) स्कवैश में मिलाएँ। स्क्वैश को सुरक्षित रखने के लिए 0.2 ग्राम प्रति लीटर की दर से पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट

मिलाएँ। मिश्रित स्क्वैश को पोलीइथाइलीन टेरेफैथलेट (पी. ई. टी) की बोतलों में भर कर रखें। अमरूद + संतरे का मिश्रित स्क्वैश विटामिन सी, विटामिन बी जैसे कि थाइमीन, राइबोफ्लेविन तथा नियासिन का अच्छा स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त इसमें बीटा कैरोटिन भी पाया जाता है।

अमरूद व संतरे की कुल लागत व लाभ आंकलन से इसके आर्थिक लाभ लेने हेतु जानकारी भी जरूरी है। अमरूद व संतरों की कीमत 40 रू प्रति किलोग्राम है जबकि चीनी एवं अन्य सामाग्रियों, श्रम तथा ईधन की लागत मिलाकर 50 रूपये होते हैं। एक किलोग्राम अमरूद तथा संतरे से लगभग 2 लीटर स्क्वैश तैयार हो जाता है। जिसकी बाजार में कीमत 100 रू प्रति लीटर होती है। अमरूद का प्रति पेड़ उत्पादन लगभग 80 किलोग्राम फल होता है। इस प्रकार अमरूद का स्क्वैश बनाकर महिलाएँ प्रति पेड 10,400 रूपये शुद्ध लाभ कमा सकती हैं। जबकि अमरूद का फल बेचकर केवल 3,200 रूपये शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

मिश्रित जैम : (अमरूद + सेब + आंवला + संतरा + अमरफल)

जैम की तैयारी के लिए 1 किलोग्राम फल लें। सेब, अमरफल तथा आंवले को धोएं, छीलें तथा पतले–पतले टुकड़ों में काटें एवं मिक्सर ग्राइंडर में डालकर लुगदी बना लें। संतरों को छीलें तथा मिक्सर ग्राइंडर में डालकर रस निकाल लें। सारी सामग्री को पेक्टिन युक्त पानी में डाल दें, जिसमें से अमरूद के टुकड़े निकाल लिए गए थे। मिश्रण में कुल लुगदी के बराबर चीनी (लगभग 1 किलोग्राम) डालें। जिसमें से दो तिहाई चीनी को शुरूआत में ही लगुदी में मिला दें जबकि बाकी चीनी लुगदी उबलना शुरू होने के तत्पश्चात मिलाए। अंतिम बिंदु तक पहुँचने से पहले (लगभग 0.4 प्रतिशत महीन चीनी का मिश्रण पर छिड़काव करें) इसके अतिरिक्त 0.4 प्रतिशत साइट्रिक एसिड को मिश्रण में मिलाएं। अंतिम बिंदु की जाँच शीट परीक्षण द्वारा करें (जैम की एक बूंद को ठंडे पानी में डालें यदि बूंद न घुले तो जैम तैयार है) जैम को आंच से हटा लें। पौटेशियम मेटाबाइसल्फाइट को 0.2 ग्राम प्रति किलोग्राम जैम के हिसाब से डालें। जैम को काँच की बोतलों में भरें, मिश्रण को कमरे के तापमान पर आने तक ठंडा करें, फिर ढक्कन लगाएं।

मिश्रित जैम बनाने हेतु लागत व लाभ का आंकलन यदि करें तो यह पता चलता है कि एक किलोग्राम मिश्रित फलों की कीमत 60 रूपये प्रति किलोग्राम होती है। जबकि चीनी एवं अन्य साम्रागियों श्रम व धन की लागत मिलाकर कुल खर्च 52 रूपये होता है। पेक्टिन पानी युक्त चीनी हमें स्क्वैश के दौरान इस्तेमाल हुए अमरूदों से ही मिल जाता है। जिसकी जैम बनाने के दौरान कोई अतिरिक्त कीमत नहीं पड़ती। अतः कुल सामग्री का इस्तेमाल कर लगभग 200 ग्राम जैम तैयार हो जाता है। जिसकी बाजार में कीमत 200 रूपये होती है। मिश्रित जैम बनाकर महिलाएं अमरूद के एक पेड़ से 7040 रूपये अतिरिक्त शुद्ध लाभ ले सकती हैं।

अमरूद + सेब + आँवला + संतरा + अमरफल मिश्रित जैम विटामिन सी, बीटा कैरोटीन और विटामिन बी जैसे कि थायमिन, राइबोफ्लेवन, नियासिन तथा कोलीन का बहुत अच्छा स्रोत हैं इसके अतिरिक्त जैम खनिजों जैसे कि कैल्शियम, पोटेशियम मैग्नीशियम और फोस्फोरस में समृद्ध है। मिश्रित जैम में उत्कृश्ट एंटीऑक्सीडेंट क्षमता के साथ समृद्ध फाइटोकेमिकल गुण है। इस प्रकार से मिश्रित स्क्वैश ऑक्सिडेटिव तनाव से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के खिलाफ सुरक्षात्मक भूमिका निभाता है।

एकीकृत कृषि प्रणालियों में पैकेजिंग, वर्गीकरण, व विपणनः उत्पादों को भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम और देवांजलि महिला समूह के संयुक्त अंकितक के साथ वर्गीकरण (लेबल) करने का प्रशिक्षण भी समूह को दिया गया। कौशल वृद्धि के साथ–साथ समूह विभिन्न प्रदर्शनियों, कृषक मेलों तथा घर–घर जाकर विपणन तकनीकों के माध्यम से विकसित उत्पादों के विपणन व क्रय रिकार्ड रखने पर भी अनुभव प्राप्त कर रही हैं।

अमरूद के अतिरिक्त समूह को अचार, पौष्टिक गुड़, अदरक का पेस्ट आदि प्रसंस्करण व मूल्य संर्वधन, पैकेजिंग तकनीकी पर विभिन्न प्रशिक्षण दिए गए हैं। समूह पहले की आय के अपेक्षा मूल्यवर्धन मॉड्यूल के साथ 40 प्रतिशत तक अधिक आय अर्जित कर रही हैं। साथ ही सरकर से वित्तीय सहायता मिलने पर समूह ने मूल्यवर्धन मॉडयूल पर अधिक धन निवेश करने का रूझान भी दर्शाया है।

सारांश : अमरूद का फल स्वास्थ्य के लिए गुणकारी होने के बावजूद इसके अल्प जीवन काल तथा प्राकृतिक रंग न होने के कारण बाजार में कम कीमत पर बिकता हैं। अमरूद को मिश्रित उत्पादों में परिवर्तित कर इसकी पोषक गुणवत्ता, प्राकृतिक रंग तथा भण्डारण क्षमता को बढ़ाकर ग्रामीण महिलाएं आर्थिक लाभ ले सकती हैं। अमरूद आधारित प्रसंस्कृत उत्पाद बनाकर ग्रामीण महिलाएं आर्थिक उन्नति की ओर अग्रसर हो सकती है जिससे सम्पूर्ण ग्रामीण परिवार का विकास संभव हैं ।

दलहनी फसलों का पोषकीय महत्व

भूपेन्द्र कुमार एवं सरिता जोशी

कृषि विज्ञान केन्द्र, बागपत

सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

दाले शाकाहारी भोजन में प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत है। साथ ही दलहनी फसलें भूमि की उर्वरा शक्ति बढाती है। इसलिए भारतीय में दलहनों का अत्यधिक महत्व है। यह मनुष्य, पशु और मृदा सभी को पोषकता प्रदान करती है।

दालों में 17–30% प्रोटीन होती है, जो कि धान्य फसलों की तुलना में दोगुना से तीन गुना तक तथा कसावा की तुलना में बीस गुना होती है। सोयाबीन में 42% प्रोटीन, जो कि सभी दलहनी फसलों से अधिक है, पाई जाती है। प्रोटीन के अलावा स्टार्च के रूप में 60% कार्बोहाइड्रेटस भी दलहनी फसलों में पाया जाता है। धान्य फसलों की तुलना में दलहनी फसलों में पॉच गुना राइबोफ्लोविन (विटामिन बी–2) तथा दस गुना थायमिन पाया जाता है।

प्रोटीन मालन्यूट्रीशन (प्रोटीन कुपोषण)के लिए दालों का महत्व

प्रोटीन कुपोषण, आज के सन्दर्भ में एक बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या है इसका सबसे बुरा प्रभाव छोटे बच्चे (स्कूल से पूर्व के बच्चे) पर पड़ता है। बच्चो में कुपोषण, मुख्यतः आहार समबन्धी आवश्यकताओं के बारे में परिवार और समुदाय को सही–सही जानकारी न होने के कारण होता है। प्रोटीन कुपोषण की इस स्थिति से निपटने के लिए भोजन में दलहनी फसलों (दालों) का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है। जिसके लिए इस लेख में ''दलहनी फसलों का पोषकीय महत्व'' विषय पर जानकारी दी जा रही है।

मानसिक विकास के लिएं दालों (प्रोटीन) का एक विशेष महत्व है। चार वर्ष की आयु तक के बच्चो का मस्तिश्क 80% से 90% तक (कुल भार का) विकसित हो जाता है। इसी समय जब न्यूरोन्स एवं न्यूरोनल बनते है, तब प्रोटीन मालन्यूट्रीशन द्वारा ब्रेन डेमेज, दोबारा ठीक न होने वाला, बौद्धिक बोनापन हो जाता है जो कि जीवन भर बना रहता है और कभी भी ठीक नही हो पाता है। स्कूल से पूर्व के बच्चे एवं जिन महिलाओं को बच्चा होने वाला हो (गर्भवती महिलाऐं), प्रोटीन मालन्यूट्रीशन के लिए सबसे ज्यादा संवेदनशील होते है। कवाशिरकोर और मेरासमस नामक बीमारिया प्रायः स्कूल से पूर्व के बच्चो में पाई जाती है जो कि प्रोटीन–कैलोरी मालन्यूट्रीशन तथा क्रोनिक–कैलोरी की कमी से ही होती है।

सभी विकासशील देशो में ये दोनो बीमारी समान्य रूप से देखी जाती है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं संघठन के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में कई मिलियन नवजात बच्चे एवं छोटे बच्चे इस बीमारी द्वारा ग्रसित होते है। इस प्रकार यह एक सोचने का विषय है तथा यह एक राष्ट्रीय स्तरीय समस्या है। हमारे देश में इस प्रकार की बीमारी की होने की सम्भावना बहुत अधिक है जिस का कारण हमारी खाद्यय आदतो का एक जैसा बना रहना है। इस बीमारी का समाधान मीट या फ्लेशीफूड नही है। यह सत्य है कि शाकीय प्रोटीन की गुणवत्ता की तुलना में एनीमल प्रोटीन की गुणवत्ता अधिक अच्छी होती है जो कि अमीनो एसिड्स से प्राप्त होती है। एनीमल स्रोत जैसे – मीट, मछली, अण्डा, दूध और मक्खन जिसमें अमीनो एसिड्स काफी मात्रा में होते है तथा यें अमीनो एसिड्स हमारे शरीर के वृद्धि एवं विकास के लिए सहायक होते है। हमारे शरीर द्वारा प्रोटीन बनाने के लिए बाइस (22) विभिन्न प्रकार के एमीनो एसिडस का प्रयोग किया जाता है जिसमें से नत्रजन स्रोत की प्राप्ति होने पर चौदह (14) को हमारा शरीर सिंथेसाइज करता है तथा बाकी के आठ (8) – ल्युसाइन, वेलाइन, फिनीलालेनिन, थ्रियोनिन, लाइसिन, मैथियोनिन, सिस्टिन और ट्रिपटोफेन को शरीर द्वारा सिंथेसाइज नही किया जाता है अथवा नही बनाया जाता है। शरीर के अन्दर प्रोटीन बनाने के लिए इन आवश्यक अमीनो एसिडस में से प्रत्येक आवश्यक एमीनो एसिड एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है। प्रोटीन तभी तक बन सकती है जब तक इन निश्चित अमिनो एसिडस की पूर्ती होती रहती है। और अतिरिक्त अमिनो एसिडस को स्टोर भी नही किया जा सकता है। जबकि एनीमल प्रोटीन में सभी आठो अमीनो एसिडस आवश्यक मात्रा में उपलब्ध रहते है। परन्तु ये बहुत ही महंगे होते है जिनको कम आमदनी वाले सदस्य प्राप्त नही कर सकते है। विकसित देशो में प्रत्येक व्यक्ति औसतन रूप से प्रति दिन 84 ग्राम प्रोटीन प्राप्त करता है जिसमें से 39 ग्राम प्रोटीन एनीमल स्रोतो से प्राप्त होती है। जबकि विकासशील देशो में औसतन रूप से 52 ग्राम

प्रोटीन प्राप्त होती है जिसमें से मात्र 7 ग्राम ही एनीमल (मीट) स्रोतो से प्राप्त होती है। कम आमदनी वाले सदस्य जो कि मुख्य रूप से धान्य एवं जड़ वाली फसलों पर निर्भर होते है, के लिए दालें प्रोटीन का मुख्य स्रोत होता है।

हरित क्रान्ति के दौर में धान्य फसलों की अधिक उत्पादन वाली प्रजातियों को विकसित कर पैदावार में बढ़ोतरी की गई तथा दलहनी फसलों की उपलब्धता कम हुई जिससे भारत में दालो का उपयोग घटकर 50 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन रह गया। वर्तमान समय में इसकी उपलब्धता को बनाये रखना अब और भी कठिन हो गया है। क्योकि जनसंख्या वृद्धि के साथ दालों के उत्पादन में स्थिरता बनी हुई है। हॉलाकि, दालो से प्राप्त प्रोटीन पूर्ण रूप से पर्याप्त नही है (एक या अधिक एमिनो एसिडस अपर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहते है) परन्तु जो एमिनो एसिडस धान्य फसलों में उपस्थित होते है, के लिए परिपूरक (neatly complement) होते है। दालें–लाइसिन, ट्रिप्टोफेन एवं थ्रियोनिन के लिए अच्छा स्रोत है। परन्तु सल्फर युक्त एमिनो एसिडस – मैथियोनिक, सिस्टिन एवं सिस्टीन की कमी होती है। जबकि धान्य फसलों में लाइसिन एवं थ्रियोनिन की कमी एवं मक्का में ट्रिप्टोफेलन की कमी होती है परन्तु इनमें सल्फर युक्त एमीनो एसिड्स की पर्याप्त मात्रा होती है। इसलिए इन एमीनो एसिडस की कमी को दूर करने के लिए धान्य फसलों के उत्पाद एवं दालों का उपयोग एक साथ किया जाता है अथवा दो तरह की प्रोटीन को एक समय में एक साथ उपयोग किया जा सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि बच्चे दाल खाना पसन्द नही करते है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि उनकी रूचि को ध्याान में रखते हुए दालों का उपयोग मोटे अनाजों (मंडुवा/रागी, मादिरा/साँवा, कौंडी/कंगनी चीना तथा कुटकी एवं गेहूँ तथा चावल) के साथ विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाकर भी किया जा सकता है जैसे–सोयाबीन के कटलेट, चना दाल की पंजीरी, चना दाल एवं सोयाबीन की पंजीरी के लड्डू, चना एवं मूंग दाल की नमकीन, चना, उर्द मसूर सोयाबीन एवं मूंग दाल की बडियाँ, मूंग दाल का हलवा, सोयाबीन आटा, चना दाल, मूंगफली का ढोकला, चना एवं मसूर दाल का समोसा तथा चना मूंग एवं मसूर दाल का पुलाव आदि व्यंजनो के रूप में दालों का उपयोग करके दिन प्रतिदिन के भोजन में बच्चो के लिए दालों का समावेश किया जा सकता है। प्रोटीन की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए भारत में गेहूँ या चावल के साथ दालों का तथा पूर्वी क्षेत्रो के लोगो के लिए चावल के साथ सोयाबीन का उपयोग किया जाता है।

दालों को भोजन के रूप में साबूत दाना या दाल, फ्राई, उत्पादो के रूप में, अंकुरित दाना तथा आटा बना कर उपयोग किया जा सकता है। दालों को अंकुरित करके प्रयोग करने से विटामिन सी की मात्रा कई गुना बढ़ जाती है इस कारण पहाड़ी क्षेत्रो में सैनिकों के लिए प्रिक्कुड दालों का उपयोग किया जाता है। कुछ दालों जैसे खेसारी दालों में जहरीले तत्व, न्यूरोटोक्सिन एवं ओस्टियोटोक्सिन पाये जाते है। जिनसे लैथाइरिज्म एवं फैविज्म बीमारियाँ होती है। इसके अतिरिक्त दालों में ऑलिगोसेकेराइड्स, जो मानव शरीर में पचने योग्य नही होते है तथा गैस उत्पन्न करते है, भी पाये जाते है। इसलिए दालों को पकाने से पूर्व पानी में 6–8 घंटे भिगोकर रखने तथा पकाते समय भिगोए गए पानी को फेंक देने से इनके नकारात्मक प्रभाव को कम किया जा सकता है।

आई0सी0एम0आर0 के अनुसार एक स्वस्थ्य व्यक्ति को 1 ग्राम प्रति किग्रा0 शारीरिक भार के बराबर प्रोटीन की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए 50 किलो ग्राम शारीरिक भार वाले व्यक्ति को 1 दिन में 50 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। प्रायः देखा गया है कि गर्भवती तथा धात्री महिलाओं में गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था में पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ जाती है। गर्भवती महिला को अपने स्वयं के समुचित पोशण के साथ–साथ गर्भ में बढते बच्चे के लिए, बढते गर्भाशय के लिए, बढते अपरा के लिए और कुछ अतिरिक्त पोशण की आवश्यकता होती है। यदि पोषण समुचित होता है तो न कोई गर्भ क्षेपक विशरकतता की समस्या होती है और न ही प्रसव में कठिनाई होती है। इसी प्रकार स्तनपान क्योंकि लगभग 6 से 9 माह तक कराया जाता है इसलिए धात्री महिलाओं को प्रसव के बाद एक वर्ष तक अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार शरीर वृत्तिक परिवर्तनो के लिए और बच्चे के समुचित शारीरिक व मानसिक विकास के लिए गर्भावस्था व धात्रीवस्था के समय ऊर्जा, प्रोटीन, वसा, लोहा, कैल्शियम तथा विटामिन आदि की आवश्यकता बढ जाती है। यह बढी हुई आवश्यकता आहार में दालों तथा दालों के साथ मोटे अनाजों को मिलाकर बनाये जाने वाले पोष्टिक व्यंजन देने से पूरी की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते है कि दलहनी फसले हमारे लिए विभिन्न तरह से लाभकारी है। दलहनी फसलों में उच्च गुणवत्ता युक्त प्रोटीन की प्रचुर मात्रा होती है जो कि हमारे शरीर के वृद्धि एवं विकास के लिए अति आवश्यक है। इसके अलावा इनमें खनिज तत्व तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्व भरपूर मात्रा में होते है।

जौ उत्पादन में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन का प्रभाव

सत्यवीर सिंह, अनिल खिप्पल, मंगल सिंह, अनुज कुमार, सेन्थिल आर, दिनेश कुमार, लोकेन्द्र कुमार, अजीत सिंह खरब, रमेश चन्द एवं जी.पी. सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत में जौ की खेती प्राचीनकाल (9000 वर्ष पूर्व) से होती आ रही है। जौ रबी ऋतु में उगाई जाने वाली चावल, गेहूँ एवं मक्का के बाद चौथी सबसे महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। देश के अनेक राज्यों जैसे– हिमाचल प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार एवं जम्मू व कश्मीर में जौ की फसल उगाई जाती है। यह पशु आहार, चारा एवं विभिन्न खाद्य पदार्थों के रुप में प्रयोग किया जाता है। भारतीय समाज में इस अनाज को पवित्र मानने के कारण हवन, यज्ञ एवं धार्मिक कार्यक्रमों में विशेष स्थान दिया जाता है। वर्ष 2018–19 के दौरान जौ की खेती लगभग 6.63 लाख हैक्टर क्षेत्रफल पर की गई। जिसका उत्पादन 1.75 मिलियन टन हुआ। भारत में जौ के उत्पादन में वृद्धि की अपार संभावनाएँ हैं जो कि भारत सरकार के योजनाबद्ध कार्यक्रम **अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन** के अंगीकरण के माध्यम से परिलक्षित हुई हैं। अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन बेहतर किस्मों एवं प्रौद्योगिकियों पर एक अनुकूल अनुसंधान है, जोकि राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एन.ए.आर.एस.) द्वारा चयनित किसानों के खेतों में प्रदर्शित किया जाता है। देश में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंगीकरण से पहले जौ के उत्पादन में गिरावट का स्तर 2.71 मिलियन टन (1960) से 1.31 मिलियन टन (1994) तक पंहुच गया था। अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन अपनाने से जौ के उत्पादन में वृद्धि देखी गई। जौ के उत्पादन में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन का प्रभाव चित्र 1 में दर्शाया गया है।

इस अध्ययन में पिछले दस वर्षों (2009–10 से 2018–19) के दौरान आयोजित जौ के अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों के परिचालन एवं दिशा–निर्देशों पर प्रकाश डाला गया है। अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के माध्यम से जौ की उन्नत किस्मों एवं प्रौद्योगिकियों को समन्वयक केन्द्रों के सहयोग से आबंटित करके पूरे भारतवर्ष में किसानों के खेतों में प्रदर्शन आयोजित किए गऐ। आंकड़ो के विश्लेषण से यह पता चलता है कि अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों में प्रचलित किस्मों/प्रौद्योगिकियों की तुलना में सभी राज्य एवं क्षेत्रों में अधिक उपज प्राप्त होती है। पिछले दशक में जौ उगाने वाले चार क्षेत्रों (उत्तर पर्वतीय क्षेत्र, उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र, उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र एवं मध्य क्षेत्र) के 21 समन्वयक केन्द्रों के सहयोग से 1662 किसानों के 988.71 हैक्टर क्षेत्रफल पर लगभग 1120 अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन आयोजित किए गए। इन प्रदर्शनों में जौ उत्पादन की 10 प्रमुख तकनीकों एवं उन्नत किस्मों को फसल उत्पादन की समग्र सिफारिशों के साथ चयनित किसानों के खेतों में प्रदर्शित किया गया। जिसकी सफलता का आकलन 84.29 प्रतिशत किया गया।

अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत उगाई गई जौ की उन्नत किस्में :

पिछले दशक में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत जौ की लगभग 30 उन्नत किस्मों को शामिल किया गया। जिसमें

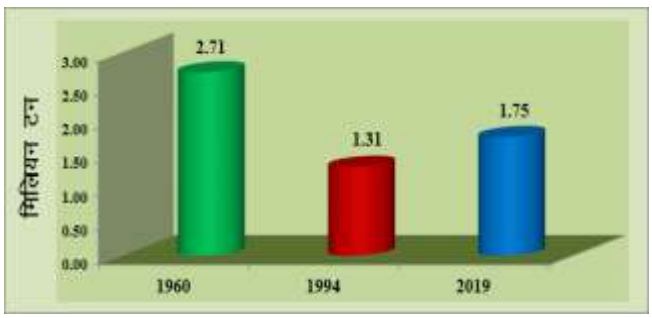

चित्र 1: जौ उत्पादन में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन का प्रभाव

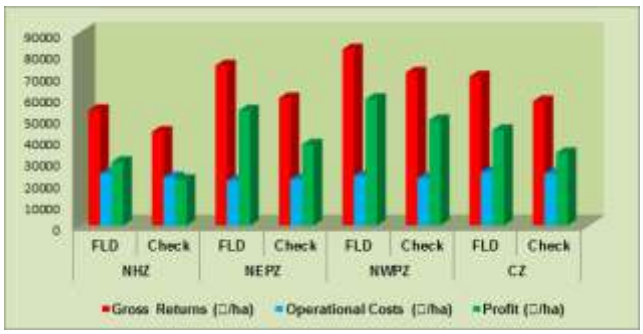

चित्र 2: अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन (2009–10 से 2018–19) के माध्यम से जौ की उन्नत एवं जाँचक किस्मों की लागत व प्रतिफल

तालिका 1: अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत उगाई जाने वाली जौ की विभिन्न किस्मों की उपज व उपज लाभ।

प्रजातियां	उन्नत किस्में (कु./है.)			प्रचलित किस्में (कु./है.)			उपज लाभ	
	न्यूनतम	अधिकतम	औसत	न्यूनतम	अधिकतम	औसत	कु./है.	प्रतिशत
बीएच 885	41.4	50.5	46.6	39.0	49.0	43.8	2.9	6.5
बीएच 902	37.5	55.0	47.9	36.0	53.0	44.2	3.7	8.5
बीएच 946	53.4	63.0	48.8	45.7	59.6	43.8	5.0	11.3
बीएच 959	23.5	52.5	40.8	20.0	44.3	34.9	5.9	17.0
बीएचएस 352	17.3	17.3	17.3	16.0	16.0	16.0	1.3	7.8
बीएचएस 380	18.0	31.8	23.9	15.3	24.7	18.9	5.0	26.4
बीएचएस 400	23.2	34.0	26.9	16.4	28.0	22.1	4.7	21.3
डीडब्ल्यूआरबी 101	36.2	57.8	47.4	33.4	55.0	42.8	4.6	10.8
डीडब्ल्यूआरबी 123	50.9	56.0	53.4	45.0	48.5	46.8	6.7	14.3
डीडब्ल्यूआरबी 137	24.1	52.8	38.2	18.0	41.0	30.2	8.0	26.6
डीडब्ल्यूआरबी 73	42.0	48.6	46.4	40.0	42.8	41.6	4.8	11.5
डीडब्ल्यूआरबी 92	35.8	46.7	41.9	34.7	44.2	39.5	2.4	6.0
डीडब्ल्यूआरयूबी 52	35.8	56.1	43.7	31.3	48.4	37.1	6.6	17.7
डीडब्ल्यूआरयूबी 64	43.5	43.5	43.5	40.0	40.0	40.0	3.5	8.8
एचबीएल 391	20.4	23.8	22.1	14.8	19.4	17.1	5.0	29.3
एचबीएल 713	29.1	32.2	30.6	25.7	28.8	27.2	3.4	12.5
एचयूबी 113	21.5	42.9	36.3	18.0	35.5	27.3	9.0	32.8
जेबी 1 23.9	47.0	37.2	20.3	29.9	26.0	11.2	42.9	–
जेबी 58 22.6	41.7	34.3	19.4	33.6	27.4	6.9	25.2	–
के 1055	49.1	49.1	49.1	38.7	38.7	38.7	10.4	26.9
एनडीबी 1173	25.8	29.8	28.3	20.3	22.2	21.5	6.8	31.5
पीएल 751	35.1	46.6	41.7	28.6	44.0	36.0	5.7	15.8
पीएल 807	33.8	44.4	39.1	29.5	38.0	33.8	5.3	15.8
आरडी 2668	36.3	55.7	43.0	32.0	49.6	40.0	3.0	7.6
आरडी 2715	19.8	40.4	33.4	19.5	38.0	31.0	2.3	7.5
आरडी 2786	28.4	54.8	42.0	22.2	47.3	34.9	7.1	20.3
आरडी 2794	19.3	45.0	34.0	15.0	34.8	26.7	7.3	27.5
आरडी 2899	23.3	50.0	35.5	20.0	40.0	28.8	6.7	23.4
आरडी 2907	38.4	63.7	48.1	33.2	61.2	43.3	4.8	11.1
यूपीबी 1008	20.6	20.6	20.6	19.2	19.2	19.2	1.4	7.5

अधिकतम उत्पादन आरडी 2907 (63.70 कु./है.) किस्म से प्राप्त हुआ जो कि प्रचलित किस्म की तुलना में 11.1 प्रतिशत अधिक था। जबकि नयूनतम उत्पादन बीएचएस 352 (17.30कु./है.) किस्म का पाया गया। इस दौरान अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत उगाई जाने वाली जौ की विभिन्न उन्नत व प्रचलित किस्मों की उपज एवं उपज लाभ को तालिका:–1 में दर्शाया गया है।

अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत उपयोग की जाने वाली प्रौद्योगिकिया:

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल ने विशिष्ट क्षेत्रों के लिए श्रेष्ट किस्मों के साथ–साथ सूक्ष्म स्तर पर रणनीति को लोकप्रिय बनाने के लिए निरन्तर प्रयास किए गए हैं ताकि जौ की उत्पादकता में वृद्धि हो सके। इस बाह्य पहुंच कार्यक्रम के अतिरिक्त, जौ की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए विभिन्न किसान–वैज्ञानिक इन्टरफेस कार्यक्रमों के माध्यम से बीज प्रतिस्थापन, एकीकृत पोषक प्रबंधन (आईएनएम), कुशल जल प्रबंधन, एकीकृत फसल प्रबंधन (आईसीएम), एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम), खरपतवार प्रबंधन, फसल के अवशेषों के निगमन/अवधारण और मिट्टी स्वास्थ्य प्रबंधन की आवश्यकता है। भागेजौअनुसं पोर्टल के माध्यम् से कृषि

सलाहकार सेवाऐं (डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.आईआईडब्ल्यूबीआर.ओआरजी), व्हाट्सएप समूह, मैनेज पोर्टल एवं संस्थान द्वारा क्षेत्रीय स्तर के विस्तार अधिकारियों या विषय विशेषज्ञों के गहन प्रशिक्षण ने भी विशेष रूप से जौ के पीला रतुआ जैसे रोगों के विरूद्ध आकस्मिक प्रबंधन उपायों का प्रयोग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जौ उत्पादन में आने वाली समग्र बाधाएं :

विभिन्न क्षेत्रों की सभी बाधाओं के विश्लेषण द्वारा स्पष्ट रुप से संकेत मिलता है कि किसानों द्वारा आवकों की उच्च कीमत एवं छोटी जोत धारक को एक गम्भीर बाधा के रुप में महसूस किया गया है। इसके बाद, जल स्तर में गिरावट, जौ की कम कीमत, मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी, फसल की परिपक्वता के समय उच्च तापमान, असामयिक वर्षा, किसानों में जौ उत्पादन के नवीन तकनीकी ज्ञान का अभाव, नहरी सिंचाई सुविधाओं की कमी एवं अनियमित विद्युत आपूर्ति इत्यादि की जौ उत्पादन एवं उत्पादकता को प्रभावित करने वाली प्रमुख बाधाओं के रुप में पहचान की गई है।

जौ के अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन में लागत एवं प्रतिफल :

फसल उत्पादन तकनीक को अपनाने के लिए निवेश पर लाभप्रदता प्रमुख निर्णायक घटकों में से एक है। पिछले दशक के दौरान जौ के अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों की लागत एवं प्रतिफल के विश्लेषण करने के लिए किसानों के खेतों में बेहतर उत्पादन प्राद्यौगिकियों पर परीक्षण आयोजित किए गए। एक विशेष तकनीक से परीक्षण करने के परिणामस्वरूप विभिन्न स्थानों पर मिट्टी के गुणों में विभिन्नता होने के कारण परिणाम सभी जगहों के एक समान नही थे। समग्र रूप से यह देखा गया कि कोई भी भारतीय किसान अपने खेत में जौ की नई प्रजाति/उत्पादन तकनीक का अंगीकरण कर औसतन 61222 रुपए प्रति हैक्टर की दर से आमदनी प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त नई प्रजाति/उत्पादन तकनीक को अपनाकर एक कुन्तल जौ पैदा करने के लिए किसानों को केवल 647 रुपये खर्च करने की आवश्यकता है वही पुरानी किस्म/उत्पादन तकनीक अपनाने से यह लागत 741 रुपए आती है। उपरोक्त परिपेक्ष्प में यह कहा जा सकता है कि जौ की खेती से अधिक मुनाफा कमाने के लिए किसानों को अत्याधुनिक किस्मों व उत्पादन तकनीकों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत के चार क्षेत्रों (उत्तर पर्वतीय क्षेत्र, उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र, उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र एवं मध्य क्षेत्र) में आयोजित अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन (2009–10 से 2018–19) के आकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त जौ की उन्नत एवं जाँचक किस्मों की लागत, प्रतिफल एवं आय को चित्र–2 में दर्शाया गया है।

अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों का अवलोकन

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, कृषि एवं कल्याण मन्त्रालय एवं संबन्धित केन्द्रों के विशेषज्ञों की टीम के द्वारा समय–समय पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों का अवलोकन किया जाता है।

मछली पालन सह सब्जी उत्पादन – रोजगार का जरिया

आशिष कुमार प्रुष्टि, पूनम कश्यप, सुनील कुमार, आजाद सिंह पँवार एवं जयराम चौधरी

भाकृअनुप-भारतीय प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ,-250110

भारत एक सघन आबादी का कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था वाला देश है। आबादी की तुलना में हमारे देश का कुल क्षेत्रफल काफी कम है। वर्तमान परिदृश्य में अधिकांश किसानों का भूखण्ड जनसंख्या की बढोत्तरी के कारण छोटे होते जा रहें है जिसके फलस्वरूप किसानों के लिये कम क्षेत्रफल में मत्स्य पालन के साथ अधिक लाभ प्राप्त करने वाली तकनीकी विकसित किये जाने की आवश्यकता है। मछली पालन अधिक आय, कम लागत और कम समय में सहायक व्यवसाय के रुप में ग्रामीण अंचलों में अत्यधिक लोकप्रिय है। यह ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोजगारी दूर करने का सशक्त एवं रोजगारोन्मुखी साधन है। मिश्रित मछली पालन से अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है। साथ ही मछली जैसे पौष्टिक खाद्य का उत्पादन बढ़ाकर कुपोषण को दूर किया जा सकता है। मिश्रित मछली पालन के साथ साथ तालाबों के मेढ़ पर सब्जी उगा कर किसान भाई पूरे साल रोजगार सृजन कर सकते हैं।

मिश्रित मछली पालन

मिश्रित मछली पालन व्यवसाय, बेरोजगार युवकों के लिए आर्थिक स्थिति में सुधार करने हेतु एक महत्वपूर्ण विकल्प है। मिश्रित मछली पालन अपनाने पर परम्परागत तरीके के प्रयोग से मिलने वाले उत्पादन की अपेक्षा 10–12 गुना अधिक मत्स्य उत्पादन मिलता है। इस विधि में तालाबों में विभिन्न आहार वाली अच्छी किस्म में कार्प प्रजातियों के मछली बीज उचित अनुपात एवं वजन में संचयन कर, जैविक एवं रसायनिक खाद का उचित मात्रा में प्रयोग किया करके परिपूरक आहार भी दिया जाता है। सामान्यतः मिश्रित मछली पालन में पाली जाने वाली प्रजातियां कतला, राहू, मृगल, कामनकार्प, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प है। वर्तमान में मिश्रित मछली पालन ग्राम पंचायतों के तालाबों में किया जा रहा है। परंतु खाद एवं परिपूरक आहार न देने के कारण उत्पादन में समुचित वृद्धि नहीं हो रही है। अतरू स्वयं की भूमि में तालाब निर्माण कराकर व उनमें मिश्रित मछली पालन कर, लगभग 6000–8000 किग्रा/हैक्टर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मिश्रित मछली पालन में जैविक एवं रसायनिक खाद, परिपूरक आहार के साथ प्रयोग करने से अधिक उत्पादन के साथ उत्पादन मूल्य भी बढ़ जाता है। इस आर्थिक समस्या के समाधान के मछली पालन को विभिन्न ईकाईयों जैसे–मुर्गी, बतख, बागवानी, पशुधन पालन के साथ जोडने की व्यवस्था की जाती है। जिससे कृषकों को मछली पालन से आय के साथ–साथ अन्य उत्पादों के समन्वयन से अतिरिक्त आय मिलती है। इस अंतरबद्धता के कारण मवेशी पालन, बागवानी या कृषि से परित्यक्त पदार्थों का उपयोग मछलियों के लिए परिपूरक आहार या खाद के रुप में उपयोग होता है तथा दूसरी ओर तालाब के जल तथा मछली पालन से उत्पन्न व्यर्थ पदार्थों का उपयोग कृषि एवं मछली पालन में किया जाता है। ऐसी व्यवस्था से लागत

खर्च में काफी कमी आ जाती है।

कृषि/सब्जी सह–मत्स्य पालन

इस तकनीक में तालाब के बांधों के साथ लगे हुए खेतो में विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ जैसे टमाटर, मिर्च, बैगन, पालक, फ्रांसबीन, गोभी, लौकी, तोरी इत्यादि तथा फलों में केला, पपीता, स्ट्रॉबेरी एवं विभिन्न प्रकार के फूलों का भी उत्पादन किया जा सकता है। इस तकनीक में तालाब के पोषकता युक्त पानी का प्रयोग सब्जियों तथा फूलों की सिंचाई एवं तालाब की तली में जमा हुये गाद का प्रयोग खाद के रुप में किया जाता है। इससे सब्जियों के उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इससे सब्जी की पैदावार अच्छी होती है और यह सेहत के लिए भी ठीक रहती है। इस प्रकार किसान मछलियों के अतिरिक्त सब्जी, फल एवं फलों से अधिक आय प्राप्त कर सकता है। मत्स्य कृषकों के रुझान को देखते हुए मछली पालन के साथ साथ तालाबों के बांध पर सब्जी उत्पादन को उपयोगी पाया गया है क्योंकि भारत में सब्जियां भोजन का एक मुख्य अवयव है तथा शहरी एवं अर्ध शहरी क्षेत्रों में आय का भी मुख्य साधन है। हमारे देश में लगभग 30 प्रकार की सब्जियां उगाई जा रही हैं। यह सब्जियाँ मानव स्वास्थ्य के लिए सस्ता प्रोट्रीन, विटामिन एवं दूसरे तत्व भी प्रदान का टिकाऊ साधन हैं। मछली पालन से होने वाली आय के साथ साथ सब्जियों की नियमित बिक्री के माध्यम से साल भर रोजगार प्रदान किया जा सकता है ।

भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम द्वारा विकसित मत्स्य पालन सह– सब्जी उत्पादन ईकाई का एक विवरण

प्रणाली मॉडल पर कार्य किया जा रहा है। इसी कड़ी में मछली सह मेढ़ पर सब्जी उत्पादन का 0.1 है० मॉडल का विकास किया गया है जिस में 0.06 है० के क्षेत्रफल पर तालाब तथा 0.04 है० पर तालाब की मेढ़ सम्मिलित है। तालाब में रोहू, कतला, नैनीध्मृगल एवं ग्रास कार्प आदि प्रजाति के मछलियों के पालन के साथ–साथ मेढ़ पर कद्दू, लौकी, करेला, पालक, ब्रौकली, मेथी, फूलगोभी, पत्तागोभी आदि की सब्जी उगाई जाती है। इस पद्धति से कुल 0.1 है० क्षेत्रफल से लगभग ₹ 25000 से 32000 की प्रति वर्ष शुद्ध कमाई की जा सकती है।

निष्कर्ष

ग्रामीण अंचल में अनुपयोगी तालाबों एवं बेकार पड़ी भूमि पर तालाब का निर्माण कर मछली पालन कर व्यवसायिक लाभ कमाया जा सकता है। किसानों को इससे प्रोटीन युक्त पौष्टिक खाद्य पदार्थ तथा ग्रामीण बेरोजगारों और निर्बल वर्ग को रोजगार के साथ अच्छी आमदनी भी मिल सकती है। साथ ही मछली पालन संग सब्जी उगा कर किसान भाई दोहरा लाभ कमा सकते हैं।

मधुमक्खी पालन

प्रद्युम्न भटनागर, जय नारायण भाटिया, फतेह सिंह, प्रेम लता एवं सूबे सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरूक्षेत्र

पृथ्वी पर मधुमक्खियों का इतिहास मानव के जन्म से हजारों वर्ष पुराना है। वृक्षों, गुफाओं व चट्टानों से शहद को एकत्रित करने का प्रमाण लगभग 7000 वर्ष ई. पूर्व. मिलता है। जिससे पता चलता है कि मनुष्य को मधुमक्खियों व शहद के बारे में जानकारी थी।

मधुमक्खी पालन मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों की रूप में लाभदायक है। भारतीय उपमहाद्वीप में मधुमक्खियों को पालतू मधुमक्खी के रूप में आधुनिक लकड़ी के डिब्बों में पाला जाता है। कुछ मधुमक्खियाँ पहाड़ों व जंगलों में रहती हैं। उनको पालना बहुत कठिन है लेकिन कुछ लोग उन पहाड़ी व जंगली मधुमक्खियों के छत्तों में से शहद निकाल लेते हैं। ऐसे छत्तों को पहाड़ी व जंगली माहल के नाम से पुकारते हैं। ऐसी मधुमक्खियाँ देश के लगभग समस्त मैदानी इलाकों एवं समुद्रतल से 16000 मीटर तक ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती है। भारत के अतिरिक्त ये मधुमक्खियाँ बांग्लादेश, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, वियतनाम, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, कम्बोडिया, मलेशिया, फिलीपीन्स आदि समस्त इण्डोचीन क्षेत्र में पाई जाती है। इन मधुमक्खियों में विपरीत परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता भी विशेष रूप में पाई जाती है। इसी अद्भुत क्षमता के कारण जहाँ हिमालय की ऊँची–ऊँची चोटियों तक की छोटी पहाड़ियों तथा तराई में इनके हजारों छत्ते मिलते हैं वहीं राजस्थान के धूप से तपते मारवाड़ क्षेत्र में भी इनके छत्ते प्राचीन महलों में दिखाई पड़ते हैं।

मधुमक्खियाँ आपस में मिलजुल कर कार्य करती हैं जिसके कारण इनको सामाजिक कीट कहा जाता है। मधुमक्खी के पूरे परिवार में एक रानी मक्खी, हजारों कमेरी मधुमक्खियों तथा सैंकड़ों की संख्या में नर होते हैं जिन्हें निखट्टू भी कहते हैं।

मधुमक्खियों द्वारा फूलों से एकत्रित मकरन्द से तैयार किया हुआ मीठा गाढ़ा एवं सुंगन्धित पदार्थ शहद कहलाता है। मधुमक्खियाँ फूलों के मादा भाग से मीठा रस चूसती हैं और मौन गृह में बने मोमी छत्तों के कोष्ठों में उड़ेल देती हैं। उस समय मकरन्द में पानी की मात्रा लगभग 60–70 प्रतिशत तक होती है। दोपहर के समय मधुमक्खियाँ अपने पंखों से हवा देकर अतिरिक्त नमी को उड़ा देती हैं और जब नमी की मात्रा 16 से 20 प्रतिशत तक रह जाती हैं तब उसे मोम की टोपियाँ द्वारा बन्द कर देती हैं। इस मीठे परिपक्व पदार्थ को शहद कहते हैं। हरियाणा प्रदेश में 2.5 लाख से अधिक मौनवंश का पालन किया जा रहा है जिससे हमें 3000 मीट्रिक टन शहद का उत्पादन मिलता है। अभी हमारे प्रदेश में 4.0 लाख अतिरिक्त मौनवंशों के पालन की क्षमता है। जिससे हमें 15000 मीट्रिक टन शहद का उत्पादन मिल सकता है व 10000 लोगों के लिए 100 मानव दिन प्रतिवर्ष का रोजगार मिल सकता है। हरियाणा प्रदेश में मधुमक्खियाँ लगभग 250 किस्मों के पौधों से परागण व मकरन्द एकत्रित करती हैं जिनमें से 21 किस्मों के पौधे से परागण, 29 किस्मों के पौधों से मकरन्द व 200 किस्मों के पौधों से परागण व मकरन्द दोनों एकत्रित करती हैं। इनमें सरसों जाति, सूरजमुखी, बाजरा, कपास, अरहर, बरसीम, सब्जियां जैसे प्याज, मूली, गाजर, शलगम आदि, फल वृक्ष जैसे लीची, संतरा, बेर, नाशपाती, अमरूद, सेब, स्ट्राबेरी, चैरी तथा बीजू सफेदा तथा बबूल नीम आदि प्रमुख हैं।

मधुमक्खियाँ की उपयोगिता

1. फसलों की पैदावार व गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक :

मधुमक्खियाँ सभी प्रकार के फूलों, सब्जियों, बगीचों व फसलों में परागण में सहायता करती हैं। जिसके परिणामस्वरूप फल, सब्जियों व अनाज की पैदावार में बढ़ोतरी होती है। फलदार पौधों में मधुमक्खियों द्वारा परागण से फलों की पैदावार व गुणवत्ता बढ़ती है और फलों का झड़ना भी कम होता है। नीम्बू वर्गीय जाति के फलों में मधुमक्खियाँ रस व मिठास बढ़ाने में सहायक होती है। सेब, नाशपाती, अमरूद, लीची, बादाम की पैदावार में 5 से 20 प्रतिशत तक बढ़ोतरी हो जाती है।

मधुमक्खियों के पर–परागण से फसलों की पैदावार में बढ़ोतरी होने के साथ क्वालिटी में भी वृद्धि होती है। 2–3 मौनवंश प्रति एकड़ रखने से प्याज के बीज में 50 प्रतिशत व भिण्डी में दानों की संख्या में 20 से 50 प्रतिशत तक बढ़ोतरी

होती है। इसी प्रकार का लाभ गाजर, धनिया, सौंफ आदि में भी आंका गया है। सूरजमुखी तथा सरसों कुल की फसलों में तेल की मात्रा भी बढ़ जाती है।

2. औषधीय महत्व :–

मधुमक्खियों का मकरन्द (शहद) बहुत सी बिमारियों को ठीक करने में मदद करता है।

छोटे बच्चों व वृद्धों को सर्दियों में थोड़ी मात्रा में शहद देने से खांसी, नजला व जुकाम को ठीक करने में मदद करती है।

शहद का प्रयोग कब्ज को दूर करने में भी किया जाता है। इसके लिए एक गिलास गुनगुने पानी में मिलाकर खाली पेट पीने से आराम मिलता है।

मधुमक्खियों द्वारा दर्द वाले हिस्से पर कटवाने से गठिया रोग के इलाज करने में सहायता मिलती है लेकिन यह कार्य किसी विशेषज्ञ की देखरेख में करना चाहिए।

3. आध्यात्मिक महत्वः– शहद हमारे आध्यात्मिक कार्य जैसे हवन आदि में भी प्रयोग किया जाता है। मधुमक्खियों तथा इससे प्राप्त होने वाले शहद एवं मोम की महत्ता का वर्णन सभी सभ्यताओं और ग्रंथों में भोजन एवं औषधि के रूप में बताया गया है।

4. व्यवसाय के रूप में महत्व :– छोटे किसानों में मधुमक्खी पालन एक अच्छे व्यवसाय का रूप धारण करता जा रहा है। शहद का उपयोग आयुर्वेदिक औषधियाँ, बेकिंग केक, पेस्ट्री, कैण्डी, फ्रूटक्रीम आदि उत्पादों में किया जाता है। जिसके कारण शहद की भारी मांग रहती है।

मधुमक्खी की प्रजातियाँ

भारतवर्ष में मधुमक्खी की चार मुख्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें से पहाड़ी व छोटी मधुमक्खी को पालना बहुत कठिन है। अन्य दो मधुमक्खियाँ भारतीय व पाश्चात्य मधुमक्खी पालतू है व मधुमक्खी पालन के योग्य है भारतीय मधुमक्खी में वकछूट व घर छूट की प्रवृति अधिक पाई जाती है व इसमें विषाणु रोग में अधिक लगता है। इस प्रजाति से शहद कम मात्रा में (8–10 कि.ग्रा. शहद प्रतिवर्ष प्रतिवंश) प्राप्त किया जा सकता है। अतः भारतीय मधुमक्खी से अधिक लाभ नहीं अर्जित किया जा सकता। पाश्चात्य अथवा इटेलियन मधुमक्खी की गुणवत्ता के कारण हरियाणा व अन्य क्षेत्रों में इसका पालन किया जा रहा है।

पाश्चात्य मधुमक्खीः–

मधुमक्खी की यह प्रजाति पाश्चात्य देशों से 1962 में भारतवर्ष में लाई गयी थी व हरियाणा में वर्ष 1987 से इसका सफल पालन किया जा रहा है। यह प्रजाति अन्य तीन प्रजातियों से अधिक शांत व मेहनती होती है। इसकी वकछूट की संभावना बहुत कम होती है। इसका आकार भारतीय मधुमक्खी से बड़ा परन्तु पहाड़ी मधुमक्खी से छोटा होता है। इसकी शहद एकत्रित करने की क्षमता भी सबसे ज्यादा होती है। इस प्रजाति से औसतन 40–50 कि. ग्रा. शहद प्रतिवंश प्रतिवर्ष मिल सकता है।

मधुमक्खी पालन कब करें ?

मधुमक्खी पालन एक लाभकारी व्यवसाय है जो कि छोटे किसान व बेरोजगार नवयुवक शुरू कर सकते हैं। सफल मधुमक्खी पालन के लिए आवश्यक है कि यह व्यवसाय सही समय पर व सही स्थान पर शुरू किया जाये व अनुमोदित की गयी तकनीक का प्रयोग किया जाए।

मधुमक्खी पालन का सही समयः–

अक्तूबर–नवम्बर माह हरियाणा में मधुमक्खी पालन शुरू करने का सबसे उचित समय है। इस समय में मौनचर/फूल अधिक संख्या में मिलते हैं। फरवरी–मार्च तक फूलों की बहुतायत बनी रहती है जिसके कारण मधुमक्खी पालक को शहद भरपूर मात्रा में मिलता है तथा मधुमक्खियों की संख्या में भी वृद्धि होती है। पांच से दस बक्सों से मधुमक्खी पालन शुरू कर बक्सों की संख्या बढ़ा सकते हैं।

मधुमक्खी पालन कहाँ करें?

मधुमक्खी पालन शुरू करने के लिए उस स्थान का चुनाव करें जहां मौनचरों की अधिकता हो। यह व्यवसाय उन क्षेत्रों में शुरू करना चाहिए जहां नीचे दिए गए मौनचर अधिक मात्रा में मिलें।

1) सरसों जाति की फसलें जैसे सरसों, तोरिया, राया, तारामीरा आदि।
2) बीज के लिए चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, रिजका, मक्का, मकचरी बाजरा आदि।
3) दलहनी फसलें जैसे चना, अरहर, मूंग, ज्वार आदि।
4) सूरजमुखी, कपास।
5) बेल वाली सब्जियाँ जैसे घीया, तोरी, टिण्डा, खीरा, ककड़ी आदि।
6) अन्य सब्जियाँ जैसे गाजर, मूली, धनिया सौंफ।

7) फलदार वृक्ष जैसे आंवला, बेर, नींबू, जामुन, इमली, खजूर, नाशपाती, आडू आदि।

8) छायादार पेड़ व अन्य पेड़ जैसे अर्जुन, नीम, सहजन, सेमल, रीठा, शीशम शहतूत, सफेदा, कीकर आदि।

अच्छा मौनचर मिलने की अवस्था में 50 वंश तक एक स्थान पर रखे जा सकते हैं किन्तु ऐसी इकाइयों की आपस में दूरी लगभग दो कि.मी. की रखनी चाहिए। इस प्रकार मौनचर की संख्या व मात्रा को ध्यान में रख कर ही किसी स्थान पर वंशों की स्थापना करनी चाहिए।

मधुमक्खी वंशों की देखभालः–

मधुमक्खी परिवारों का उचित प्रबन्ध करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। बदलती ऋतुओं व मौसमों के अनुसार इनकी देखभाल कर मधुमक्खी परिवारों को व शहद उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

(क) गर्मियों में देखभालः–

मई, जून महीनों में जब तापमान 45 से 47 सै. तक पंहुच जाता है व वर्षा का अभाव रहता है, तब मकरन्द व पराग की कमी हो जाती है। इस समय नीचे दी गयी बातों का विशेष ध्यान दें।

1) बक्सों पर पानी में भीगी बोरियां रख कर कॉलोनी सुरक्षित रखें।

2) कॉलोनी के नजदीक पानी का प्रबन्ध रखें।

3) कॉलोनियां छायादार स्थान पर वृक्षों के नीचे रखें।

4) जरूरत पड़ने पर कृत्रिम भोजन जैसे चाश्नी, पराग आदि दें।

5) खाली फ्रेमों/चौखटों को एकत्रित कर गन्धक का धुँआ दें व तेज धूप में 3–4 दिन रखे ताकि मोमी पतंगे के सुण्डियाँ नष्ट हो जाएं।

6) कमजोर वशों को आपस में मिला दें।

(ख) वर्षा ऋतु में देखभालः–

1) तेज बौछारों से बक्सों का बचाव रखें।

2) बक्सों को ऊँचें स्थान पर रखें ताकि उनमें पानी न भरें।

3) बरसात के मौसम में बक्सों के अन्दर हवा का संचार सुनिश्चित करें। प्रवेश द्वार के सामने कोई वृक्ष आदि रूकावट न हो।

4) चींटियों से बचाव के लिए पानी की प्यालियों का प्रयोग करें।

ग) शरदकालीन देखभालः–

1) कमजोर वंशों का मेल (यदि पहले न किया हो) कर देना चाहिए अन्यथा ऐसे वंश समाप्त हो जाते हैं।

2) वंशों को रोग रहित रखें।

3) आवश्यकता हो तो पुरानी रानी को बदल दें।

4) छत्ते में शहद की मात्रा रखना आवश्यक है। अतः पूरा शहद न निकालें।

घ) शीतकालीन देखभालः–

1) बक्सों के प्रवेश द्वार हवा की दिशा में नहीं होने चाहिए।

2) तेज हवाओं से कॉलोनी का बचाव रखें।

3) तेज सर्दी से बचाव के लिए धान की पुआल/घास के तिनकों/पुरानें ऊनी कपड़ों के टुकड़ों आदि की तह अन्तर पट्ट के ऊपर व आधार पट्ट के नीचे रखें।

5) सुपर का प्रयोग करें व रानी को शहद कक्ष में न जानें दें।

6) कॉलोनियों को निरीक्षण के लिए दोपहर के समय/धूप में ही खोलें।

7) बक्सों का विभाजन करें व समय–समय पर शहद का निष्कासन करें।

ड) बसन्त ऋतु में देखभालः–

1) बक्सों को अधिक देर तक खुला न छोड़े क्योंकि इस समय लूट मार हो सकती है।

2) आवश्यकतानुसार वंश में छते देते रहें।

कृत्रिम भोजन

गर्मी के मौसम में यदि मौन वंशों का स्थानान्तरण सम्भव न हो तो वंशों को मकरन्द व पराग की कमी का सामना करना पड़ता है व वंश कमजोर पड़ जाते हैं। इस समय मकरन्द के स्थान पर चीनी की चाश्नी (एक ली. पानी में 500 ग्राम चीनी) वंशों को दें। पराग की कमी होने पर भोजन ऐसे बनायें सोयाबीन का आटा (250 ग्राम.) व पाउडर दूध (150 ग्रा.) को मिलाकर 100–150 ग्रा. की पेड़ियां बना लें व कागज पर रख कर फ्रेमों पर उलटाकर रख दें। इस भोजन से रानी दोबारा से अण्डे देना शुरू कर देगी व कमेरी

मधुमक्खियों की भोजन की आवश्यकता पूरी होगी।

शहद निष्कासन

शहद निकालने के समय यह बहुत जरूरी है कि शहद केवल उन्हीं चौखटों से निकालें जिनका तीन चौथाई भाग बन्द हो। शेष शहद बिल्कुल न निकालें क्योंकि यह कच्चा होता है और इसमें नमी की मात्रा अधिक होने के कारण खमीर बनने का खतरा रहता है जिससे शहद में खट्टापन आ जाता है। किसी मुलायम ब्रश की सहायता से मधुमक्खियां छते पर से हटा दें, छतों को खाली बक्से में रखें व कमरे में ले जायें। छतों पर से मोमी टोपियां उतार कर छते मधु निष्कासन यंत्र में रख दें व 1–2 मिनट के लिए मध्यम गति से लगातार घुमायें। फिर छतों को दूसरी तरफ बदल कर इस क्रिया को दोहरायें। शहद को टंकी में 48 घण्टों तक रखा रहने दें ताकि मोम आदि ऊपर आ जाए व ऐसी वस्तुओं को निकाल दें। खाली छतों को मधुमक्खी वंशों को दें व मौन गृह का प्रवेश द्वार कम करें।

शहद को डिब्बाबन्दी से पहले गर्म पानी से भरें कड़ाहे में रख दें। मोम व अन्य मिश्रण ऊपर आ जायेंगे। इनकों हटा कर बोतल बन्द करें। शहद की कभी भी सीधी आंच पर न रखें। शहद निष्कासन के बाद सभी उपकरणों को साफ करें।

मोम को मलमल के कपड़े में बांधकर उबलते पानी में डाल दें। ठण्डा होने पर शुद्ध मोम पानी की तरह पर तैरने लगेगा व अशुद्ध पदार्थ कपड़े में रह जायेगा। इस प्रकार शुद्ध मोम प्राप्त किया जा सकता है।

शत्रु कीटों का प्रबन्धन

कई प्रकार के कीट मधुमक्खियों को हानि पहुंचाते हैं। ये शत्रु कीट मधुमक्खियों का खून चूस कर या उन्हें खाकर या छत्तों को खराब कर मौनवंशों को नुकसान पहुंचाते हैं। यदि समय पर इनका प्रबन्धन न किया जाए तो मौन पालक को भारी हानि उठानी पड़ती है। अतः नीचे दिए गए प्रबन्धन पर विशेष ध्यान दें।

1. अष्टपदी / माईट : अष्टपदियाँ मधुमक्खी के अन्दर के भागों में घुसकर खून चूसती हैं जिससे मौनवंश कमजोर हो जाते हैं व धीरे–धीरे समाप्त हो जाते हैं। इसे एकेरिन रोग भी कहते हैं। अष्टपदी की कुछ प्रजातियाँ मधुमक्खियों के शरीर के बाहरी भागों जैसे पंखों के नीचे, टांगों के पास आदि पर चिपक कर खून चूसती हैं। ऐसे मौन शिशु प्रौढ़ नहीं बन पाते, शरीर छोटा रह जाता है व उनके पंख या टांगें ठीक प्रकार से विकसित नहीं हो पाते। प्रौढ़ अवस्था में ग्रसित मधुमक्खियाँ ठीक प्रकार से उड़ नहीं पाती व बक्से के पास रेंग कर चलती दिखाई देती हैं। ऐसे मौनवंश कमजोर हो जाते हैं।

प्रबन्धन :–

1. फ्रेमों पर गन्धक का धूड़ा लगाएं
2. मोटे कागज को अमोनियम नाईट्रेट के 30 प्रतिशत घोल में डुबो कर सुखा लें। इन कागजों को धुंआकार में डाल कर जलाएं व धुंआ मौनवंशों पर छोड़ें।
3. पांच मि.ली. फारमिक अम्ल को एक छोटी शीशी में डालकर उसमें रूई रख दें। इस शीशी को बक्से के अन्दर आधार / तल पर रख दें व द्वार को बन्द कर दें। खाली शीशी को फिर भर कर अगली रात बक्सों में रख दें। इसका प्रयोग 15 दिन तक लगातार करें। यह रसायन वाष्प के रूप में निकलता रहता है जिससे अष्टपदियाँ समाप्त हो जाती हैं।
4. चीनी का पाउडर 10 से 15 ग्राम प्रति मौनवंश मधुमक्खियों पर बुरकें।
5. बक्से के तल पर सफेद चिपचिपा कागज रख दें जिससे नीचे गिरी माईट दोबारा मधुमक्खियों पर नहीं चढ़ पाएगी व कागज पर चिपक कर समाप्त हो जाएगी।
6. प्रजनन समय के समय नर कोष्ठों को नष्ट कर दें क्योंकि अष्टपदी का प्रकोप नर कोष्ठों पर अधिक होता है।
7. अप्रैल से जून तक मौनवंशों का प्रति सप्ताह निरीक्षण करते रहें।
8. स्वास्थ्य मौनवंशों को प्रभावित मौनवंशों से दूर रखें।

2) मोमी पतंगाः– इस कीट की सुण्डियां छतों पर सुरंग बनाकर उनमें सफेद जाला–सा बुनती है जिसके कारण पूरा छत्ता ही नष्ट हो जाता है। छतों में जाले लगने से रानी अण्डे देना बन्द कर देती है। वर्षा काल में इसकी हानि अधिक मिलती है। यह कीट भण्डारित छतों का शत्रु है। मौनवंशों में इसका प्रकोप तब होता हैं जब मौनगृह में जरूरत से ज्यादा छतों वाली चौखटें हों व उन पर मधुमक्खियां न हों।

प्रबन्धनः–

1) खाली छतों को सूर्य की तेज धूम में रखें ताकि सुण्डियां नष्ट हो जायें।

2) प्रभावित छत्तों को निकाल कर इनका मोम निकाल लें।

3) आवश्यकता से अधिक छते होने पर उनको सल्फर या ईथालीन डाईब्रोमाईड या पैरा डाईक्लोरोबैन्जीन से घूमित करें।

3) ततैया:– ये कीट मधुमक्खी के अण्डों, शिशुओं व प्रौढ़ को नष्ट कर हानि पहुंचाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर वंश या तो जल्दी ही समाप्त हो जाते हैं या मधुमक्खियां मौनगृह छोड़ कर भाग जाती हैं। ये कीट जुलाई–अगस्त में अधिक हानि पहुंचाते हैं।

प्रबन्धन:–

1) मौनगृह का प्रवेश द्वार छोटा करें।

2) मौनालय में आने पर ततैयों को लकड़ी के फट्टी आदि से मार देना चाहिए।

3) मौनालय के चारों ओर खोज कर ततैयों के छतों को जला दें

4) चींटियाँ:–

ये कीट अण्डों व शहद को खाकर हानि पहुंचाते हैं।

प्रबन्धन:–

1) मौनालय की स्थापना चींटियों की कॉलोनियों से दूर करें।

2) मौनालय के समीप यदि इनकी कॉलोनियां हों तो उन्हें नष्ट कर दें।

3) मौनगृह को पानी के प्यालों /डिब्बों पर रखें।

4) मौनगृह के आस–पास सफाई रखें।

5) **चिड़िया:–** ये उड़ती हुई मधुमक्खियों को पकड़ कर खा जाती हैं। आस–पास घने पेड़ होने पर व आकाश में बादल छायें हो तो इनका नुकसान अधिक होता है।

प्रबन्धन:–

1) मौनालय की स्थापना बिजली की तारों से दूर करें।

2) समय–समय पर चिड़ियों को डरा कर उड़ा दें।

मधुमक्खियों का कीटनाशकों से बचाव

फसलों में कीट नियंत्रण के लिए प्रयोग करी जाने वाली कीटनाशकों से मधुमक्खी पालकों को बहुत हानि होती हैं।

कीटनाशकों से संपर्क:–

फसल पर फूल आने के समय यदि अधिक कीटनाशकों का छिड़काव होता है तो मधुमक्खियों को सबसे अधिक हानि होती हैं। क्योंकि इस समय मधुमक्खियाँ फूलों से पराग व मकरन्द लेने आती हैं व कीटनाशकों के सीधे सम्पर्क में या छिड़काव की गयी फसलों/फूलों के सम्पर्क में आ जाती है। कीटनाशी युक्त पराग/मकरन्द खाने से मधुमक्खियों की मृत्यु हो जाती है अथवा जो बच जाती है वह जहर से प्रभावित भोजन पदार्थ छत्ते में लाती है जिससे बच्चों व अन्य कमेरी मधुमक्खियों की भी हानि होती है।

बचाव:–

1) दानेदार कीटनाशक सबसे कम जहरीले होते हैं। अतः अधिकतर फसलों में इनका प्रयोग करें।

2) ई.सी. प्रकार के कीटनाशक धूड़े या घुलने योग्य पाउडर प्रकार से कम जहरीले होते हैं।

3) अन्तः प्रवाही कीटनाशी सतही कीटनाशियों से कम जहरीले होते हैं।

4) यदि फसलों के बीच में या आस–पास मधुमक्खी के डिब्बे हो तो उन्हें बोरी से ढक दें।

5) कीटनाशी के छिड़काव के समय बक्सों के द्वार बन्द कर दें व छिड़काव के कुछ समय बाद ही द्वार खोलें।

6) कीटनाशियों का छिड़काव दो बजे के बाद ही करें।

7) कीटनाशियों का छिड़काव करते समय ध्यान रखें कि हवा का रूख मौनवंशों की तरफ न हो।

8) यदि मौनवंश कीटनाशकों के सम्पर्क में आ जाएं तो उन्हें प्रभावित स्थान से दूर ले जायें व कुछ समय के लिए डिब्बे से बाहर न निकलने दें। इसके पश्चात् चाशनी व पराग का भोजन डिब्बे में ही दें।

कृषि उपकरणों का चयन एवं रखरखाव

नीरज कुमार, आर. के. शर्मा, एस. सी. त्रिपाठी, एस. सी. गिल, राजेन्द्र सिंह छोकर, राजपाल मीणा, अंकिता झा एवं निधि कम्बोज

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

प्रौद्योगिकी भविष्य की आवश्यकताओं के लिए हर क्षेत्र को आगे बढ़ाने में सक्षम है। कृषि से लेकर संचार और जलवायु परिवर्तन को अध्धयन करने में प्रौद्योगिकी का बड़ा योगदान है। बहुत तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति करना भविष्य के लिए एक बड़ी चुनौती है। पिछले छह दशक में कृषि यंत्रीकरण, जल प्रबंधन और उचित गुणवत्ता के बीज के समेकित प्रयोग से अनाज का उत्पादन जो 1960 में 82 मिलियन टन था 2018–19 में बढ़कर 283 मिलियन टन तक पहुंच गया है। इस लक्ष्य को हासिल करने में कृषि यंत्रीकरण ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कृषि यंत्रीकरण का स्तर 1960 में 5 प्रतिशत से नीचे था जो 2017 में लगभग 40 प्रतिशत तक पहुंच गया है। कृषि यंत्रों को अपनाने की दर को धीमा करने में बहुत से कारक जिम्मेदार है जिनमे सीमांत एवं लघु किसानो की कृषि यंत्रों को खरीदने में असमर्थता और अलग–२ क्षेत्र में अलग फसल पद्धति का होना मुख्य कारण हैं। भारत के सामने खाद्य आपूर्ति के साथ–२ सतत वातावरण बनाये रखने की भी एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र में पर्यावरण के अनुकूल उचित मशीनों का उपयोग अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भी डीजल और पेट्रोल से चलने वाले कृषि यंत्रों का भूमि क्षेत्रफल एवं उगाई जाने वाली फसलों के हिसाब से उचित चयन और इनका खेत में उपयुक्त स्तर पर संचालन न केवल ऊर्जा बचाएगा बल्कि कृषि क्षेत्र का सतत पर्यावरण बनाने में सहयोग भी सुनिश्चित करेगा। कृषि के क्षेत्र में यह सब किसानों की मदद से ही संभव हो सकता है। अधिकतर भारतीय किसान भूमि क्षेत्रफल को बिना ध्यान में रखे हुए ही बड़े–२ कृषि उपकरण जैसे उच्च शक्ति वाले ट्रैक्टर, कम उपयोग में आने वाली मशीनें खरीद लेते है जो न केवल उनके लिए आर्थिक समस्या उत्पन्न करता है बल्कि इस तरीके से चयनित मशीनें खेत में भी ज्यादा ईंधन की खपत करती है। मशीनों का अनुचित रख रखाव भी इनके कामकाजी जीवन को कम कर देता है जिससे किसान को ये मशीनें कहीं अधिक महँगी लगती है। इसलिए किसान को कृषि उपकरणों के उचित चयन के साथ–२ इनके रखरखाव का ध्यान रखना जरुरी है जिससे ऊर्जा की बचत और मशीन का कार्यकाल दोनों ही बढ़ेंगे।

पॉवर टिलर

कैसे करें कृषि उपकरणों का चयन

प्राइम मूवर का चयन

किसानों को कृषि उपकरण चयन के समय खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल, उगाई जाने वाली फसलें और क्षेत्र में इन उपकरणों की मरम्मत की सुविधा को ध्यान में रखना अति आवश्यक है। भारत के लगभग 85 प्रतिशत किसान सीमान्त एवं लघु श्रेणी में आते है जिनके पास अधिकतम खेती योग्य भूमि 2 हैक्टर होती है। ऐसे सीमान्त एवं लघु श्रेणी वाले किसानो के लिए 8–12 अश्व शक्ति श्रेणी का कोई भी पावर टिलर पर्याप्त है। एक पावर टिलर (7.46 किलो वाट) का कमान क्षेत्र 5 हैक्टर होता है।

मध्यम श्रेणी के किसानों (2–4 हैक्टर) को 25–30 अश्व शक्ति का ट्रैक्टर प्रयोग करना चाहिए। बड़े किसानो (4 हैक्टर से अधिक) को संभव हो सके तो 31–40 श्रेणी के ट्रैक्टर का चयन करना चाहिए। इस श्रेणी का ट्रैक्टर समय से सभी काम निपटाने के साथ–२ उच्च शक्ति वाले ट्रैक्टर की तुलना में कम ईंधन की खपत करेगा। भारत में 60 प्रतिशत ट्रैक्टर इसी श्रेणी में निर्मित होते हैं इसलिए इनकी मरम्मत एवं पुर्जे भी आसानी से मिल जाते हैं। इस श्रेणी के ट्रैक्टर (26.1 किलो वाट) का कमान क्षेत्र 15 हैक्टर होता है।

जुताई उपकरणों का चयन

सीमान्त एवं लघु किसानो को बहुउद्देशीय उपकरणों का चयन करना चाहिए ताकि इन्हे एक से अधिक काम में प्रयोग किया जा सके। किसानो को सीमित आमदनी के कारण ट्रैक्टर या पावर टिलर के साथ अलग–२ उपकरण खरीदने में परेशानी होती है। इसलिए ऐसे किसानो के लिए बहुउद्देशीय उपकरणों का चयन करना जरुरी और लाभदायक होता है। कल्टीवेटर एक ऐसा ही बहुउद्देशीय उपकरण है जिसे जुताई के साथ–२ पंक्तिनुमा फसलों में दो पंक्तियों के बीच निराई काम को सरल बनाने के लिए भी किया जाता है। इसके आलावा डिस्क हैरो भी द्वितीयक जुटाई का एक महत्तवपूर्ण उपकरण है जिससे फसल अवशेष की उपस्थिति में भी जुताई की जा सकती है।

बिजाई मशीन का चयन

सीमान्त एवं लघु किसानों के लिए हस्तचालित एवं पावर टिलर चालित बिजाई मशीनों द्वारा बुआई करना ज्यादा किफायती है। मध्यम और बड़े किसान उगाई जाने वाली फसलों के हिसाब से प्लांटर का चयन कर सकते है जिससे पंक्ति से पंक्ति की दूरी के साथ–२ पौधे से पौधे की दूरी भी समान रहती है। इसके अलावा मध्यम और बड़े किसान न्यूमैटिक प्लांटर का उपयोग करके एक ही जगह पर दो या उससे अधिक बीज गिरने और कभी–२ दूर बीज गिरने की समस्या से निजात पा सकते हैं। उत्तर भारत में किसान धान की कटाई के बाद बिना खेत को त्यार किए, जीरो टिल ड्रिल, हैप्पी सीडर और रोटरी डिस्क ड्रिल की मदद से समय से गेहूँ की बुआई कर सकते है। इससे जुताई में होने वाली देरी से उत्पादकता पर होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। यही नहीं किसान इन मशीनों के प्रयोग से फसल अवशेष को जलाने वाली गतिविधियों से भी बच सकते हैं और किसान पर्यावरण को सतत बनाए रखने में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकते हैं।

स्प्रेयर का चयन

सीमान्त एवं लघु किसान बैटरी चालित नैपसैक स्प्रेयर का इस्तेमाल करें जो पर्णसमूह के अंदर तक कीटनाशी एवं हर्बीसाइड को पहुँचाने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त सौर ऊर्जा चालित नैपसैक स्प्रेयर भी एक अच्छा विकल्प है। यें स्प्रेयर होलो कोन, फ्लैट फैन एवं फ्लड जैट नोजल के साथ आती है जिनका उपयोग क्रमशः कीटनाशक, खरपतवार एवं उर्वरक युक्त घोल को छिड़कने के लिए होता है। यें नोजल आम तौर पर क्रमशः 30 प्रतिशत, 50 प्रतिशत और 100 प्रतिशत ओवरलैप के साथ प्रयोग की जाती है। बैटरी या सौर ऊर्जा चालित नैपसैक स्प्रेयर द्वारा एक दिन (8 घंटे)

पैंडल चालित धान गाहन की मशीन

में 1.5 हैक्टर क्षेत्र में छिड़काव किया जा सकता है। फुट स्प्रेयर एक बहुउद्देशीय स्प्रेयर है जो फलोद्यान, चाय बागान, फूलों और नर्सरी में छिड़काव करने के लिए प्रयोग की जाती है। इस स्प्रेयर की मदद से १० मीटर तक की ऊंचाई वाले पेड़ों पर छिड़काव किया जा सकता है। इस स्प्रेयर में 14 से 18 किग्रा प्रति वर्ग सेंटीमीटर तक का दबाव बनता है।

मध्यम श्रेणी के किसान सब्जी बागान, फूलों, गन्ना, कपास, मक्का आदि में छिड़काव के लिए ट्रैक्टर चालित बूम स्प्रेयर का चयन कर सकते हैं जिसके लिए 25–35 अश्व शक्ति के ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है। बड़े किसान बागवानी फसलों के लिए ऐरो ब्लास्ट स्प्रेयर का चयन करें जिससे एक घण्टे में 2 हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव किया जा सकता है। इसके अलावा ट्रैक्टर चालित इलेक्ट्रोस्टेटिक स्प्रेयर एक नयी तकनीक है जिससे छिड़काव में समानता मिलती है। पारम्परिक छिड़काव की तुलना में इलेक्ट्रोस्टेटिक स्प्रेयर से पौधों की पत्तियों पर रसायन की निक्षेपण दर काफी ज्यादा होती है।

थ्रेशर का चयन

सिमित समय के लिए उपयोग में आने की वजह और ज्यादा कीमत होने के कारण गेहूँ गाहने की मशीन लघु श्रेणी के किसानों के लिए ज्यादा किफायती नहीं हैं। ऐसे किसानों लिए बड़े किसानो की मदद से प्रति घंटे के हिसाब से गेहूँ गाहना ज्यादा अच्छा विकल्प है। धान की खेती करने वाले किसानों के लिए पैडल चालित धान गाहने की मशीन एक बहुत ही अच्छा और सरल विकल्प है। इस मशीन से गाहने की प्रक्रिया में एक घण्टे में 40 किलोग्राम तक धान प्राप्त होता है। सौर ऊर्जा चालित धान गाहने की मशीन इसका उन्नत संस्करण है जिसकी क्षमता इससे चार गुणा है। इसमें दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसके अलावा दाल और मक्का की खेती करने वाले किसान मोटर चालित थ्रेशर मशीन प्रयोग में ला सकते हैं। मध्यम और बड़े किसानों के लिए मल्टीक्रॉप थ्रेशर एक बहुत अच्छी मशीन है जिससे गेहूं, धान, ज्वार, सोयाबीन, सूरजमुखी, चना, तुर,

इत्यादि को गहाया जा सकता है। इस मशीन की उत्पादन क्षमता २ क्विंटल से 80 क्विंटल प्रति घंटा तक होती है।

ट्रैक्टर को अधिकतम दक्षता पे चलाएं

ट्रैक्टर रेटेड स्पीड पर मिलने वाले लोड (टॉर्क) से 3–12 प्रतिशत अधिक लोड वहन करने में सक्षम होता है। ट्रैक्टर में यह सुविधा अचानक से ओवरलोड होने पर इंजन बंद न होने के लिए दी गई है लेकिन इस परिस्थिति में इंजन की दक्षता बहुत कम हो जाती है। ट्रैक्टर में ईंधन खपत का न्यूनतम बिंदु रेटेड स्पीड से थोड़ा पहले मिलता है जहां पर इंजन की दक्षता अधिकतम होती है। अतः ट्रैक्टर से कार्य करते समय नीचे दिए गए बिन्दुओं का ध्यान रखें:

- ट्रैक्टर को फुल थ्रोटल की बजाए 80 प्रतिशत पर चलाएं
- हमेशा गियर अप थ्रोटल डाउन (GUTD) नियम को अपनाएं
- खेत में ट्रैक्टर चालित हल, डिस्क टाइप हल या सबसॉइलर चलाते समय अगर स्लिप १५ प्रतिशत से ज्यादा हो तो ट्रैक्टर टायर में बलास्टिंग करें

कृषि उपकरणों का रखरखाव

कृषि उपकरणों को लम्बे समय तक प्रयोग में लाने के लिए उनका रखरखाव बहुत जरुरी है। अनुचित रखरखाव होने की वजह से इनका कार्यकाल आधे से भी कम हो जाता है। भारतीय मानक (9164–1979) के अनुसार कुछ महत्वपूर्ण कृषि उपकरणो का उपयोगी जीवनकाल तालिका 1 में दिया गया है। कृषि उपकरणों को प्रयोग करने के बाद लुब्रिकेटिंग ऑयल का स्तर एवं इसकी श्यानता (गाढ़ापन) अच्छी तरह से जांच लें। श्यानता बहुत कम होने पर लुब्रिकेटिंग ऑयल को निकाल कर नया लुब्रिकेटिंग ऑयल डाल दें। बिजाई मशीनों को बुआई समय खत्म हो जाने के बाद अच्छी तरह से साफ करके सुरक्षित जगह पर रखें जहां इन्हें पानी से बचाया जा सके। इन मशीनों में बचा हुआ खाद मशीन के अंदरुनी भागों को खराब करता है। रसायन में उपयोग होने वाले उपकरण जैसे स्प्रेयर को प्रयोग करने के बाद 4–5 बार पानी से साफ कर लें। इससे रसायन उपकरण के अंदरुनी भागों में नहीं बचेगा। ऐसे उपकरणों को प्रयोग करने के बाद बिना साफ किये रखने से इस रसायन का दूसरे रसायन के साथ मिश्रित हो जाने का खतरा बना रहता है जो बाद में प्रयोग के समय फसल को नुकसान पहुंचा सकता है। इससे इनका कार्यकाल भी कम हो जाता है। कृषि उपकरणों का अच्छी तरह रखरखाव करने से इनके वांछनीय कार्यकाल को अर्जित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

भविष्य में खाद्य आपूर्ति को पूरा करने के लिए किसानों को कृषि उपकरणों द्वारा आधुनिक तरीके से खेती करने की जरूरत है। किसान इन उपकरणों का चयन खेत के क्षेत्रफल, उगाई जाने वाली फसलें और क्षेत्र में उपलब्ध मरम्मत सुविधा को ध्यान में रखते हुए करें। किसान ट्रैक्टर या स्थिर डीजल इंजन को हमेशा उपयुक्त स्तर (थ्रोटल ८० प्रतिशत से नीचे) पर चलाएं ताकि इंजन पूरी दक्षता के साथ काम करें और डीजल की बचत हो सके। इससे पर्यावरण को सतत बनाए रखने में भी सहायता मिलेगी। कृषि उपकरणों का रखरखाव बहुत बहुत जरुरी है जिससे इन्हें लम्बे समय तक प्रयोग किया जा सकता है।

जरबेरा के फूलों की खेती

हेमंत कुमार सिंह[1]' एवं अनुपम आदर्श[2]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, किशनगंज, बिहार

[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

जरबेरा एक बहुत ही महत्वपूर्ण कर्तित फूल है जो कि विश्व के अनेक भागों में उगाया जाता है। इसके अनेक रंगो तथा आकार होने के कारण इसको काफी पसन्द किया जाता है। राष्ट्रीय एंव अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में इसके काले रंग के केन्द्र वाले फूलों की बहुत मांग है। इसकी उत्पत्ति एशिया, दक्षिण अफ्रीका व तसमानिया क्षेत्रों में मानी गयी है। जरबेरा शब्द की उत्पत्ति जर्मन प्रकृति वैज्ञानिक टी0 जरबर के नाम पर हुई है। जरबेरा वंश में 40 जातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें सिर्फ जरबेरा जेमीसोनी जाति को ही फूलों के लिए लगाया जाता है। यह एस्तेरसी कुल का महत्वपूर्ण पौधा है जो दक्षिण अफ्रीका मूल से उत्पती है। इसे अफ्रीकन डेजी के नाम से भी जाना जाता है। व्यापारिक फूलों में विभिन्न रंगो मे पाए जाने के कारण इसे बहुत ही पसंद किया जाता है एवं इसे गमलों और रॉक गार्डेन में लगाया जाता है। जरबेरा बहुवर्षीय, तना रहित पौधा है। इसकी खेती पॉलीहाउस में भी की जाती है परन्तु खुले स्थान पर लगाने पर पौधों की वृद्धि अच्छी नही होती, फूलो की गुणवत्ता भी अच्छी नही होती है और बाजार में अच्छा मूल्य भी नही मिल पता। गुणवत्तायुक्त फूलों के लिये इसकी खेती पॉलीहाउस में करनी चाहिए।

उन्नत किस्म

जरबेरा की व्यापारिक खेती के लिए निम्नलिखित किस्मों को लगाया जाता है। जो इस प्रकार है, जैसे– फ्रेडकिंग (पीला), मारोन क्लेमेन्टीन (नारंगी), फ्रेडेजी (गुलाबी), नाडजा (पीला), डस्टी (लाल), फ्लेमिन्गो (पेल रोज), टैराक्वीन (गुलाबी), यूरेनस (पीला),फ्लोरिडा (लाल), वेलेन्टाइन (गुलाबी), वेस्टा (लाल) आदि प्रमुख है।

मिट्टी एवं जलवायु

जरबेरा के अच्छे फूल प्राप्त करने के लिए प्रकाश की 50 प्रतिशत मात्रा होना आवश्यक है लेकिन गर्मी के महीनो मे आंशिक रूप से छायादार जाल में भी इनकी खेती की जा सकती है। प्रायः जरबेरा की आदर्श खेती के लिए दिन का तापमान 22–25 डीग्री सेल्शियस तथा रात का तापमान 12–16 डिग्री सेल्शियस उपयुक्त है। सर्दियो के समय प्रकाश की कमी से फूलों के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पडता है। फूलों की अच्छी पैदावार के लिए जल निकास वाली उपजाऊ, हल्की और उदासीन से हल्की क्षारीय मिट्टी उपयुक्त होती है। जरबेरा उष्ण और समशीतोष्ण जलवायु में खुली जगहों पर लगाया जाता है, परन्तु शीतोष्ण जलवायु में इसे हरित घर में लगाया जाता है। यह पौधा ठंडे मौसम में धूप पसंद करता है तथा गर्मी के मौसम में हल्की छाया की जरूरत होती है। जाड़े में खराब रोशनी से फूल कम खिलते हैं। भूमि का पी0एच0 मान 6.5–7.5 होना चाहिए। इस तरह के पी. एच. मान रहने पर फूल अधिक खिलते हैं तथा फूल के डंठल लम्बे निकलते हैं।

पौध रोपण

सामान्य तौर पर जरबेरा की रोपाई बंसत ऋतु (जनवरी–मार्च) और गर्मियों (जून–अगस्त) मे की जाती है। रोपाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधों का क्राउन भाग मृदा से ऊँचाई पर हो। पौधों को जमीन के अन्दर गहराई पर रोपने से बीमारियाँ ज्यादा होने का डर रहता है तथा पौधे का उचित विकास नहीं हो पाता है। आमतौर पर जरबेरा को एक मी0 चौडी उठी हुई क्यारियों मे लगाया जाता है। दो क्यारियों के बीच मे 50 सेमी0 की जगह छोड दी जाती है पौधे से पौधे और कतार से कतार की दूरी 30×30 सेमी0 अथवा 40×40 सेमी0 रखते है।

खाद एवं उर्वरक

जरबेरा के फूलों को उचित वृद्धि और उत्पादन के लिए प्रमुख और सूक्ष्म पोषक तत्वों के रूप में कार्बनिक पदार्थों की पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। 7.5 किलोग्राम सड़ी गली गोबर खाद/वर्ग मी. के उपयोग से बेहतर परिणाम । रोपण के पहले 3 महीनों के दौरान 10:15:20 ग्रामएन पी के/वर्ग मी^{2} महीनों का उपयेाग और 15:10:30 एन पी के/वर्ग मी^{2} महीना का उपयेाग 4 महीने से 15 दिनों के अंतराल पर अच्छी वृद्धि के लिए उपयेागी पाया जाता है और फूलों का उत्पादन। इसके अलावा, बेहतर गुणवत्ता वाले खिलने के लिए महीने में एक बार बोरॉन, कैल्शियम, मैग्नीशियम और कॉपर/0.15: (1.5 ग्राम/लीटर पानी) जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ छिड़काव किया जाता है। खाद एवं उर्वरक का प्रयोग

समय–समय पर करने से पौधे विकास और वृद्धि के साथ फूल उत्पादन भी अच्छा करते है। खाद एवं उर्वरक का उपयोग मिट्टी जाँच के आधार पर करना चाहिए।

प्रसारण

जरबेरा का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक भागों द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा प्रवर्धन नयी जातियों को विकसित करने के लिए किया जाता है। वानस्पतिक विधि द्वारा प्रवर्धन करने से पौधे पैतृक जैसे ही उत्पादित होते हैं। इस विधि द्वारा जरबेरा का प्रवर्धन कलम्प विभाजन द्वारा किया जाता है। कलम्प विभाजन विधि द्वारा कम समय में बड़े पैमाने पर पौधों को तैयार नहीं किया जा सकता है। बड़े पैमाने पर रोगमुक्त पौधे उत्तक संवर्धन विधि द्वारा तैयार किये जाते है।

(1) **बीज द्वारा**: फूलों में बीज बनने की प्रक्रिया 10 से 12 बजे सुबह परागण द्वारा उष्ण एवं धूपयुक्त जगहों पर होती है। अप्राकृतिक ढंग से परागण से अधिक मात्रा में बीज बनते हैं। बीज को जल्द से जल्द निकाल कर अंकुरण कराने पर अंकुरण अच्छा होता है। बीज के अंकुरण में 5–6 सप्ताह का समय लगता है, जो डेढ़ से दो साल में फूल देते हैं।

(2) **विभाजन**: जब पौधे गुच्छे में हो जाते हैं तब बरसात के मौसम में पौधे का विभाजन कर पौधे बनाए जाते हैं। जरबेरा के पौधे को 3 सप्ताह पूर्व ही सिंचाई बंद कर उसकी जड़ों को काट देना चाहिए। तनों को ऐसा काटना चाहिए कि उसमें कलियाँ हों। उस कटे हुए भाग में रुटेक्स दवा का प्रयोग कर 25–300 सेंटीग्रेड तापमान तथा 80% आर्द्रता वाली जगह पर लगा देना चाहिए। पौधे बनने में 2 से 3 महीने लगते हैं। इस प्रक्रिया से मातृ पौधे से 40–50 पौधे 2–3 महीने में बनाए जा सकते हैं।

सिंचाई

रोपाई के तुरन्त बाद चार हफ्तों तक हल्की बौछार विधि द्वारा करनी चाहिए। इसके बाद टपक विधि द्वारा पौधों की सिंचाई व उर्वरक दिया जात है। यदि बौछारों या टपक विधि द्वारा सिंचाई की जाये तो गुणवत्तायुक्त फूलों का अधिक उत्पादन किया जा सकता है। हैं। किसी भी अवस्था में सिंचाई की कमी जरबेरा की वृद्धि, गुणवत्ता तथा फूल के उत्पादन को प्रभावित करती है। जाड़े में 10–12 दिनों के अंतराल पर तथा गर्मियों में 6–7 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई करते रहनी चाहिए।जरबेरा के पौधो को प्रतिदिन 600–750 मि0ली0 पानी की आवश्यकता होती है।

खर–पतवार नियंत्रण

जरबेरा की फसल में निराई और गुड़ाई एक महत्वपूर्ण कार्य है। जब पौधे वानस्पतिक अवस्था में होते हैं तो रोपाई के 3 महीने बाद तक की समस्या होती है। इसलिए, 3 महीने तक पखवाड़ा अंतराल पर और 3 महीने के बाद 30 दिनों के अंतराल पर निराई करनी चाहिए।

कटाई का समय

जरबेरा में 8–12 हफ्तों के बाद फूल आने शुरू हो जाते है। सप्ताह मे दो से तीन बार तुड़ाई की जाती है। फूलों की डण्डी को पकड़कर एक तरफ झुकाकर तथा झटका देकर तोड़ना चाहिए। पूर्ण खिले फूल या जब फूल में पंखुडियों की 2–3 कतारें पूर्ण विकसित हो जायें तो उस समय उनको तोड़ लेना चाहिए।

कटाई की अवस्था का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। फुल अतीशिघ्र नाशवान प्रकृति होने के कारण इसकी कटाई जल्दी सुबह या देर शाम के समय जब तापमान कम हो तब कटाई करनी चाहिए। प्रातः के समय फुल अधीक तरोताजा रहता शाम के कटे हुये फूलो में कार्बोहायड्रेट का संचयन होता है जिससे फूलो की द्रिघायु निर्धारीत करता है। इससे पता चलता है कि फूलों को उस समय तोडना चाहिये जब फूलों के दो–रे फ्लोरेट्स पुरी तरह खुल जाये।

उपज

जरबेरा पौधा लगाने के तीन महीना बाद फूल खिलना शुरू हो जाता है। हरित घर में प्रति वर्ग मीटर में प्रति वर्ष 200–250 फूल का उत्पादन होता है। खुली जगहों पर 120–150 फूल/वर्ग मीटर/वर्ष खिलते हैं। फूलों को सुबह या शाम के समय काटना चाहिए।

सरसों का बीज उत्पादन

भूपेन्द्र कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, बागपत

सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

सरसों भारत की रबी मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख तिलहनी फसल है। प्रदेश में अनेको प्रयासों के बाद भी सरसों के क्षेत्रफल में विशेष बढ़ोतरी नहीं हो पा रही है । इनके प्रमुख कारण सिंचित क्षमता में वृद्धि के कारण अन्य महत्वपूर्ण फसलों का मुख्य फसलों के रूप में क्षेत्रफल का बढ़ना, अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता न होना एवं बाजार में खाद्य तेलों की कीमतों में वृद्धि होने के बावजूद भी कृषकों को उचित मूल्य न मिलना आदि है । बीज उत्पादन तकनीकी एवं खेती की उन्नत विधियॉ अपनाकर क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है ।

बीज उत्पादन करते समय निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाऐं :–

1 खेत का चयन– :– सरसों के बीज उत्पादन के लिए ऐसी भूमि/खेत का चयन न करें जिसमें पिछलें मौसम में सरसों की किसी भी प्रजाति को उगाया गया हो। यदि समान किस्म को प्रमाणित बीज से उगाया गया है तो बीज फसल को इस भूमि/खेत में उगाया जा सकता है । बीज खेत के लिए भूमि में जल निकास का प्रबन्ध अच्छा होना चाहिए।

2 पृथक्करण दूरी :– प्रमाणीकरण मानकों के अनुसार आधार बीज के लिए बीज फसल के खेत की न्यूनतम दूरी लगभग 100 मीटर और प्रमाणित बीज के लिए लगभग 50 मीटर रखनी चाहिए ।

3 क्रियाऍं :–

खेत की तैयारी:– खेत की पहली जुताई मिटटी पलटने वाले हल से तथा 2–3 जुताई देशी हल से कर लें तथा इसके बाद पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा बना लेना चाहिए अथवा एक अच्छी जुताई के बाद 2–3 बार हैरो चलाकर खेत को पाटा लगाकर भुरभुरा बना लेना चाहिए । यदि खेत में नमी कम हो तो पलेवा करके ही खेत तैयार करना चाहिए । अच्छे अंकुरण के लिए यह आवश्यक है कि भूमि में पर्याप्त मात्रा में नमी हों ।

5. बीज एवं बुवाई:– आधार बीज उत्पादन के लिए कृषि विश्वविद्यालयों/कृषि अनुसंधान संस्थान अर्थात किसी मान्य स्रोत से उपचारित प्रजनक या आधार बीज तथा प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए उपचारित आधार बीज प्राप्त करना चाहिए । सरसों की बुवाई का उपयुक्त समय सितम्बर का अन्तिम सप्ताह से अक्टूबर का प्रथम सप्ताह है। एक हैक्टर क्षेत्रफल में बीज फसल लेने के लिए 5–6 किग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है। बीज को पंक्ति से पंक्ति 20 सेमी0 एवं बीज से बीज 45 सेमी0 की दूरी पर बोये। बीज थैलों पर बीज की प्रजाति एवं बीज का वर्ग के नाम की जॉच कर लें तथा टैग को सम्भालकर रखें।

यदि बीज स्रोत से उपचारित बीज प्राप्त नहीं हुआ है उस स्थिति में बोने से पहले बीज को डाइथेन एम–45 (2 ग्राम रसायन प्रति किग्रा0 बीज के लिए) से उपचारित करें । बीज जनित रोगो से सुरक्षा हेतु 2.5 ग्राम थीरम प्रति किग्रा0

4. बीज उत्पादन हेतु उन्नतशील प्रजातियां

प्रजातियां	पकने की अवधि (दिनों में)	उत्पादन क्षमता (कु0/है0)	विशेष विवरण
वरूण (टी0 59)	125–130	20–25	सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र हेतु
पूसा क्रान्ति	125–130	22–28	सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र हेतु
रोहिणी	130–135	22–28	सम्पूर्ण उ0प्र0 हेतु
पूसा बोल्ड	125–130	22–25	सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र हेतु
महक (जे0डी0–6)	140–150	22–25	सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र हेतु
पूसा तारक	130–135	22–25	सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र हेतु
पूसा जय किसान	125–130	22–25	सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र हेतु

बीज की दर से बीज को उपचारित करे । सफेद गेरूई एवं तुलसिता रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोकथाम मैटालाक्सिल की 1.5 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा0 बीज की दर से बीज शोधन करने से हो जाती है ।

6 उर्वरक :– उर्वरको का प्रयोग मिटटी परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर ही करे। बीज उत्पादन करने के लिए संचित क्षेत्रों में नत्रजन 120 किग्रा0, फास्फोरस 60 किग्रा0 एवं पोटाश 40 किग्रा0 प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करने से उपज में अच्छी वृद्धि होती है । फास्फोरस का प्रयोग सिंगिल सुपर फास्फेट के रूप में देने से अधिक लाभदायक होता है क्योंकि इससे सल्फर की उपलब्धता भी हो जाती है। यदि सिंगिल सुपर फास्फेट उपलब्ध न हो तो सल्फर की 40 किग्रा0 मात्रा प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। असिंचित क्षेत्रों में उपयुक्त उर्वरकों की आधी मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें। यदि डी0ए0पी0 का प्रयोग करना है तो इसके साथ बुवाई के समय 200 किग्रा0 जिप्सम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना बीज फसल के लिए लाभदायक होता है। बीज फसल की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 60 कुन्तल गोबर की खाद (FYM) प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए ।

सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूंडो में बीज के 2–3 से0मी0 नीचे नाईया चोंगा से देना चाहिए तथा नत्रजन की शेश मात्रा पहली सिंचाई (बुवाई के 25–30 दिन बाद) के बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए ।

7 निराई–गुडाई एवं विरलीकरण (थिनिंग) :–

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए बुवाई के 15–20 दिन के अन्दर घने पौधो को निकालकर उनकी आपसी दूरी 15 से0मी0 कर देना आवश्यक है। खरपतवार नष्ट करने के लिए एक निराई–गुडाई सिंचाई के पहले एवं दूसरी पहली सिंचाई के बाद करे बुवाई के 2–3 दिन के अन्दर पैन्डीमेथलीन (30 ई0सी0) की 3.3 लीटर मात्रा को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति है. की दर से प्रयोग करने से खरपतवार नियन्त्रण किया जा सकता है ।

8. सिचाई :– सरसों, फूल आने के समय तथा दाना भरने की आवस्थाओं में, नमी की कमी के प्रति विशेष संवेदनशील होती है। इसलिए उपयुक्त अवस्थाओं के समय अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए सिंचाई अवश्य करे ।

9. फसल सुरक्षा :– रोग नियन्त्रण– सरसों की बीज फसल में झुलसा रोग का प्रकोप अधिक हो सकता है। इस रोग में पत्तियों तथा फलियों पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बन जाते है जिनमें गोलाकार भूरे अतिगलित नीक्रोटिक छल्लें केवल पत्तियों पर दिखाई देते है। इस रोग का नियन्त्रण करने के लिए 2 कि0ग्रा0 मैंकोजेब (75 प्रतिशत) 2 किग्रा0 जीरम (80 प्रतिशत) या 2.5 किग्रा0 जिनेब (75 प्रतिशत) या 3.7 ली0 जीरम (25 प्रतिशत) या 3.0 किग्रा0 कापर ऑक्सीक्लोराइड (80 प्रतिशत) में से किसी एक रसायन का प्रयोग 800–1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिडकाव करें। पहला छिडकाव रोग के लक्षण दिखाई देने पर और दूसरा छिडकाव पहले छिडकाव के 15–20 दिन के अन्तर से करें। अधिकतम 4–5 छिड़काव करने से बीज फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है ।

कीट नियन्त्रण:– सरसों के प्रमुख कीट हैं– माहू, चितकबरा कीड़ा, आरा, मक्खी, बन्द गोभी की सूड़ी पत्ती में सुरंग बनाने वाला कीट, बालदार सूड़ी, कटुआ कीट, सेमी लूपर तथा फ्ली बिटिल और दीमक मुख्य कीट हैं। सरसों कुल की सभी फसलों के छोटे पौधों पर आरामक्खी की गिडारें (काली गिडार एवं बालदार गिडार–मस्टर्ड सा–फ्लाई) हानि पहुॅचाती है, गिडारे काले रंग की होती है जो पत्तियों को बहुत तेजी के साथ किनारों से अथवा विभिन्न प्रकार के छेद बनाती हुई खाती हैं जिसके कारण पत्तियॉ बिल्कुल छलनी हो जाती है। इस कीट की रोकथाम के लिए मैलाथियान (5 प्रतिशत चूर्ण) 20–25 किग्रा0, इण्डोसल्फान (35ई0सी0) 1.25 लीटर, मैलाथियान (50ई0सी0) 1.5 लीटर , इण्डोसल्फान (4 प्रतिशत धूल) की 20 किग्रा0 मात्रा आदि में से किसी एक रसायन का प्रयोग प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए। सरसों में दूसरा कीट माहूॅ/चेपा मुख्य कीट है जो झुण्ड के रूप में पत्त्यिों, फूलो, डंठलो, फलियों आदि पर चिपके रहते है एवं रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देते है जिससे फलियों में दाने नहीं बनते है। यह कीट छोटा, कोमल शरीर वाला हरे मटमैले भूरे रंग का होता है ं इस कीट का प्रकोप दिसम्बर के मध्य से शुरू होता है और बादल घिरे रहने पर इसका प्रकोप बडी तिव्रता से होता है। इसकी रोकथाम के लिए 1.0 ली. डाइमिथोएट (30ई.सी) या 1.0 ली. मिथाईलओ –डिमेटान (25ई.सी) या 1.0 ली0 इण्डोसल्फान (35ई. सी) या 1.0 ली. क्लोरोपाईरीफास (20ई.सी) या 1.0 ली. मोनोक्रोटोफास (36एस.एल) आदि में से किसी एक रसायन को प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करने से बीज फसल को इस कीट से सुरक्षित रखा जा सकता है। उपरोक्त कीट के अतिरिक्त इस फसल में पेन्टेडबग कीट जो नारंगी रंग का धब्बेदार कीट है, के शिशु तथा व्यस्क टहनियों तथा

कलियों से रस चूसते है जिससे पौधा कमजोर तथा फलियों में दाना नहीं बनता है । इसकी रोकथाम के लिए ऊपर बताये गये कीटनाशको का प्रयोग करना लाभदायक होता है ।

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धनः— माहू/चेपा की रोकथाम के लिए सितम्बर का अन्तिम सप्ताह से अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक बुवाई कर देनी चाहिए तथा अगेती प्रजातियों की बुवाई करें जिससे इस कीट के प्रकोप से बचा जा सके। चेपा से प्रभावित टहनियों को दिसम्बर के अन्त तक तोड़ देना चाहिए तथा रोगग्रस्त पत्तियों को प्रकोप की प्रारम्भिक अवस्था में ही तोडकर नष्ट कर दें । झुण्ड वाले कीड़ों की सूंडियों या अण्ड़ों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए । सरसों के नाशी जीवों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे—इन्द्रगोप भृंग, क्राइसोपा, सिराफिड़फ्लाई— आदि का फसल वातावरण में संरक्षण करे ।

10. अवॉछनीय पौधो को निकालना :— समय—समय पर आवश्यकतानुसार झुलसा रोग से ग्रस्त पौधों, खरपतवार के पौधों एवं भिन्न पौधो को निकालकर नष्ट कर दें । यदि हम झुलसा ग्रस्त पौधो को नहीं निकाल पाते है तो ऐसे पौधो की जड़ों को छोड़कर पौधो के सभी भागों पर भूरे से लेकर काले धब्बे पड़ जाते है जिससे कवक फलियों में प्रविश्टि कर जाता है और इससे बीजों पर छोटा या काला—भूरा धब्बा पड़ जाता है । खरपतवार (सत्यनाशी) के बीज सरसों के बीज के आकार के ही होते है तथा एक बार बीज के मिश्रण होने पर इन्हें अलग करना असम्भव हो जाता है । इसलिए इन्हें बीज पड़ने से पहले ही निकालना आवश्यक है ।

11. फसल कटाई, मडाई एवं भण्डारण :— सरसों पकने पर इसकी फलियॉ आसानी से चिटक जाती है और बीज बिखर जाते है । बीज पकने पर कठोर व काला हो जाता है अर्थात फलियॉ सुनहरे रंग की हो जाती है । तेज हवा चलने वाले क्षेत्रों में सरसों में बीज झडने के कारण पौधों के पीले होने पर फसल काट ली जाती है और खेत में सूखने के लिए छोड़ दी जाती है । साधारणतयाः फसल को हाथ से काटकर 2—3 दिन खेत में ही धूप में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है और फिर इसे ड़ंडों से पीटकर दाने निकाल लिए जाते है । फसल कटाई व मड़ाई करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि किसी भी प्रकार से यांन्त्रिक सन्दूशण न हो तथा बीजों को किसी प्रकार से क्षति न पहुॅचें । बीजो को भण्डरित करते समय ध्यान रहें कि शुष्क बीज को ही 8—10 प्रतिशत आर्द्रता पर भण्डारित किया जाना चाहिए ।

मक्का की फसल में फाल आर्मी वर्म कीट प्रबंधन

प्रमोद गुप्ता[1] एवं योगिता घरडे[2]

[1]जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
[2]भाकृअनुप–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

प्रस्तावना :

मक्का (वानस्पतिक नाम रूर्मं उंले) एक प्रमुख खाद्य फसल हैं, जो मोटे अनाजो की श्रेणी में आता है। भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर 2700 मीटर उँचाई वाले पहाडी क्षेत्रों तक मक्का सफलतापूर्वक उगाया जाता है। इसे सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है तथा बलुई, दोमट मिट्टी मक्का की खेती के लिये बेहतर समझी जाती है। मक्का एक ऐसा खाद्यान्न है जो मोटे अनाज की श्रेणी में आता तो है परंतु इसकी पैदावार पिछले दशक में भारत में एक महत्त्वपूर्ण फसल के रूप में मोड़ ले चुकी है क्योंकि यह फसल सभी मोटे व प्रमुख खाद्यान्नों की बढ़ोत्तरी दर में सबसे अग्रणी है।

भारत में मक्का का महत्त्व एक केवल खाद्यान्न की फसल के रूप मे जाना जाता है। भारत में मक्का की खेती जिन राज्यों में व्यापक रूप से की जाती है वे हैं – आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, राजस्थान, उत्तर प्रदेश इत्यादि। इनमे से राजस्थान में मक्का का सर्वाधिक क्षेत्रफल है व आन्ध्रा में सर्वाधिक उत्पादन होता है। परन्तु मक्का का महत्व जम्मू कश्मीर, हिमाचल, पूर्वोत्तर राज्यों, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, महाराष्ट्र, गुजरात व झारखण्ड में भी काफी अधिक है। इसकी उपज को कीट–व्याधियाँ प्रभावित करते है । प्रमुख कीट में फॉल आर्मी वर्म अत्यधिक प्रभावित करता है ।

फॉल आर्मी वर्म कीट सबसे पहले 2015 में अमेरिका में पाया गया था। इसके बाद 2017 के अंत तक यह 54 अफ्रीकी देशों में से 44 देशों में फैल चुका है। वहां इस कीट ने काफी नुकसान पहुंचाया है। मई, 2018 में कर्नाटक के शिवगोमा में पाया गया। इसके बाद हसन, बेंगलुरू व चिकबालापुर में देखा गया। इसके आंध्र प्रदेश, गुजरात व बिहार में भी पाए जाने की सूचना है। यह कीट एक दिन में एक सौ किमी तक की उड़ान कर लेता है। इस कीड़े की पहली पसंद मक्का है लेकिन यह चावल, ज्वार, बाजरा, गन्ना, सब्जियाँ और कपास सहित 80 से अधिक पौधों की प्रजातियों को खा सकता है। यह कीट पहली बार 2016 की शुरुआत में मध्य और पश्चिमी अफ्रीका में पाया गया था और कुछ ही दिनों में लगभग पूरे उप–सहारा अफ्रीका में तेजी से फैल गया। वर्ष 2017 में दक्षिण अफ्रीका में इस कीट के फैलने के कारण फसलों को भारी नुकसान हुआ था। ये कीट सबसे पहले पौधे की पत्तियों पर हमला करते हैं कीट एक बार में 900–1000 अंडे दे सकते हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे पहले मई, 2018 में इस विनाशकारी कीट की मौजूदगी कर्नाटक में दर्ज की गई थी और तब से अब तक यह पश्चिम बंगाल तथा गुजरात तक पहुँच चुका है। उचित जलवायु परिस्थितियों के कारण यह न केवल पूरे भारत में बल्कि एशिया के अन्य पड़ोसी देशों में भी फैल सकता है। कर्नाटक राज्य भारत में सबसे बड़े मक्का उत्पादकों में से एक है और मक्का देश में व्यापक रूप से उत्पादन किया जाने वाला तीसरा अनाज है। मध्य प्रदेश में जिला छिन्दवाड़ा जिसे कॉर्न सिटी के नाम से जाना जाता रहा है, मक्का की उत्पादकता मे अग्रणी जिला है ।

पहचान के लक्षणः

फॉल आर्मी वर्म कीट छोटी से तीसरी अवस्था तक इसके लार्वा को पहचानना मुश्किल है, लेकिन जैसे–जैसे बड़ा होता, इसकी पहचान आसान हो जाती है। इसका लार्वा भूरा, धूसर रंग का होता है, जिसके शरीर के साथ अलग से टयूबरकल दिखता है। इस कीट के पीठ के नीचे तीन पतली सफेद धारियाँ और सिर पर एक अलग सफेद उल्टा अंग्रेजी शब्द का 'वाई' के आकार का निशान दिखता है । साथ ही लार्वा के 8 वे बॉडी सेगमेंट पर 4 बिंदु वर्गाकार आकृति में देखे जा सकते हैं। फॉल आर्मीवर्म कीट के सिर के तरह चार बिंदू होते हैं। यह इसकी पहचान का तरीका है।

जीवन चक्र

एक बार में दो सौ तक अंडे : इसकी वयस्क मादा एक बार में 50 से 200 तक अंडे देती है। यह मादा अपने जीवन काल (7 से 21 दिन) में 10 गुच्छे अंडे यानी 1700 से 2000 तक अंडे दे सकती है। ये अंडे 3 से 4 दिन में फूट जाते हैं

और इनमें से लार्वा निकलते हैं। लारवल पीरियड 14 से 22 दिन होता है, प्यूपल पीरियड 7 से 13 दिन का होता है। इस कीट का जीवन चक्र 30 से 61 दिन का होता है।

क्षति के लक्षण

पौधों को ऐसे पहुंचाता है नुकसान : छोटी लार्वा पौधों की पत्तियों को खुरचकर खाती है, जिससे पत्तियों पर सफेद धारियां दिखाई देते हैं। जैसे–जैसे लार्वा बड़ी होती है, पौधों की ऊपरी पत्तियों को खा जाती है और लार्वा बड़ा होने के बाद मक्का के गाले में घुसकर पत्तियां खाती रहती हैं। पत्तियों पर बड़े गोल–गोल छिद्र एक ही कतार में नजर आते हैं।ये कीट सबसे पहले पौधे की पत्तियों पर हमला करते हैं, इनके हमले के बाद पत्तियाँ ऐसी दिखाई देती हैं जैसे उन्हें कैंची से काटा गया हो ।

आर्मीवर्म के फैलाव की वजह

1. जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ संक्रमित और गैर–संक्रमित क्षेत्रों के बीच बढ़ता व्यापार और परिवहन फॉल आर्मीवार्म के फैलाव के कारण हैं, जिसने संभावित रूप से दुनिया की खाद्य सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है। गर्म और आर्द्र तापमान (20 से 32 डिग्री सेल्सियस के बीच) तथा लंबे व शुष्क समयांतराल फॉल आर्मीवार्म के प्रजनन के लिये अनुकूल कारक हैं।
2. प्रजनन में शीघ्रता।
3. भारतीय उपमहाद्वीप के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु का आर्मीवार्म के अनुकूल होना, जो उन्हें पूरे साल भोजन उपलब्ध कराती है।

ऐसे करें प्रबंधन :

1. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करके शंखी अवस्था को नष्ट करें।
2. समय पर बुआई करें। मानसून वर्षा के साथ ही बुआई करें, विलंब ना करें।
3. अनुशंसित पौध अंतरण पर बुआई करें।
4. संतुलित उर्वरकों का अनुशंसित मात्रा में, विशेषकर नत्रजन की मात्रा का प्रयोग अधिक ना करें।
5. अंन्तवर्ती फसल के रूप में दलहनी फसल मूंग, उड़द लगाए।
6. जिन क्षेत्रों में खरीफ की मक्का ली जाती है उन क्षेत्रों में ग्रीष्म कालीन मक्का ना लें तथा अनुशंसित फसल चक्र अपनाऐं।
7. अंडे के गुच्छे ढूंढ़ कर नष्ट करें।
8. प्यूपा से वयस्क बनने को रोकने के लिए भूमि में नीम की खली 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर डालें।
9. प्रारंभिक अवस्था में लकड़ी का बुरादा, राख एवं बारीक रेत पौधे की पोंगली में डालें।
10. प्रकाश प्रपंच (एक प्रति हैक्टर) लगाकर इसके मोथ (तितली) पर नजर रखें।

कीटनाशी का भी प्रयोग करें :

1. जैविक कीटनाशक के रूप में बी टी 1 किग्रा प्रति हेक्टर अथवा बिवेरिया बेसियाना 1.5 ली प्रति हेक्टर का छिड़काव सुबह अथवा शाम के समय करें।
2. लगभग 5 प्रतिशत प्रकोप होने पर रासायनिक कीटनाशक के रूप में फ्लूबेंन्डामाइट 20 डब्ल्यू डी जी 250 ग्राम प्रति हैक्टर या स्पाइनोसेड 45 ईसी, 200–250 ग्राम प्रति हैक्टर या इथीफेनप्रॉक्स 10 ईसी 1 लीटर प्रति हैक्टर या एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एस.जी. का 200 ग्राम प्रति हैक्टर में कीट प्रकोप की स्थिति अनुसार 15–20 दिन के अंतराल पर 2 से 3 बार छिड़काव करें अथवा थायोडिकार्ब 7 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से उपयोग करें। प्रथम छिड़काव बुआई के बाद 15 दिन की अवधि में अवश्य करें।

शिशु मक्का (बेबी कॉर्न) की वैज्ञानिक खेती

सुबोध कुमार

पूर्व उप परियोजना निदेशक, आत्मा, शामली, उ.प्र.

यह मक्का के पौधे का वह अनिषेचित भुट्टा होता है, जिसे सिल्क निकलने के 2–3 दिन के अन्दर तोड़कर उपयोग में लाया जाता है। इसका उपयोग सलाद, सूप, सब्जी, अचार एवं कैण्ड़ी, पकौड़ा, कोफ्ता, टिक्की, बर्फी, लड्डू, हलुवा, खीर इत्यादि व्यंजन बनाने में किया जा सकता है। यह मक्का बहुत ही पौष्टिक एवं स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ है, जिसको सभी लोग उपयोग में ला सकते हैं।

शिशु मक्का पत्ती में लिपटी होने के कारण कीटनाशक दवाओं के प्रभाव से मुक्त होती है, इससे फास्फोरस भरपूर मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, लोहा, कैल्शियम तथा विटामिन भी पाया जाता है, इसमें कोलेस्ट्राल नहीं होता है तथा रेशों की अधिक मात्रा होने के कारण यह एक निम्न कैलोरी युक्त आहार है, जो हृदय रोगियों के लिए लाभदायक होता है।

भूमि का चयन – शिशु मक्का की खेती के लिए पर्याप्त जीवांश युक्त दोमट भूमि उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी–एक जुताई मिट्टी पलट हल से तथा शेष दो तीन जुताई देशी हल या कल्टीवेटर द्वारा करके पाटा लगाकर खेत को तैयार कर लेना चाहिए। बुवाई के लिए खेत पलेवा करके बोना चाहिए, जिससे खेत में पर्याप्त नमी हो।

प्रजातियों का चयन – शिशु मक्का की खेती हेतु कम समय में पकने वाली मध्यम ऊँचाई की एकल क्रास संकर किस्में सबसे अधिक उपयुक्त होती है, जो निम्नलिखित हैं:–

1 एच.एम.–4

2 प्रकाश

3 बी.एल.–42

4 पूसा अगेती संकर मक्का–3

5 पूसा अगेती संकर मक्का–5

6 विवेक संकर मक्का–9

कम समय में पकने वाली एकल क्रास सिंगल किस्में जिसमें खरीफ में सिल्क आने की अवधि 45–50 दिन, बसन्त में 70–75 दिन तथा जाडे के मौसम में 120–130 दिन है।

बुवाई का समय – शिशु मक्का की बुवाई दिसम्बर–जनवरी के महीने को छोड़कर वर्ष के किसी भी समय बुवाई की जा सकती है।

बुवाई की विधि – शिशु मक्का की बुवाई के लिए 45 x 20 सेमी के अन्तराल पर 2 पौधे प्रति हिल होना चाहिए। इस प्रकार पौधों की संख्या का घनत्व 175000 प्रति हेक्टेयर होना चाहिए। मेंडों पर बुवाई करने पर मेंड से मेंड एवं पौधे से पौधे की दूरी 60 x 25 सेमी रखनी चाहिए।

बीज दर – संकर किस्मों का परीक्षण भार के अनुसार 25–30 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग – अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 8–10 टन प्रति हैक्टर गोबर की सड़ी हुई खाद तथा 150 : 60 : 60: 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा जिंक का प्रयोग करना चाहिए। फास्फोरस, पोटाश और जिंक की पूरी मात्रा एवं 1/3 भाग नाइट्रोजन बुवाई के समय, 1/3 भाग बुवाई के 25 दिन के बाद तथा शेष 1/3 भाग नाइट्रोजन बुवाई के 40–45 दिन के बाद प्रयोग करना चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण – पहली निराई–गुडाई बुवाई के 15–20 दिन बाद तथा दूसरी बुवाई के 30–35 दिन बाद करना चाहिए। एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्लू0पी0 1.5 किग्रा प्रति हैक्टर को 500–600 लीटर पानी में घोलकर मक्का के अंकुरण से पहले खेत में छिड़काव करने से खरपतवार नहीं उगते और मक्का की फसल की बढ़वार तेजी से होती है।

सिंचाई – मौसम एवं फसल के अनुसार 2–3 सिंचाई की जरूरत होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद, दूसरी फसल की घुटने तक ऊँचाई होने पर तथा तीसरी फूल (नरमंजरी) आने से पूर्व करनी चाहिए।

नरमंजरी की तोड़ाई – जैसे ही पौधे में नरमंजरी निकलना प्रारम्भ हो उसे उसके आधार से तोड़कर अलग कर देने से शिशु भुट्टे की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा भुट्टे भी अधिक मात्रा में निकलते है।

भुट्टों की तुड़ाई – भुट्टों में सिल्क निकलने के 24 घन्टे के अन्दर शिशु भुट्टे तोड़ लेने चाहिए। देरी से तुड़ाई करने पर गुणवत्ता में कमी आती है। 15 दिन के अन्दर 2–3 तुड़ाई की जा सकती है।

उपज – अच्छी तरह से खेती करने से शिशु मक्का की 15–20 कुन्तल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त 200–250 कुन्तल प्रति हैक्टर हरा चारा भी प्राप्त हो जाता है।

शिशु भुट्टों का भण्डारण एवं संवहन – तुड़ाई के तुरन्त बाद ग्रेडिंग करके उनके आकार के आधार पर करने के लिए भुट्टों को ढ़कने वाली पत्तियों को हटाकर कर लेनी चाहिए तथा प्लास्टिक की टोकरी, थैले या पॉलीथीन बैग में उन्हें बन्द करके विपणन हेतु भेज देना चाहिए। बर्फ के टुकड़ों के बीच रखकर उन्हें 5 दिन तक संरक्षित रखा जा सकता है।

अन्तः फसल – खरीफ में सब्जी एवं चारा हेतु लोबिया, उर्द, मूंग तथा रबी में शिशु मक्का के साथ आलू, मटर, राजमा, मैथी, धनिया, गोभी, शलजम, मूली, गाजर इत्यादि अन्तः फसल के रूप में लिया जा सकता है।

आर्थिक लाभ – शिशु मक्का की एक हैक्टर फसल से 45000–55000 रू0 तक शुद्ध आय हो सकती है और वर्ष में 3–4 फसलें उगायी जा सकती हैं। इस तरह कम समय में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

तोरिया (लाही) की वैज्ञानिक खेती

जे.पी. सिंह एवं [1]सुबोध कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र नीमच, मध्य प्रदेश

[1]पूर्व उप परियोजना निदेशक, आत्मा, शामली, उ.प्र.

तोरिया या लाही अन्तरवर्ती फसल के रूप में खरीफ एवं रबी के मध्य में बोई जाती है। इसकी खेती करके कम समय में अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। उन्नत विधि से खेती करके अधिक उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। तोरिया का तेल मुख्य रूप से ग्रीस बनाने के काम में आता है।

भूमि – फसल की अच्छी पैदावार के लिए दोमट भूमि उपयुक्त रहती है।

खेत की तैयारी – खेत की पहली जुताई मिट्टी पलट हल से तथा दो–तीन जुताई देशी हल, कल्टीवेटर या हैरो से करके बाद में पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा बना देना चाहिए।

बीज दर – तोरिया या लाही का बीज 4 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीज शोधन – बीज जनित रोगों से सुरक्षा के लिए 2.5 ग्राम थीरम या 3.0 ग्राम मैंकोजेब प्रति किग्रा की दर से बीज को उपचारित करके बोयें।

बुवाई का समय – गेहूँ की अच्छी फसल का उत्पादन लेने के लिए तोरिया की बुवाई सितम्बर के पहले पखवाड़े में कर देनी चाहिए। भवानी प्रजाति की बुवाई सितम्बर के दूसरे पखवाड़े में करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग – गन्धक की पूर्ति के लिए 200 किग्रा जिप्सम प्रति हेक्टेयर का उपयोग करना चाहिए तथा 40 कुन्तल प्रति हैक्टर की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए।

असिंचित दशाओं में 50:30:30 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से नाइट्रोजन फास्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में 80–100 किग्रा नाइट्रोजन, 50 किग्रा फास्फोरस तथा 50 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टर देना चाहिए। फास्फोरस का प्रयोग सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में करना चाहिए, क्योंकि इसके प्रयोग से 12 प्रतिशत गन्धक की पूर्ति हो जाती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा पहली सिंचाई (बुवाई के 25–30 दिन बाद) टाप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिए।

बुवाई की विधि – बुवाई देशी हल से करनी चाहिए। बुवाई 30 सेमी की दूरी पर 3 से 4 सेमी की गहराई पर कतारों में करके बाद में पाटा लगाकर बीज को ढ़क देना चाहिए।

निराई–गुडाई व विरलीकरण – बुवाई के 15 दिन बाद घने पौधों को निकालकर पौधों की आपसी दूरी 10–15 सेमी कर देनी चाहिए तथा खरपतवार नष्ट करने के लिए एक निकाई–गुडाई कर देनी चाहिए। खरपतवार नियन्त्रण के लिए पैन्डीमेथलीन 30 ई0सी0 का 3.3 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद अंकुरण से पूर्व छिड़काव करना चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकास – तोरिया नमी की कमी के प्रति, फूल निकलने से पूर्व की अवस्था विशेष संवेदनशील होती है। अतः अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए इस अवस्था पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसल में जल निकास का भी उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

फसल सुरक्षा

नियन्त्रण के उपाय

1 आरा मक्खी एवं बालदार सूंडी के नियन्त्रण के लिए मैलाथियान 5 प्रतिशत डब्लू0पी0 की 20–25 किग्रा प्रति हैक्टर बुरकाव अथवा मैलाथियान 50 प्रतिशत

अ प्रमुख कीट

क्र0सं0	कीट का नाम	फसल की अवस्था	आर्थिक क्षति स्तर
1	आरा मक्खी	वानस्पतिक अवस्था	एक सूंडी प्रति पौधा
2	पत्ती सुरंगक कीट	वानस्पतिक अवस्था	2–5 सूंडी प्रति पौधा
3	बालदार सूंडी	वानस्पतिक अवस्था	10–15 प्रतिशत ग्रसित पत्तियाँ
4	माहू	वानस्पतिक अवस्था से फूल व फली आने तक	30 प्रतिशत ग्रसित पत्तियाँ।

ई0सी0 को 1.50 लीटर या क्यूनालफास 25 प्रतिशत ई0सी0 की 1.25 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 600–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

2 माहू, पत्ती सुरंग कीट के नियन्त्रण के लिए डाइमेथेएट 30 प्रतिशत ई0सी0 या क्लोरोपाइरीफास 20 प्रतिशत ई0सी0 की 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 600–750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। नीम का तेल 0.15 प्रतिशत ई0सी0 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से भी प्रयोग किया जा सकता है।

ब प्रमुख रोग – तोरिया की फसल में मुख्य रोग अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा, सफेद गेरूई तथा तुलासिता रोग हैं।

1 **झुलसा रोग** – इस रोग में पत्तियों तथा फलियों पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं जो गोल छल्ले के रूप में पत्तियों पर स्पष्ट दिखाई देते हैं। तीव्र प्रकोप की दशा में धब्बे आपस में मिल जाते हैं, जिससे पूरी पत्ती झुलस जाती है।

2 **सफेद गेरूई**– इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद फफोले बनते हैं, जिससे पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती हैं। फूल आने की अवस्था में पुष्पक्रम विकृत हो जाता है, जिससे कोई भी फली नहीं बनती है।

3 **तुलासिता रोग** – इस रोग में पुरानी पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे–छोटे धब्बे तथा पत्तियों की निचली सतह पर इन धब्बे के नीचे सफेद रोयेंदार फफूंदी उग जाती है। धीरे–धीरे पूरी पत्ती पीली होकर सूख जाती हैं।

नियन्त्रण के उपाय

(1) बीज उपचार

1 सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग के नियन्त्रण के लिए मैटालैक्सिल 35 प्रतिशत डब्लू0एस0 की 2.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करनी चाहिए।

2 अल्टरनेरिया पत्ती तथा धब्बा रोग के नियन्त्रण के लिए थीरम डब्लू0पी0 की 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीज शोधन कर बुवाई करनी चाहिए।

(2) पर्णीय उपचार – अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा, सफेद गेरूई एवं तुलसिता रोग के नियन्त्रण के लिए मैंकोजेब 75 डब्लू0पी0 की 2.0 किग्रा अथवा जिनेब 75 प्रतिशत डब्लू0पी0 की 2.0 किग्रा या कापर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्लू0पी0 की 3.0 किग्रा मात्रा प्रति हैक्टर लगभग 600–750 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई एवं मंडाई – जब पौधों पर फलियाँ 75 प्रतिशत सुनहरे रंग की हो जायें तो फसल काटकर सुखा लेना चाहिए, उसके बाद मंडाई करके बीज अलग कर लेने चाहिए। देरी से कटाई करने पर बीजों के झड़ने की सम्भावना रहती है।

उपज – उन्नत तरीके से खेती करने पर तोरिया की 12–15 कुन्तल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त हो जाती है।

भण्डारण – दानों में नमी की मात्रा 7–10 प्रतिशत भण्डारण के समय होनी चाहिए। इस नमी पर दो वर्ष तक भी बीज व तेल के गुणों में कमी नहीं आ पाती और न ही भण्डार में किसी प्रकार के रोग या कीटों का आक्रमण हो पाता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए गेहूँ की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताएँ

चंद्र नाथ मिश्र, अमित शर्मा, सतीश कुमार, शारिक अली, ज्ञानेंद्र सिंह एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

विश्व में गेहूँ एक प्रमुख फसल है, भारत में गेहूँकी खेती लगभग 30 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में होती है। वर्ष 2018–19 के दौरान गेहूँ का रिकॉर्ड उत्पादन 102.19 मिलियन टन हुआ है और इसकी औसत उत्पादकता 35.07 क्विंटल प्रति हैक्टर है। धान के बाद,गेहूँ भारत का सबसे महत्वपूर्ण खाद्यान्न है और देश के उत्तरी और उत्तर–पश्चिमी भागों में भारतीयों का मुख्य भोजन चपाती है। गेहूं प्रोटीन, विटामिन और कार्बोहाइड्रेट से भरपूर होता है और संतुलित भोजन प्रदान करता है। रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बाद भारत दुनिया में गेहूँ का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक है। किसान अपने क्षेत्र, जलवायु एवं आवश्यकता के अनुसार गेहूँ की उन्नत किस्मों का चुनाव कर सकते हैं।

भारतवर्ष में गेहूँ की खेती को कृषि जलवायु परिस्थितियों के आधार पर व्यापक रूप से पांच क्षेत्रों में बांटा गया है।

1. उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, जम्मू, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड के मैदानी क्षेत्र)

2. उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, असम और ओडिशा)

3. मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, दक्षिण–पूर्व राजस्थान और उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र)

4. प्रायद्वीपीय क्षेत्र (दक्षिणी राज्य महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु)

5. उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र (कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल और सिक्किम के पहाड़ी क्षेत्र)

भारत की विभिन्न उत्पादन दशाओं एवं क्षेत्रों के अनुसार गेहूँ की नवीनतम किस्में विकसित की गयी हैं। उनमें से कुछ प्रजातियों की विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित है।

1. उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र

i) एच डी 3226 (पूसा यशस्वी)

नवीनतम गेहूं किस्म, एच डी 3226 (पूसा यशस्वी) वर्ष 2019 में विमोचित की गयी है। जिसकी औसत उपज 57.50 क्विंटलध्हेक्टेयर एवं उत्पादन क्षमता 79.60 क्विंटलध्हेक्टेयर है। इस किस्म के दानों में 12.80ः प्रोटीन भाग पाया गया है तथा इस किस्म में पीले रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधकता पायी गयी है।

ii) एच डी 3086 (पूसा गौतमी)

गेहूं किस्म, एच डी 3086 (पूसा गौतमी) समय पर बुवाई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। एच डी 3086 की समय पर बोई गई सिंचित परिस्थितियों में 71.0 क्विंटल/हैक्टर की उपज क्षमता के साथ 54.6 क्विंटल/हैक्टर की औसत उपज है । यह पीले रतुआ और भूरे रतुआ के लिए प्रतिरोधी है। इसमें प्रोटीन (12.5ः), श्रेष्ठ ग्लू –1 स्कोर (10ध्10) के साथ यह बेहतर उत्पाद गुणवत्ता वाली किस्म है।

iii) डब्ल्यू बी 2

डब्ल्यूबी 2 की औसत ऊँचाई 100 से.मी. और औसत उपज 51.6 क्विंटल/हैक्टर है एवं उत्पादन क्षमता 58.9 क्विंटल/हैक्टर है। यह किस्म सिंचित, समय पर बुआई परिस्थितियों में उपज की श्रेष्ठता दर्शाती है। यह प्रजाति प्रचलित पीला रतुआ के लिए प्रतिरोधी और भूरे रतुआ के लिए भी प्रतिरोधी है। इसमें भूरा रतुआ के लिए उपलब्ध जीन संरचना रोग प्रतिरोध प्रदान करता है और इसे विभिन्न कृषि परिस्थितियों में भी प्रतिरोधी बनाता है। इसमें उच्च प्रोटीन तत्व (12.4%), उच्च जिंक (42.0 पी.पी.एम) और आयरन (40.0 पी.पी.एम) के साथ युग्मित डब्ल्यूबी 2 किस्म उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के किसानों के लिए पोषण पूर्ण प्रजाति के रूप में, उपयुक्त विकल्प उपलब्ध है।

iv) एचडी 3237

गेहूँ की किस्म एचडी 3237 समय पर बुआई, प्रतिबंधित सिंचाई स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की

ऊंचाई 103 सेमी और औसत उपज 48.4 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 63.1 क्विंटल/हैक्टर है। अच्छी चपाती गुणवत्ता स्कोर (7.98), पीले और भूरे रतुआ की प्रतिरोधक क्षमता के साथ, शून्य सिंचाई अवस्था में उपज में न्यूनतम कमी पायी गयी।

v) एच आई 1620

गेहूँ की किस्म एच आई 1620 समय पर बुआई, प्रतिबंधित सिंचाई स्थितियों के लिए उपयुक्त है। औसत उपज 49.1 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 61.8 क्विंटल/हैक्टर है। अच्छी चपाती गुणवत्ता, पीले और भूरे रतुआ की प्रतिरोधक क्षमता के साथ, शून्य सिंचाई अवस्था में उपज में न्यूनतम कमी पायी गयी।

v) डी बी डब्ल्यू –173

गेहूं की किस्म डी बी डब्ल्यू –173 देर से बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊंचाई 90 सेमी और औसत उपज 47.20 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 57.0 क्विंटल/हैक्टर है। यह उच्च प्रोटीन युक्त है और ऊष्मा सहिष्णु स्कोर (0.98) के कारण जलवायु परिवर्तन वाली परिस्तिथियों के लिए उपयुक्त होने के साथ–साथ पीले और भूरे रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधी है।

vi) पी बी डब्ल्यू –752

गेहूं की नवीनतम, किस्म पी बी डब्ल्यू–752 देर से बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की ऊँचाई 90 सेमी, औसत उपज 49.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं उत्पादन क्षमता 65.4 क्विंटल/हैक्टर है। प्रोटीन प्रतिशत (12.4%), पीले और भूरे रंग के रतुआ की उच्च स्तर प्रतिरोधक क्षमता एवं बुवाई के समय में बदलाव के लिए यह बेहतर अनुकूलन क्षमता रखती है, प्रयोगों से पता चला है कि समय पूर्व बुआई वाली अवस्था में अधिक उपज (35. 05%) और देरी से बुआई में उपज गिरावट (–21.26%) है।

vii) पी बी डब्ल्यू 757

गेहूं की किस्म पी बी डब्लू 757 बहुत देर से बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की औसत ऊंचाई 82 सेमी और उपज 36.7 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 44.9 क्विंटल/हैक्टर है। चपाती गुणवत्ता स्कोर (8.07), उच्च जिंक तत्व (42.3 पी.पी.एम), पीले और भूरे रतुआ रोगों की उच्च प्रतिरोधक क्षमता है।

2. उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र

i) डी बी डब्ल्यू 187 (करन वंदना)

गेहूँ की किस्म डी बी डब्ल्यू 187 समय पर बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊंचाई 100 सेमी और औसतन उपज 48.8 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 64.7 क्विंटल/हैक्टर है। इसमें 7.7/10 स्कोर के साथ बेहतर चपाती गुणवत्ता और उच्च आयरन तत्व (43.1 पीपीएम) के साथ–साथ पीले और भूरे रतुआ के प्रतिरोगात्मक क्षमता सम्मिलित है।

ii) एच आई 1612 (पूसा गेहूँ 1612)

गेहूं की किस्म पूसा गेहूं 1612 (एच आई 1612) समय पर बुआई एवं प्रतिबंधित सिंचाई स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊंचाई 93 सेमी और औसत उपज 37.60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं उत्पादन क्षमता 50.5 क्विंटलध्हेक्टेयर है। शुन्य सिंचाई की अपेछा एक सिंचाई पर इसकी उपज वृद्धि (32.4%), और दो सिंचाई पर अधिक उपज (52.4%) होती है, पीले और भूरे रतुआ की उच्च रोग प्रतिरोधक क्षमता है।

iii) के–1317

गेहूँ की किस्म के–1317 समय पर बुआई, वर्षा सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊंचाई 90–94 सेमी और औसत उपज 30.10 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 38.6 क्विंटल/हैक्टर है। भूरे रतुआ और लीफ ब्लाइट की उच्च स्तर प्रतिरोधक क्षमता है तथा अच्छी चपाती गुणवत्ता स्कोर (8.05) है।

iv) एच डी 3171

गेहूँ की किस्म एच डी 3171 समय पर बुआई, वर्षा सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊंचाई 93 सेमी और औसत उपज 28.01 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं उत्पादन क्षमता 46.3 क्विंटल/हैक्टर है। इस किस्म में पीले, भूरे और काले रतुआ रोग की उच्च स्तर प्रतिरोधक क्षमता के साथ उच्च आयरन तत्व (47.1 पीपीएम) हैं।

3. मध्य क्षेत्र

i) एच आई 8759 (पूजा तेजस)

कठिया गेहूँ की किस्म एच आई 8759 (पूजा तेजस) को मध्य क्षेत्र के समय पर बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए विकसित किया गया है। एच आई 8759 समय पर बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। यह एक उच्च उपज वाली ड्यूरम गेहूँ किस्म है, जिसकी औसत उपज झ5.7 टन/हैक्टर है और क्षमता 7.6 टन/हैक्टर है। यह उच्च प्रोटीन (12%), बीटा कैरोटीन (5.7 पीपीएम) के साथ

चपाती, पास्ता और अन्य पारंपरिक खाद्य उत्पादों को बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है। इसमें आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा (42.1 पीपीएम) और जस्ता (42.8 पीपीएम) उपलब्ध है जो इसको कठिया गेहूँ कि उच्च उपज के साथ साथ सूक्ष्म पोषण तत्वों के लिए उपयुक्त बनाते हैं।

ii) एच डी 4728 (पूसा मालवी)

कठिया गेहूँ की किस्म एचडी 4728 (पूसा मालवी) मध्य क्षेत्र के समय पर बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की उपज क्षमता 6.8 टन/हैक्टर एवं 5.42 टन/हैक्टर औसत उपज देती है। यह एक मध्यम ऊंचाई किस्म (90 सेमी) है जिसमें भूरा एवं काला रतुआ रतुआ रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता है। इसमें चमकदार मोटे दानों (48.3 ग्राम/1000– दानों का वजन) और सूजी–आधारित उत्पादों के लिए बेहतर गुणवत्ता है।

4. प्रायद्वीपीय क्षेत्र

i) एच आई 1605 (पूसा उजाला)

गेहूँ की किस्म एच आई 1605 (पूसा उजाला) को प्रायद्वीपीय क्षेत्र के समय पर बुआई, सीमित सिंचाई स्थितियों के लिए विकसित किया गया है। यह किस्म काले और भूरे रतुआ रोगों के प्रतिरोधक क्षमता के लिए प्रसिद्ध है और इसमें फ्लैग स्मट, करनाल बंट, लीफ ब्लाइट और फुट रोट रोगों के प्रति भी अच्छा स्तर है। इसमें उत्कृष्ट चपाती की गुणवत्ता और उच्च मात्रा में सूक्ष्म पोषक (लोहा 43 पीपीएम) और जस्ता 35 पीपीएम) पाए गए हैं, जिसकी औसत उपज 30 क्विंटल/हैक्टर है।

ii) डी बी डब्ल्यू 168

गेहूँ की किस्म डी बी डब्लू 168, प्रायद्वीपीय क्षेत्र के समय पर बुआई, सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊंचाई 84 सेमी और उपज क्षमता 47.46 क्विंटल प्रति हैक्टर है। चपाती गुणवत्ता स्कोर (8.15) के साथ–साथ यह बिस्किट के लिए नरम अनाज (स्कोर 36) वाली किस्म है जिसमें भूरे और काले रतुआ रोगों के प्रति रोधक क्षमता पायी गयी है। ।

5. उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र

I) एचएस 562

गेहूँ की किस्म एचएस 562 को उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र के समय पर बुआई, वर्षा आधारित और सिंचित स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इसमें अच्छी चपाती स्कोर (7.6) के गुणों एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ साथ रतुआ प्रतिरोधक जीन संयोजन है। यह किस्म वर्षा आधारित अवस्थाओं में औसतन उपज 36.0 क्विंटल/हैक्टर और सिंचित परिस्थितियों में 52.0 क्विंटल/हैक्टर उत्पादन देती है।

बैंगन का संकर बीज का उत्पादन

लीला भट्ट, एम.के. नौटियाल[1] एवं अपर्णा[1]

सब्जी विज्ञान विभाग, [1]आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग,
गोविन्द बल्लभ पन्त एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

बैंगन (सोलोनम मेलोन्जीना) सोलेनसी कुल का पौधा है। जीनस सोलेनम के सदस्यों, जैसे बैंगन, आलू व टमाटर को मुख्यतः सब्जी के लिये उगाया जाता है। बैंगन वानस्पतिक रूप से बेरी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। बैंगन की उत्पत्ति भारत से हुयी है। यह आमतौर पर विश्व के उष्ण कटिबंधीय, उप–उष्णकटिबंधीय और गर्म समशीतोषण क्षेत्रों में एक सब्जी के रूप में उगाया जाता है। यह भारत, चीन और जापान में एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है। सोलोनम मेलोन्जीना के फल भिन्न–भिन्न आकारों व रंगों जैसे गोल, लंबे, सफेद, पीले एवं हरे रंग से लेकर गहरे बैंगनी, काले रंग में पाये जाते है। यदि उन्नतशील प्रजाति अथवा संकर बीज का चयन करें, समय पर बुवाई/रोपाई करें, पोशण तथा नाशीजीव प्रबन्धन पर ध्यान दें तो सब्जी की औसत उत्पादकता को दोगुना तक बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान समय में संकर प्रजातियों के बीजों का उत्पादन प्राइवेट बीज कम्पनियों द्वारा बड़ी मात्रा में किया जा रहा है।

बैंगन का संकर बीज का उत्पादनः बैंगन के संकर बीज उत्पादन के लिए निम्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है–

1. जलवायु एवं भूमि का चुनावः–

बैंगन के बीज उत्पादन में जलवायु एक महत्वपूर्ण कारक है, जो बैंगन के बीज उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देता है। बैंगन के सफल बीज उत्पादन के लिये गर्म मौसम की आवश्यकता होती है। यह टमाटर और मिर्च की तुलना में

कम तापमान के लिये अधिक संवेदनशील हैं इसके बीज उत्पादन के लिए आदर्श दिन का तापमान 25–32 डिग्री सेल्सियस और रात का तापमान 21–27 डिग्री सेल्सियस आवश्यक है। बैंगन के बीज उत्पादन के लिये सूखी जलवायु जिसमें कम हवा नमी हो उसको उपयुक्त माना गया है, शुष्क जलवायु एवं कम नमी वाला मौसम फल सड़न और अन्य बीमारियों के प्रभाव को कम कर देते हैं। बैंगन के बीज उत्पादन के लिए ऐसी भूमि का चुनाव करें जो कि रोग रहित तथा जिसमें गतवर्ष बैंगन की फसल न ली गयी हो। बैंगन को विभिन्न प्रकार की मिट्टी में आसानी से उगाया जा सकता है लेकिन पी.एच. की दृष्टि से 5.5 से 6.5 पी.एच., दोमट भूमि जिसमें जीवांश की पर्याप्त मात्रा हो एवं जल निकास का उचित प्रबंध हो, को अच्छा माना गया है। अधिक क्षारीय भूमि भी बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं पायी गयी है।

2. नर्सरी हेतु संकर प्रजाति के लिए नर व मादा जनकों की उपलब्धताः–

संकर प्रजातियां, अर्का नवनीत, अर्का आनंद, अर्का नीलकंठ, पूसा हाइब्रिड–9, पूसा हाइब्रिड–6, पूसा हाइब्रिड–5।

बैंगन में मादा व नर जनक की नर्सरी खेत में अलग–अलग क्यारियों में डालते हैं, नर्सरी में पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए वर्मी कम्पोस्ट, सड़े हुए गोबर की खाद का उपयोग करते हैं। उच्च गुणवत्ता के बीज उत्पादन के लिए बैंगन एवं इस कुल के सदस्य कीटों एवं रोगों के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। अतः गैर–सोलेनेसियस फसलों के साथ बीज फसलों का रोटेशन ध्यान में रखना चाहिये ताकि रोगों व कीटों के संक्रमण को कम किया जा सके। नर्सरी डालते समय नर व मादा जनकों की पुष्पवस्था को ध्यान में रखते है।

3. उर्वरक एवं खाद प्रति हैक्टेयरः–

मुख्य बीज प्रक्षेत्र में उर्वरकों को 200–250 क्विंटल/हैक्टर गोबर की सड़ी खाद, 100–120 किलो नाइट्रोजन, 50–60

किलो फॉस्फोरस तथा पोटाश, पूरी मात्रा में फॉस्फोरस तथा पोटाश तथा आधी मात्रा में नाइट्रोजन रोपाई के पहले तथा अंतिम खेत तैयार होने के बाद दी जाती है और बाकी आधी बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा दो या तीन हिस्सों में रोपाई के 30 से 45 और 60 दिन के बाद टॉप ड्रैसिंग के रूप में दी जाती है।

4. सिंचाई –

फसल की आवश्यकता के अनुसार फसल की सिंचाई करनी चाहिए। समय पर सिंचाई फसल की अच्छी वृद्धि फूल एवं फल विकास में अत्यन्त आवश्यक है। मैदानी क्षेत्रों में गर्म मौसम के दौरान हर तीसरे, चौथे दिन सिंचाई करनी चाहिए तथा ठंडे मौसम में 7 से 12 दिन बाद सिंचाई करनी चाहिए।

5. खरपतवार नियंत्रणः–

बैंगन का सबसे गंभीर हानिकारक खरपतवार ओरोबंकी है। खरपतवार को नियंत्रण करने के लिये फ्लूक्वोरेलिन (1–1.5 कि.ग्रा.– प्रति हैक्टर) जमीन में मिला लें जबकि ऑक्सीडाइजन (0.5–1.0 कि.ग्रा.) एवं एलाक्लोर (1–1.5 कि.ग्रा.–प्रति हैक्टर) रोपाई से पूर्व जमीन में भलीभॉति मृदा में अच्छी तरह मिश्रित कर लें।

6.पृथक्करण दूरी– बैंगन के संकर बीज उत्पादन हेतु न्यूनतम पृथक्करण दूरी अन्य बैंगन फसल से 200 मी0 है।

बैंगन के संकर बीज उत्पादन के लिए नर व मादा जनकों की क्रमशः 50 ग्रा0 व 200 ग्रा0 पैतृक बीज की आवश्यकता होती है। नर जनक ब्लाक में लगाया जाता है तथा मादा जनक को पंक्तियों में लगाया जाना विपुंशीकरण तथा परागण के लिए सुविधा जनक रहता है। पौधे से पौधे की दूरी लगभग 15–20 सेंमी0 तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 सेंमी0 रखी जाती है जिससे सुगमतापूर्वक पंक्तियों के बीच में परागण हेतु जाया जा सके।

7. प्रक्षेत्र निरीक्षणः–

बीज प्रमाणीकरण अधिकारियों द्वारा कम से कम चार बार निरीक्षण करना चाहिये। पहली बार निरीक्षण वानस्पतिक अवस्था में किया जाना चाहिए जिसमें पृथक्करण दूरी अन्य प्रजातियों के पौधे एवं अवांछित पौधों का निश्कासन किया जाता है। दूसरा निरीक्षण पुष्प खिलने की स्थिति पर और तीसरा निरीक्षण फलों के आकार एवं फलों के रंग के आधार पर किया जाता है और अवांछित पौधों को खेत से हटाया जाता है। परिपक्वता अवस्था के निरीक्षण से उपज का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

8. अवांछनीय पौधों का निश्कासनः–

नर व मादा जनकों की रोपाई के समय भिन्न आकारिकी वाले पौधों को बीज प्रक्षेत्र से बाहर निकाल देते हैं। पुष्पवस्था में फूल के रंग व आकार के आधार पर तथा परिपक्वास्था में फलों के रंग व आकार के आधार पर बीज प्रक्षेत्र से बाहर निकालते हैं, ताकि संदूशण की समस्या न हो।

पराग संग्रह व परागणः–

आमतौर पर बैंगन में संकर बीज उत्पादन के लिये पुष्पें को खिलने के दो दिन बाद परागित किया जाता है। नर जनक से अर्द्धखिले पुष्पें को सांयकाल को एकत्र कर लेते हैं। मादा जनक के पौधों से नर भाग को हटा देते हैं, यह प्रक्रिया विपुंशीकरण कहलाती है। नर भाग को हटाने के बाद बटर पेपर बैग से पुष्प को ढक देते हैं जिससे वह अन्य से संदूशित न हो जाए। जब पुष्प का दलपुंज चमकदार नीले रंग का हो जाये तो यह दर्शाता है कि परागण के लिये तैयार हो चुका है। संग्रहित पराग कंटेनर में पराग जपबा को डुबाया जाता है। इस पराग स्टिक की सहायता से मादा भाग यानि पुष्प के मादा जननांग पर स्पर्श कराया जाता है। साधारणतया परागण तीन से पांच सप्ताह के भीतर तीन बार किया जाता है। प्रजनन संबंधी कार्यों के बाद मादा पौधों पर स्वपरागित फलों को हटा दिया जाता है अन्यथा इसका कुप्रभाव संकर बीज उत्पादन पर पड़ने की संभावना बनी रहती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि नर जनक व मादा जनकों में पुष्पन चलता रहता है। स्वपरागित पुष्पों को तोड़कर बाहर निकाल लेते हैं तथा मादा जनक में परागित पुष्प की पहचान को बनाये रखने के लिए एक या दो बाहय दल पुंज पुश्प से अलग कर लेते हैं।

पौध–संरक्षणः–

फसल की सुरक्षा समय पर अत्यन्त आवश्यक है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में बैंगन की फसल पर कीटों द्वारा भारी मात्रा में नुकसान पहुॅचता है। इन हानिकारक कीटों में एपिला चना बीटल शूट एण्ड फूट बोरर, जेसिड एवं एफिड्स आदि इसके अंतर्गत आते हैं। आमतौर पर इन कीटों को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक दवाओं का छिड़काव किया जाता है। मृदा जनित रोगों की रोकथाम हेतु बीजों को पहले बीज–उपचार एवं फसल चक्र एवं मृदा को फार्मल्डीहाइड द्वारा निर्जीवीकरण एवं सौर, ताप द्वारा मृदा को निर्जीवकरण किया जाता है। रासायनिक दवाओं का उपयोग प्रायः चूर्णिल आसिता, फल सड़न, सरकोस्पोरा लीफ स्पोट को नियंत्रित करने के लिये किया जाता है।

8. बैंगन के फलों की तुडाईः–

परागण के लगभग एक माह बाद जब बैंगन के फल पीले हो जाए, तब उनकी तुड़ाई कर लेनी चाहिए। परागित बैंगन के फलों को तोड़ने से पहले यदि स्वपरागित बैंगन के फल पहले तुड़ाई में छूट गये हों, को तोड़कर बीज प्रक्षेत्र से बाहर निकाल लेते हैं, तत्पश्चात् ही परागित फलों को पहचान के आधार पर छाँट कर तुड़ाई कर लेते हैं।

बैंगन के फलों से बीजों को निकालनाः बीज निष्कर्षण और सुखाने वाले फलों को बीज से चार दिन तक सुरक्षित रखा जाता है। बैंगन के बीज निष्कर्षण हेतु किण्वन विधि एवं यांत्रिक विधि द्वारा बीज प्राप्त किये जाते है। किण्वन विधि में फलों को कुचलकर गूदे सहित बर्तन में पानी भरकर, उसमें किण्वन होने तक रख दिया जाता है। पानी में गूदे को हिलाया जाता है, ताकि बीज अलग हो जाए और उन पर बुरा प्रभाव न पड़े। इस कार्य को शीघ्र अतिशीघ्र पूरा करना चाहिए, अन्यथा बीजों की गुणवत्ता पर कुप्रभाव पड़ने की सम्भावना बनी रहती है।

9.यांत्रिक विधि द्वारा बीजों को फल से अलग करनाः–

इस विधि से गूदे को हिलाने व मसलने का कार्य एक चुम्बकीय मशीन द्वारा किया जाता है। इसमें यह कार्य शीघ्र होता है। बीज सुखाने हेतु बीजों को सूर्य के प्रकाश या एक बिजली के ड्रायर में फैलाकर सुखाया जाता है। दिन में कम से कम दो या तीन बार हाथों से बीजों को एक पतली तह के रूप में समतल भूमि पर फैलाते है ताकि वह जल्दी सूख जाये।

बीज उपजः–

बीज की उपज, प्रजाति, मृदा प्रकार, जलवायु तथा परागण विधि पर निर्भर करती है। यदि हम वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करें तथा उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर बीज उत्पादन करें, तो बैंगन की संकर बीज उपज लगभग 1. 5–2.0 क्विंटल/हैक्टर के बीच आती है। बैंगन के संकर बीज उत्पादन में नर बांझ लाइन का उपयोग करने से विपुंशीकरण की प्रक्रिया से बचा जा सकता है जोकि आर्थिक रूप से लाभकारी है।

बीज भण्डारणः–

बीजों को बाजार की मॉग के अनुसार वांछित मात्राओं को बीज संसाधन के उपरान्त उचित नमी पर आवश्यकतानुसार पॉलीथीन के पैकटों में भरा जाता है। पैकेट में निम्न सूचनाएँ लिखकर रख दी जाती है।

यदि पैकिंग के लिए कागज के पैकटों का प्रयोग किया जा रहा है तो उनके उपर सभी आवश्यक बातें लिखी होनी चाहिए। बीजों को नमी रहित ठंडे स्थान पर भण्डारण के लिए रखा जाता है ताकि बीज की गुणवत्ता ठीक बनी रहे।

बीज मानकः–

प्रमाणित बीज का न्यूनतम भौतिक गुणता का प्रतिशत कम से कम 70% अंकुरण क्षमता और सामान्य 8ः नमी की मात्रा के साथ होनी चाहिए। उपस्थिति इर्नट मैटर 20% से अधिक होनी चाहिए।

ब्रायलर फार्म का प्रबन्धन

डी.के. सिंह

सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

कुक्कुट पालन एक उद्योग के रूप में स्थापित हो चुका है तथा पिछले कुछ दशकों में ग्रामीण क्षेत्रों में भी यह व्यवसाय के रूप में अपनाया जाने लगा है। ग्रामीण विकास में कुक्कुट पालन की दो प्रमुख भूमिकायें हैं। कुक्कुट पालन प्रथमतः छोटे व सीमांत किसानों, भूमिहीन, मजदूर, बेरोजगार शिक्षित युवकों आदि के लिये एक सम्माननीय व लाभप्रद व्यवसाय प्रदान करता है तथा दूसरा यह कि कुक्कुट एक पौश्टिक आहार भी प्रदान करता हैं।

ब्रायलर पालन के लाभ

1. कम भूमि एवं पूँजी की आवश्यकता।
2. उत्तम नस्ल के चूजों की आसान उपलब्धतता।
3. छोटा जीवनकाल होने के कारण धन की शीघ्र वापसी।
4. स्थानीय एवं स्थायी बाजार की उपलब्धता।
5. दाने को मांस में प्रभावी ढ़ंग से परिवर्तित करने की क्षमता।
6. वित्तीय संस्थाओं द्वारा आसान ऋण की उपलब्धता।
7. स्वरोजगार हेतु अन्य पशुधन आधारित उद्यमों की अपेक्षा कम पूंजी की आवश्यकता।

व्यवसायिक ब्रायलर फार्मिंग का मुख्य आधार अच्छी नस्ल के चूजे तथा चूजों का समुचित प्रबन्धन है क्योकि चूजें ही बडें होकर आय का स्रोत बनते हैं। अतः अधिक आय के लिये ब्रायलर चूजों का पालन ध्यानपूर्वक एवं वैज्ञानिक ढंग से ही करना चाहिये। कुक्कुट जीवन के प्रथम 5 या 6 सप्ताह का समय ब्रूडिंग काल कहलाता हैं तथा इस काल में चूजों को जहाँ रखा जाता है उस भवन को ब्रूडर हाउस कहते हैं। ब्रूडर हाउस बनाते समय निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना आवश्यक है–

1. ब्रूडर भवन (हाउस) अलग एवं वयस्क मुर्गियों के शेड से कम से कम 300 फिट दूर होना चाहिये अन्यथा रोग फैलने का भय रहता है।
2. ब्रूडर भवन के बाहर लगभग 100 फिट पर एक चारदीवारी बना देनी चाहिये तथा इस चारदीवारी का दरवाजा बन्द रखना चाहिये।
3. ब्रूडर भवन के अन्दर आगन्तुकों का आवागमन नही होना चाहियें।
4. ब्रूडर भवन के सफाई एवं निःसंक्रमण का पूर्ण ध्यान रखना चाहियें। ब्रूडर भवन खुला एवं हवादार होना चाहियें।
5. ब्रूडर भवन के बाहर छोटे गडढ़े में संक्रमण रोधी पदार्थ भर देना चाहिये ताकि भवन में घुसने से पूर्व पैर धोये जा सकें।
6. ब्रूडिंग प्रक्षेत्र, सूखे व ऊंचे स्थान पर जहां चूहे आदि न पहुंच सकें, बनाना चाहिए। कृषि हेतू जो भूमि अनुपयोगी हो एवं जल निकास सुविधा युक्त हो, उसका प्रयोग किया जा सकता है।
7. शेड के चौडाई की दीवारें उत्तर–दक्षिण तथा लम्बाई की दीवारें पूरब–पश्चिम की ओर होनी चाहिये। शेड की छत के सिरों पर 3–4 फिट छज्जा निकाल देना चाहियें।
8. शेड का फर्ष बाहरी भूमि से कम से कम एक फिट ऊंचा होना चाहियें।

ब्रूडर भवन की तैयारी

चूजों का नया समूह आने से पूर्व ही ब्रूडर भवन के बाहर की चारदीवारी के अन्दर प्रत्येक वस्तु की साफ–सफाई अति आवश्यक हैं।

ब्रूडर भवन तथा उपकरणों की सफाई

चूजों का एक समूह निकलते ही पूरे भवन की सफाई, निःसंक्रमण इत्यादि तुरन्त ही प्रारम्भ कर देना चाहिये ताकि नये समूह के आने से पूर्व भवन एक या दो सप्ताह खाली पडा रहे। निःसंक्रमण एवं धूम्रीकरण से कीटाणु व अन्य रोग फैलाने वाले कारक नश्ट हो जाते हैं तथा भवन खाली रहने से कई परजीवी एवं कीटाणुओं का जीवन भंग हो जाता हैं। अतः रोगो की रोकथाम के लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सफाई निम्न प्रकार होनी चाहिये।

(क) पुराने लिटर का निश्कासनः प्रयोग में लाया पुराना बिछावन (लिटर) पूर्णतः ब्रूडर भवन से हटा देना चाहियें।

(ख) भवन की सफाईः सारा कूड़ा–करकट भवन से दूर ले जाना चाहिये तथा फर्श की खुरचकर सफाई कर देनी चाहिये। पानी की तेज धार से भवन के अन्दर धो दें एवं चूने से पुताई कर दें। निःसंक्रमण के उपरान्त भवन को सूखने के लिए छोड़ दें।

(ग) धूम्रीकरणः भवन को बन्द करके अथवा पर्दो से ढक कर फार्मेलडिहाइड की 3 गुनी सान्द्रता द्वारा धूम्रीकरण करना चाहियें। दाना संग्रहण हेतू बंद बर्तन भी धूम्ररंजित करा दें, तथा ब्रूडर हाउस के बाहर साफ–सफाई एवं घास काटकर सारे क्षेत्र में संक्रमण रोधी पदार्थो का छिडकाव करायें।

ब्रूडर भवन में चूजों का प्रबन्धन

(1) ब्रूडर भवन में प्रति मुर्गी भूमि की आवश्यकता इस बात पर निर्भर करती है कि उस भवन में बड़ी से बड़ी कितनी आयु की मुर्गी/मुर्गा रखा जाना है। इसके अतिरिक्त प्रजनन में प्रयोग होने वाले नर व मादा को अधिक जगह की आवश्यकता होती है। ग्रीष्म ऋतु में शीत काल की अपेक्षा अधिक जगह की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त जगह का आंकलन मुर्गी की नस्ल व प्रकार के अनुरूप होता है।

प्रति मुर्गी आंकलन करते समय उपकरणों जैसे दाना पानी के बर्तन आदि द्वारा घेरे जाने वाला क्षेत्र भी ध्यान में रखना चाहिये।

चूजों में सघनता का कुप्रभाव

चूजों को पर्याप्त जगह मिलनी चाहिये। सघनता के कारण निम्नलिखित कुप्रभाव पडते हैंः–

(1) चूजे दाना कम खाते हैं।

(2) चूजों की वृद्धि दर कम हो जाती है।

(3) दाने को मांस में परिवर्तित करने की क्षमता घट जाती हैं।

(4) मृत्यु दर में वृद्धि होती है।

(5) मांसाहारी एवं हिंसक प्रवृत्ति बढने के कारण चूजे एक दूसरे को काट–काट कर घायल कर देते हैं।

(6) वक्ष में छाले बनने की अधिक सम्भावना रहती है।

(7) पंखो की वृद्धि में ह्रास होता है।

(8) मांस उत्पादकता एवं गुणवत्ता में कमी आती है।

(9) भारी आर्थिक हानि का सामना सुनिश्चित है।

बिछावन प्रबन्धन (लिटर)

विभिन्न प्रकार के लिटर सामग्री जैसे धान की भूसी, लकड़ी का बुरादा, भुरभुरी मिट्टी आदि प्रयोग में लाये जाते हैं। ब्रूडर भवन के फर्श पर लगभग 2 इंच (5 सेमी) मोटा लिटर बिछा देना चाहिये। लिटर की मोटाई मौसम के अनुसार परिवर्तित की जा सकती है। सर्दी के मौसम में अधिक मोटा लिटर बिछाना चाहिये। पुराना व कीटाणुनाशक छिड़का लिटर प्रयोय में ना लायें।

अच्छे लिटर पदार्थ में निम्नलिखित गुण होते है–

(1) सस्ता होना चाहिये।

(2) हल्का होना चाहिये।

(3) शोषण क्षमता अधिक होनी चाहियें

(4) मुलायम व दबने वाला होना चाहिये।

(5) ऊष्मा संचालन क्षमता कम होनी चाहिये।

(6) वातावरण से नमी न लें।

(7) खाद की तरह प्रयोग किया जा सकें।

प्रथम तीन सप्ताह में लिटर हल्का नम होना चाहिये। अत्यधिक शुश्क लिटर पर चूजों का निर्जलीकरण होने का भय रहता है। प्रयोग होते–होते लिटर यदि अधिक गीला हो जाये तो लिटर पपड़ी व अधिक गीला लिटर हटा कर सूखा लिटर मिला देना चाहियें।

अमोनिया वाष्प की रोकथाम

चूजों के मल एवं नमी के कारण ब्रूडर हाउस में नौसादर जैसे गन्ध व वाष्प रहती है। इसका स्तर बढ़ने पर भवन में घुसने से आँखों में जलन का आभास होता है अधिक अमोनिया वाष्प के कारण चूजों का वजन कम हो जाता है।

फास्फोरिक अम्ल (1.91 किलो/वर्गमी.) या सुपर फास्फेट (1.09 किलो/वर्ग मी.) के प्रयोग से अमोनिया वाष्प पर नियंत्रण पाया जा सकता है। चूने का प्रयोग भी अमोनिया की रोकथाम के लिये किया जाता है।

ब्रूडर भवन में थोड़ी आर्द्रता आवश्यक भी है क्योंकि शुष्क वातावरण में चूजे ठीक से नही पनपते तथा पंखो का विकास भी ठीक से नही होता हैं।

प्रकाश व्यवस्था

रंगीन या सफेद बल्ब द्वारा प्रकाश प्रदान कराना चाहिये। खुले भवनों में भी प्रथम 48 घंटों में कृत्रिम प्रकाश देना आवश्यक है। प्रथम दो दिन तीव्र प्रकाश देना लाभकारी सिद्ध होता है। उसके बाद प्रकाश की तीव्रता कम कर देनी चाहियें।

तापमान प्रबन्धन

ब्रूडर का तापमान 85–90 डिग्री फारेनहाइट (30–32° सेन्टीग्रेड) लिटर के 2 इंच उपर तथा कैनोपी के 6 इंच बाहर तक, 1 दिन आयु के चूजों के लिये होना चाहिये। मांस व प्रजनन हेतु व नर चूजों के लिये अधिक ताप की आवश्यकता होती है। जैसे–जैसे चूजे बड़े होते जाएं तापमान 5–7° सेन्टीग्रेड/सप्ताह कम करते जायें। यदि चूजे हॉवर से दूर चले जाये तो इसका अर्थ है तापमान अधिक है और यदि हावर के अन्दर घुसकर गुच्छा सा बनायें तो तापमान कम समझना चाहिये। स्थिति अनुसार तापमान बढाया–घटाया जा सकता है। यदि चूजे हावर के नीचे समान रूप से वितरित हो तो तापमान सही समझना चाहिये। जब तक चूजों के पंख पूरी तरह न निकल जाये, बाहृय ऊश्मा स्रोत न हटायें। सामान्यतः आरम्भ में 1 वाट प्रति चूजा तथा बाद में 1/2 वाट प्रति चूजे के हिसाब से बल्ब लगा कर ऊश्मा प्रदान करें। बिजली न हाने पर अंगीठी या बुखरी जलाकर ऊष्मा प्रदान की जा सकती है।

पानी व्यवस्था

चूजे शीघ्र ही खाना व पीना सीख लेते हैं। चूजों को प्रतिदिन स्वच्छ व ताजा पानी उपलब्ध करायें। पानी के बर्तन रोज साफ करकें एकदम हावर के बाहर लिटर पर ही रखें। चूजों के आने से 4 घण्टा पूर्व ही पानी ब्रूडर भवन में रख दें ताकि पानी का तापमान ब्रूडर भवन के अनुरूप (लगभग 65° सेन्टीग्रेड या अधिक) हो जायें। पानी में चीनी भी मिलाई जा सकती है इससे प्रारम्भिक मृत्यु दर कम होती है। प्रथम 15 घण्टों में 8 प्रतिशत तक चीनी पानी में मिलाकर दी जा सकती है। यदि चूजे दबावग्रस्त दिखाई दें, तो प्रथम 3–4 दिन पानी में विटामिन व इलैक्ट्रोलाइटस घोल कर दें। पानी सदैव दाने से पूर्व दें तथा यदि सब चूजों को पानी नही मिल रहा है, तो पानी के बर्तन व प्रकाश की तीव्रता बढ़ा दें। शुरू में फव्वारेनुमा तथा बाद में नालीनुमा बर्तन प्रयोग में लाये जाते हैं।

दाना प्रबन्धन

चूजों को स्वच्छ व ताजा दाना ही उपलब्ध करायें जो कि उनकी शारीरिक वृद्धि व आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त अवयव प्रदान कर सके। दाना संग्रहण अधिक से अधिक सात दिन तक के लिये होना चाहिये। बड़े व चपटे बर्तनों में दाना रखें ताकि सब चूजों को आसानी से दाना मिल सकें। दाना थोड़ा–थोड़ा व जल्दी–जल्दी लगाना चाहिये। यह भी सुनिश्चित कर लें की दाना सब चूजे खा पा रहे हैं या नहीं। यदि कुछ समस्या है, तो उसका निदान करें। कुछ प्रक्षेत्रों में एवं मौसम में 'वेन्ट पेंस्टिंग' की समस्या हो जाती है। इसके निवारण हेतु टूटी मक्का (छोटे कण) देनी चाहिये। ब्रायलर चूजों के सप्ताहवार मानक शरीर भार, आहार खपत तथा आहार की मांस में परिवर्तन की क्षमता का विवरण चैप्टर संख्या 14 में दर्शाया गया है।

सारे चूजे एक साथ अन्दर व एक साथ बाहर प्रबन्ध (ऑल इन–ऑल आउट)

इस प्रकार के प्रबन्धन में एक ब्रूडर भवन में एक साथ लगभग एक ही आयु के चूजे अन्दर लिये जाते है तथा ब्रूडिंग के पश्चात् उन्हें एक साथ ब्रूडर भवन से निकाल दिया जाता है। उसके बाद नया समूह लेने से पूर्व भवन प्रक्षेत्र की साफ–सफाई व निःसंक्रमण आदि कर लिया जाता है। इस प्रकार का प्रबन्धन रोग नियंत्रण एवं उन्मूलन में काफी प्रभावी होता है किन्तु इससें मजदूरी की लागत अधिक आती है। इस कारण कई मुर्गी फार्मो पर अलग–अलग आयु सीमा के चूजे अलग–अलग पाले जाते हैं।

ब्रूडिंग उपकरण

(क) ताप नियन्त्रणः ब्रूडर भवन में ताप नियन्त्रण हेतु विभिन्न प्रकार के ईंधन या ईंधन स्रोत प्रयोग में लाये जाते है, जैसे द्रवित पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, मीथेन, मिट्टी का तेल, लकड़ी कोयला, बिजली, सौर ऊर्जा आदि।

(ख) हॉवर टाइप ब्रूडरः सर्वाधिक प्रयोग में आने वाले ब्रूडर हॉवर प्रकार के ही होते हैं। बैटरी ब्रूडर का प्रयोग अधिक नही होता है। हावर टाइप ब्रूडर में प्रति इकाई धातु का एक गोल या कोणीय टुकड़ा ऊश्मा को परावर्तित करने के लिये प्रयोग किया जाता है। हावर को एक रस्सी या तार के सहारे छत से लटका दिया जाता है जिसे आवश्यकतानुसार ऊँचा या नीचा किया जा सकता है। हावर प्रकार के ब्रूडर विभिन्न प्रकार से गर्म रखे जा सकते है जैसे गैस, मिट्टी का तेल, बिजली का बल्ब आदि। एक 6 फिट के हावर में लगभग 500 चूजों की ब्रूडिंग की जा सकती है।

(ग) ब्रूडर गार्ड : ब्रूडर के अन्दर चूजों को ऊष्मा स्रोत के

समीप एक सीमा के अन्दर ही केन्द्रित रखने के लिये ब्रूडर गार्ड का प्रयोग होता है। यह 16–24 इंच चौड़ी पट्टियां होती है जिन्हें ऊश्मा स्रोत के चारो ओर खड़ा कर घेराबन्दी कर दी जाती है। जैसे–जैसे चूजे बड़े होते जाते हैं यह घेरा बढ़ा दिया जाता है। ब्रूडर गार्ड ठोस या जालीदार हो सकते है किन्तु ठोस ब्रूडर गार्ड अधिक प्रचलित है।

(घ) पानी के बर्तनः छोटे चूजों के लिये छोटे फव्वारेनुमा पानी के बर्तन प्रयोग में लाये जाते है। इसमें एक कटोरे के अन्दर जारनुमा बर्तन उल्टा करके रखा जाता है, जिसमें से पानी धीरे–धीरे कटोरे में आता रहें। इसके बाद बड़े बर्तन प्रयोग किये जाते हैं।

(कृ) दाने के बर्तनः प्रथम पांच दिनो में दाने के लिये चपटे, चौड़े व उथले बर्तनों का प्रयेाग करना चाहिये। इसके बाद ट्रफ या नालीनुमा बर्तन जिस पर चौड़ी जालीदार ढक्कन हो, उनमें दाना देना चाहिये। यह नालीदार बर्तन लगभग 4–6 फिट लम्बे होते हैं तथा ऊपर चौड़ी जाली रहती है ताकि चूजे बर्तन के अन्दर न घुसें और दाना खराब न हो।

दाना संगहण

दाना संग्रहण के लिये बडें ड्रम की प्रकार के ढक्कनदार बर्तन प्रयेाग में लाने चाहिये। यह बर्तन इतने बडे हो कि लगभग एक सप्ताह का दाना संग्रहित किया जा सके।

प्रमुख बिन्दु

(1) ब्रायलर उत्पादन हेतु अच्छी नस्ल के चूजे प्रतिष्ठित हैचरी अथवा स्रोत से ही क्रय करने चाहिये।

(2) ब्रूडर हाउस ऊंचे व सूखे स्थान पर बनायें।

(3) ब्रूडर हाउस हवादार होने चाहिये तथा ताप नियन्त्रण सुचारू होना चाहिये।

(4) लिटर सूखा एवं स्वच्छ रहे तथा कभी–कभी लिटर को स्क्रेपर अथवा खुरपी की सहायता से उल्टना चाहिये।

(5) दाना–पानी के बर्तन स्वच्छ एंव निःसंक्रमित हों।

(6) दाना व पानी स्वच्छ एवं ताजा दें। दाना अच्छे प्रकार का होना चाहियें।

(7) प्रति मुर्गी पर्याप्त भूमि उपलब्ध करायें। चूजों को कभी भी सघन न होने दें।

(8) नियमित निरीक्षण, उपचार एवं मृत चूजों का निश्कासन तथा शव विच्छेदन आदि करना चाहियें।

(9) टीकाकरण कार्यक्रमानुसार करायें।

(10) सारे चूजे एक साथ अन्दर व एक साथ बाहर प्रणाली रोग नियन्त्रण में अत्यधिक प्रभावी हैं अतः इसे अपनाएं।

कुछ अन्य विशेष ध्यान देने योग्य बाते जो कि ब्रायलर उत्पादन को प्रभावी करती है तथा कृषक के लाभ को भी प्रभावित करती है, निम्न प्रकार है।

(1) कुक्कुट आहार की ऊंची कीमत एवं मिलावटी अथवा निम्नस्तरीय दाना।

(2) अच्छी नस्ल के चूजों की अनुपलब्धता तथा बिचौलियों द्वारा अच्छी नस्ल के साथ खराब चूजों की मिलावट।

(3) अपर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल।

(4) ब्रायलर तथा ब्रायलर उत्पादों की मांग में उतार चढ़ाव/अनिश्चित विपणन व्यवस्था।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये सदैव प्रयास करना चाहिये कि इन कारणों से होने वाली हानि को रोकने के उपाय किये जायें तथा आवश्यकता पड़ने पर समीपस्थ विशेषज्ञों की राय ले ली जायें।

वित्तीय मदद और बीमा लाभ

ग्रामीण कृषकों का एक कमजोर आधार होता है। आजकल अनेकों बैंक तथा कुक्कुट सहकारी समितियां कम ब्याज दरों पर आर्थिक मदद उपलब्ध करा रही हैं। बीमा लाभ भी संबंधित संस्थाओं द्वारा प्रदान किया जाता है। ब्रॉयलर इकाईयों को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु कृषकों को इन सुविधाओं का लाभ उठाना चाहिये।

प्रशिक्षण

कृषकों को ब्रायलर पालन का प्रारंभिक प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहियें। प्रशिक्षण सैद्धान्तिक के स्थान पर प्रयोगात्मक होना उत्तम है। ब्रायलर फार्म प्रारम्भ करने से पूर्व एक अच्छा व्यावहारिक प्रशिक्षण और अनुभव अत्यन्त आवश्यक है।

पर्यावरण प्रदूषण के कृषि पर दुष्प्रभाव

संजीव कुमारी, लोकेन्द्र कुमार, अनिल खिप्पल, ओमप्रकाश अहलावत एवं अमित शर्मा

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

आज विकास की अंधी दौड में इंसान प्रकृति के साथ जो खिलवाड कर रहा है व उसका परिणाम भी भुगत रहा है। आधुनिकता के नाम पर जो कुछ भी किया गया है उसका पर्यावरण को भारी नुकसान हुआ है। भारत प्रधान देश है और पर्यावरण में हो रहे बदलावों से व्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। दिनोंदिन बढ़ते प्रदूषण से खेती पर बहुत असर पड़ रहा है। किसान कई पीढ़ियों से खेती के लिए मौसमी बरसात पर ही निर्भर रहे हैं। लेकिन, अब बदलते मौसम के कारण उन्हें नुकसान हो रहा है। देश में फसल उत्पादन में उतार–चढ़ाव का कारण कम वर्षा, अत्यधिक वर्षा, अत्यधिक नमी, फसलों पर कीड़े लगना आदि मुख्य हैं। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन के कई ऐसे कारक हैं जो कृषि को सीधे प्रभावित करते हैं–

- **औसत तापमान में वृद्धि से कम उत्पादन** – पिछले कई दशकों में तापमान में काफी वृद्धि हुई है। कुछ पौधों पर तापमान बढ़ने से उनके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए आज जहाँ गेहूँ, जौ, सरसों और आलू की खेती हो रही है तापमान बढ़ने से इन फसलों की खेती न हो सकेगी, क्योंकि इन फसलों को ठंडक की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि इन फसलों में अधिक तापमान के कारण दाना नहीं बनता है अथवा कम बनता है।
- **वर्षा परिवर्तन** – वर्षा की मात्रा व तरीकों में परिवर्तन से मृदाक्षरण और मिट्टी की नमी पर प्रभाव पड़ता है। वर्षा का कृषि पर महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता है। सभी पौधों को जीवित रहने के लिए पानी की आवश्यकता रहती है। बहुत अधिक या बहुत कम वर्षा भी फसलों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है।
- **कार्बन–डाइ–ऑक्साइड में वृद्धि से वातावरण में नमी** – कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने से व तापमान में वृद्धि से पेड़–पौधों तथा कृषि पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। यह परिवर्तन कुछ क्षेत्रों के लिए लाभदायक हो सकता है तो कुछ क्षेत्रों के लिए नुकसानदायक। तेजी से बढ़ने वाले पेड़ों की वृद्धि कीड़ों के प्रकोप से प्रभावित होगी। चरागाहों में बढ़िया घास की पैदावार गिर जाएगी किंतु इससे खेती को फायदा हो सकता है क्योंकि कार्बन–डाइ–ऑक्साइड पौधों की बढ़वार को तेज करती है।
- **जहरीली गैसों का प्रभाव** – अम्लीयता के कारण धरती की ऊपरी सतह अर्थात् मिट्टी के पोषक तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। इससे मिट्टी की गुणवत्ता कम हो जाती है जिससे कृषि उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अम्लीय वर्षा गंधक अम्ल और नाइट्रिक अम्ल बनाती हैं जो कि वर्षा, के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। यह क्रिया अम्लीकरण कहलाती है। अम्लीय वर्षा का जल जब धरातलीय सतह पर पहुँचता है तो मिट्टी अम्लीय हो जाती है। मिट्टी के अन्दर स्थित सूक्ष्म जीव–जन्तुओं, जीवाणुओं, कवकों आदि को भी अम्ल की विषाक्तता नष्ट कर देती है जिनका पौधों की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान होता है।
- **ओजोन परत में कमी** – ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन का ओजोन परत पर विनाशकारी प्रभाव पड़ रहा है। ओजोन परत पतली होती जा रही है। जिससे पराबैंगनी किरणें धरती पर आ कर पौधों को नुकसान पहुँचाती हैं। इसका खाद्य पदार्थों के उत्पादन पर भी विनाशकारी प्रभाव पड़ता है।

चूंकि जलवायु परिवर्तन किसी एक देश अथवा क्षेत्र तक सीमित नहीं है इसलिए इनमें कमी लाने हेतु सभी स्तरों पर ठोस उपायों की जरूरत है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि जलवायु परिवर्तन न केवल कृषि के लिए बल्कि सम्पूर्ण मानव सभ्यता के लिए एक खतरे के रूप में सामने आया है। कोई भी देश इसकी आँच से बच नहीं सकता।

चना की वैज्ञानिक खेती

जे.पी. सिंह एवं [1]सुबोध कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र नीमच, मध्य प्रदेश

[1]पूर्व उप परियोजना निदेशक, आत्मा, शामली, उ.प्र.

दलहनी फसलों में चना का प्रमुख स्थान है। भारत में दलहनी फसलों की कुल पैदावार का आधा भाग चने से प्राप्त होता है। मानव पोषण में चने का विशेष महत्व है। चने में 21 प्रतिशत प्रोटीन, 61 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 4.5 प्रतिशत वसा पाई जाती है। चने की हरी पत्तियाँ व दाने सब्जी में प्रयोग किये जाते हैं। चने को पीसकर तैयार बेसन से विभिन्न प्रकार की स्वादिष्ट व्यंजन तैयार किये जाते हैं। चने के दानों को उबालकर या सुखाकर, भूनकर या तलकर, नमकीन बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। चने का भूसा पशु आहार में उपयोग किया जाता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाये रखने में भी चने की खेती बहुत सहायक होती है। उन्नतशील उत्पादन तकनीकों का प्रयोग करके चने की उपज में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

खेत का चुनाव एवं तैयारी – चने की खेती दोमट मृदाओं से मटियार मृदाओं तक में सफलतापूर्वक की जा सकती है। ऐसी भूमि का चयन करना चाहिए, जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो। सबसे पहले एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए, जिससे मृदा में अधिक से अधिक नमी संरक्षित रह सके तथा बाद में 2 जुताईयां देशी हल से करनी चाहिए।

बुवाई का समय – सामान्य दशाओं में चने की बुवाई का समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तथा पछेती बुवाई 15 नवम्बर से 15 दिसम्बर तक कर देनी चाहिए। बारानी आधारित क्षेत्रों में बुवाई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक कर देनी चाहिए। इसके बाद बुवाई करने पर पैदावार में कमी आती है।

बीज दर –

छोटे दाने वाली प्रजातियों के लिए : 50–60 किग्रा/हैक्टर

मध्यम दाने वाली प्रजातियों के लिए : 60–70 किग्रा/हैक्टर

मोटे दाने वाली प्रजातियों के लिए : 90–100 किग्रा/हैक्टर

बुवाई की विधि – बुवाई लाइनों में 30 सेमी के अन्तराल पर बोना चाहिए। बीज को 5–7 सेमी गहराई पर बोना चाहिए।

बीज उपचार – सबसे पहले कवकनाशी, फिर कीटनाशी तथा इसके बाद जैविक कल्चर से बीच उपचार करना चाहिए। बीज को कार्बान्डिजम एक ग्राम एवं थाइरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

उर्वरकों का प्रयोग – फसल की प्रारम्भिक अवस्था में फसल की बढ़वार हेतु नाइट्रोजन 20 किग्रा, 40–50 किग्रा फास्फोरस तथा 20–30 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टर, बुवाई के समय खेत के कूड़ में 9–10 सेमी की गहराई पर देते हैं।

सिंचाई एवं जल निकास – सिंचित क्षेत्रों में प्रथम सिंचाई बुवाई के 40 दिन बाद एवं दूसरी सिंचाई फली आने पर बुवाई के 80 दिन बाद करनी चाहिए। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तो बुवाई के 60 दिन बाद फूल निकलते समय करनी चाहिए। खेत में जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

निराई–गुडाई एवं खरपतवार नियन्त्रण – बुवाई के 25–35 दिन बाद प्रथम निराई–गुड़ाई तथा दूसरी निकाई–गुडाई 50 दिन बाद करनी चाहिए। सिंचित फसल में खरपतवार नियन्त्रण हेतु पलेवा के बाद 500 ग्राम फ्लूक्लोरेलीन प्रति हैक्टर की दर से 500–700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करके मिट्टी में मिलायें। इसके बाद चने की बुवाई करें। बुवाई के बाद एवं बीजों के अंकुरण से पूर्व पेंडीमिथिलीन 600 ग्राम खरपतवारनाशी को 600–700 लीटर पानी प्रति हैक्टर की दर से एक समान रूप से छिड़काव करें।

शीर्ष शाखायें तोड़ना – इस क्रिया में पौधों की 10 से 15 सेमी की ऊँचाई होते ही शाखायें तोड़ दी जाती है, जिससे पौधों की वानस्पतिक वृद्धि रूककर प्रति पौधा फूलों एवं फलियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

मिश्रित खेती – चने को गेहूँ, जौ के साथ 1:1 के अनुपात में, अलसी व सरसों के साथ 4:1 में मिलाकर उगाना चाहिए।

कीट प्रबन्धन

कटवर्म व कटुवा कीट

इस कीट की भूरे रंग की सूड़ियां रात में निकलकर नये पौधों की भूमि की सतह से काटकर गिरा देती है। यह कीट पत्तियों व कोमल शाखाओं को भी खाती हैं।

नियन्त्रण – क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत 25 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से अन्तिम जुताई के समय मृदा में मिलाकर भूमि उपचारित करनी चाहिए। खड़ी फसल में कीट का आक्रमण होने पर क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से खेत में बुरकाव करना चाहिए।

फली छेदक – इसकी गिडार या सूड़ी फलियों में छेद बनाकर सिर को अन्दर कर दानों को खाती रहती हैं। तीव्र प्रकोप की दशा में फलियाँ खोखली हो जाती हैं तथा उत्पादन बुरी तरह प्रभावित होता है। एक सूंडी अपने जीवन काल में 30–40 फलियाँ खा लेती है।

नियन्त्रण – फसल पर फूल आने से पूर्व तथा फली लगने के बाद मैलाथियान 5 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत अथवा मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण को 25 किग्रा प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करना चाहिए। फसल पर 50 प्रतिशत फूल आने पर क्यूनालफॉस 25 ई0सी0 एक लीटर प्रति हैक्टर की दर से पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

रोग प्रबन्धन

झुलसा रोग – फसल में यह रोग प्रायः फूल और फलियाँ बनने के समय लगता है। इस रोग में सुबह–सुबह देखने पर कहीं–कहीं टुकड़ों में पौधे पीले नजर आते हे। यह रोग बीज द्वारा फैलता है।

अल्टरनेरिया ब्लाइट रोग – इस रोग में धब्बे अनियमित किनारों पर बनते है। धब्बे बाद में भूरा या गहरा भूरा रंग धारण कर लेते है। प्रभावित फलियाँ गहरी काली होती हैं और प्रभावित बीज सिकुड़ जाता है।

उकठा रोग – इस रोग में पौधे धीरे–धीरे मुरझाकर सूख जाते हैं। जड़ के अन्दर भूरे रंग की धारियाँ दिखाई देती है।

नियन्त्रण के उपाय – रोगग्रसित पौधों को एकत्रित करके जला दें। बुवाई से पहले बीज को बाविस्टीन 2 ग्राम अथवा विटावेक्स पाउडर प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें। बीमारी आने पर मैन्कोजेब 0.2 प्रतिशत अथवा कापर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

कटाई, गहाई तथा भण्डारण – जब फलियाँ पक जायें तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। एक सप्ताह तक धूप में सूखाने के बाद दाना अलग कर लेना चाहिए। भण्डारण करने के लिए दानों में 10–12 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। भण्डारण में कीटों से सुरक्षा हेतु एल्यूमिनियम फास्फाइड की तीन गोलियाँ प्रति 10 कुन्तल की दर पर प्रयोग करनी चाहिए।

उपज – सिंचित क्षेत्रों में दानों की औसत उपज 25–30 कुन्तल/हैक्टर प्राप्त हो जाती है।

चने की प्रजातियाँ

देशी प्रजातियाँ

समय से बुवाई : सी.–235, सी.एस.जे. 515, गुजरात चना–4, अवरोधी, पूसा–256, राधे, के.जी. 16, के. 850,डब्लू. सी.जी.–1, डब्लू.सी.जी.–2

देर से बुवाई : पूसा–372, उदय, पन्त जी.–186

काबुली चना : जी.एन.जी. 1292, पूसा–1003, एच.के. 94–134, चमत्कार (बी.जी.–1053), सुभ्रा, उज्जवल

मसूर की वैज्ञानिक खेती

सुबोध कुमार एवं [1]जे.पी. सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र नीमच, मध्य प्रदेश

[1]पूर्व उप परियोजना निदेशक, आत्मा, शामली, उ.प्र.

रबी में उगायी जाने दलहनी फसलों में मसूर का महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय दलहनी फसल है। इसके दानों में 24–26 प्रतिशत प्रोटीन, 1.3 प्रतिशत वसा, 3.2 प्रतिशत रेशा, 57 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम (68 मिग्रा), फास्फोरस (300 मिग्रा) एवं लोहा (7 मिग्रा) प्रति 100 ग्राम एवं विटामिन सी भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। मसूर की दाल अन्य दालों की अपेक्षा अधिक पौष्टिक होती है तथा रोगियों के लिए दाल लाभदायक होती है। मसूर के पौधे को हरे चारे के रूप में भी पशुओं को खिलाया जाता है। मसूर की खेती मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में भी सहायक होती है।

खेत का चयन एवं तैयारी – मसूर की खेती सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है, लेकिन दोमट मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। खेत को 2–3 बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करके मृदा को भुरभुरा बना देते हैं। इसके बाद पाटा चलाकर खेत समतल करने से नमी संरक्षित रहती है।

उन्नतशील प्रजातीयाँ: पूसा वैभव, नरेन्द्र मसूर–1, आई. पी.एल.–81, पन्त मसूर–5, के–75, आई.पी.एल. 406, शेखर–2, शेखर–3, गरिमा, जवाहर मसूर–3, मसूर की प्रमुख प्रजातियाँ है।

बुवाई का समय एवं विधि – मसूर की बुवाई मध्य अक्टूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक बुवाई का उपयुक्त समय है। देरी से बुवाई की दशा में दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक इसकी बुवाई करना उपयुक्त है। समय से बुवाई करने पर लाईनों की बीच की दूरी 30 सेमी तथा देरी से बुवाई करने पर लाईनों की दूरी 20–25 सेमी रखनी चाहिए। बुवाई के समय बीज का उपचार 2 ग्राम थीरम या 2 ग्राम बाविस्टीन प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। बीज को 5 ग्राम राइजोबियम कल्चर से भी उपचारित करते हैं।

बीज दर – समय से बुवाई करने पर 30–40 किग्रा प्रति हैक्टर, देर से बुवाई के लिए 40–50 किग्रा प्रति हैक्टर बड़े दाने वाली प्रजाति का 50–55 किग्रा प्रति हैक्टर बीज दर प्रयोग करते हैं।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग – खेत में गोबर की अच्छी तरह सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट 5 टन/हैक्टर की दर से खेत में अच्छी तरह मिलाना चाहिए। सिंचित दशाओं में 20–25 किग्रा नाइट्रोजन, 50 किलो फास्फोरस तथा 20 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टर उपयोग करना चाहिए। जिंक एवं सल्फर की कमी वाले क्षेत्रों में 20–25 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 20 किग्रा जिप्सम प्रति हैक्टर का प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई – फसल की क्रान्तिक अवस्था जैसे फली बनने या फली में दाना बनने पर एक हल्की सिंचाई करना लाभदायक होता है। सिंचित दशा में पहली सिंचाई पौधों में शाखायें निकलने पर तथा दूसरी सिंचाई भूमि की आवश्यकतानुसार फली बनने पर करनी चाहिए।

कीटों के नियन्त्रण के लिए मोनोक्रोटोफास या मेटासिस्टाक्स 1.5 मिली या क्यूनालाफास 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग – मसूर फसल के जड़ सड़न, उकटा, गेरूई प्रमुख रोग हैं। उकटा रोग नियन्त्रण के लिए रोगरोधी प्रजातियां जैसे–जे.एल. 3 या एल 4076, नरेन्द्र मसूर–1, पन्त मसूर–4, प्रिया, वैभव का प्रयोग करें अथवा बुवाई से पहले बीज उपचार करना चाहिए। गेरूई रोग के नियन्त्रण के लिए डाइथेन एम–45 की 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए। गेरूई रोग के नियन्त्रण के लिए मैंकोजेब 2.0 किग्रा 500–600 लीटर में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई, गहाई एवं उपज – जब 80 प्रतिशत फलियाँ पक जायें तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। फसल को 2–3 दिन सुखाकर मंडाई कर ली जाती है। भण्डारण से पूर्व दानों को अच्छी तरह सूखा लेना चाहिए। बीज में 8–10 प्रतिशत से अधिक नमी न हो।

उन्नत विधि से खेती करने पर 15–20 कुन्तल/हैक्टर दाना प्राप्त किया जा सकता है तथा भूसा 20–25 कुन्तल प्राप्त हो जाता है।

अमरुद के बाग की स्थापना एंव प्रबन्धन

लाल चन्द[1], आर के तिवारी[1], शुकुमार तरीया[1], संग्राम चव्हाण[1], आशा राम[1], पवन सैनी[2] एंव अमित गोस्वामी[3]

[1]भा.कृ.अनु.प.- केंद्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झांसी-284003, उ.प्र.

[2] केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थान, केन्द्रीय रेशम बोर्ड, पाम्पोर-192121, जम्मू व कश्मीर

[3]भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

अमरुद की उपयोगिता :–

- विटामिन–सी का मुख्य स्त्रोत है।
- साल में दो फसलें ली जा सकती हैं।
- कांट छांट के लिए सहनशील है। तथा कांट छांट द्वारा पौधों को छोटा रखा जा सकता है। इसीलिये सघन बागवानी तथा वानिकी के लिए उपयुक्त है।
- सूखे को भलीभांति सहन कर सकता है।

उपयुक्त मृदा तथा जलवायु :–

- अच्छी उत्पादकता के लिए बलुई दोमट भूमि सबसे उपयुक्त है।
- पी़ एच़ मान 6 से 7.5 के मध्य वाली मृदा सबसे उपयुक्त होती है।
- पी़ एच़ मान 7.5 से ऊपर की मृदाओं में कभी–कभार उक्ठ़ा रोग लग जाता है।
- लाल मृदाओ में उचित सिंचाई व्यवस्था (बूंद बूंद सिंचाई या नाली बनाकर) के साथ बहुत अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।
- काली मृदाओं में कम सिंचाई में अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।
- काली मृदाओं व जल भराव सभांवित क्षेत्रों में जल निकास की उचित व्यवस्था करने के बाद ही पौधे लगाने चाहिए अन्यथा उक्ठ़ा रोग का प्रकोप बढ जाता है।
- यह उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

सारणी सं. 1: अमरुद की उन्नत प्रजातियां :–

1. इलाहाबाद सफेदा: मध्यम आकार, पीले सफेद फल

2. लखनऊ–49: कुछ हद तक उकठ़ा रोग के प्रति सहन शील

3. अर्का मृदूला: पौधे मध्यम ऊचांई,मध्यम बढ़बार वाले होते हं। फलों पर आकर्षक लाल रंग आता है। बीज कम व मुलायम होते हैं। (आईआईएचआर, बैंगलोर द्वारा विकसित)

4. ललित फल: का गूदा लाल होता है। जूस के लिए उपयुक्त है। (सीआईएसएच लखनऊ द्वारा विकसित)

5. श्वेता फल: श्वेत गूदे वाले होते हैं। (सीआईएसएच लखनऊ द्वारा विकसित)

6. हिसार सुरखाफल: का गूदा लाल होता है।7हिसार सफेदामध्यम आकार, पीले सफेद फल

बाग की स्थापना– बाग के लिये चयनित जगह जल भराव से मुक्त होनी चाहिए। जल भराव वाली जगहों मे मेड़ बनाकर पेड़ों को लगा सकते हैं। चयनित खेत में अप्रेल–मई के माह में गहरी जुताई कर लें तथा पेड़ लगाने के लिये रेखांकन कर लें। उद्यानिकी में पौधों से पौधों की दूरी 6 मीटर तक रख सकते हैं तथा कतार से कतार की दूरी 8 से 10 मीटर तक रखें ताकि अन्तः फसल लंबे समय तक ली जा सके। अमरुद की सघन बागवानी में पौधों से पौधों तथा कतार से कतार की दूरी 3 मीटर तक रख सकते हैं। इसके बाद 1 x 1 x 1 मीटर के गड्ढे बना लें । गड्ढे बनाते समय ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ डालें तथा नीचे की आधी मिट्टी दूसरी तरफ डालें। गड्ढों को अप्रेल–मई में खोदकर खुला छोड़ दें तथा धूप लगने दें। इस बीच गड्ढों की मिट्टी में से कंकड़ पत्थर अलग कर लें। मानसून से 1–2 सप्ताह पूर्व, ऊपरी मिट्टी गड्ढे में पहले भर दें तथा गड्ढे की निचली मिट्टी में 20 से 25 किलो सड़ी गोबर की खाद, 250 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 10 से 15 ग्राम फॉरेट एंव 40 से 50 ग्राम मैलाथियान पाउडर मिलाकर गड्ढों को खेत की सतह से 15 से 20 सेन्टीमीटर ऊपर तक भर देवें तथा गड्ढे के चारों तरफ मेड़ बनाकर पानी भर दें जिससे गड्ढों की मिट्टी बैठ जाये ।

प्रथम बारिश के पश्चात (जुलाई –अगस्त में) गड्ढे के बीचों–बीच पिंडी के आकार का गड्ढा खोदकर पौंधा लगायें तथा उसके चारों तरफ की मिटटी को अच्छे से दबाकर हल्की सिंचाई कर देवें। सिंचाई सुविधा उपलब्ध होने पर पौधे फरवरी–मार्च में भी लगाये जा सकते हैं।

उद्यानिकी में अन्तः फसलों का चयनः अन्तः फसलों में गेहुँ, चना, सरसों, जौ रबी में व मूंग, उङद खरीफ में ले सकते हैं। क्षेत्रवार जिन फसलों की सिफारिश हो उसे अच्छे से लिया जा सकता है। अमरुद आधारित उद्यानिकी में लम्बी अवधि की फसलें जैसे कपास, अरहर, गन्ना ईत्यादि लगाने से बचें, इन फसलों से फल उत्पादन पर विपरीत असर पङता है व बहार नियंत्रण करना मुश्किल रहता है।

अमरुद पेड़ों का प्रबन्धन कैसे करें

अन्तः फसलों तथा फलों के उत्पादन में निरन्तरता बनायें रखने के लिए नियमित काट छांट द्वारा पेड़ों की ऊंचाई, फैलाव तथा बहार नियंत्रण करना बहुत जरुरी है। अमरुद में फूल तथा फल नई शाखाओं पर लगते हैं अतः पुरानी शाखाओं के शीर्ष भाग की कटाई कर नई शाखाओं के उत्पादन को बढायें ताकि फल लगने के लिये नई शाखायें ज्यादा मिल सके । इसके लिये पेड़ लगाने के प्रथम वर्ष से ही प्रबंधन जरुरी है।

प्रथम वर्षः जुलाई में रोपण के बाद पौधों को बांस /अन्य मजबूत लकड़ी के सहारे बांध दें व पौधों को 70 से 90 सेन्टीमीटर तक सीधा बढ़ने दें। अक्टूबर माह में सभी पौधों को 60 सेन्टीमीटर की ऊंचाई से काट दें तथा तने पर जमीन से 30 सेन्टीमीटर तक की शाखाओं को हटा दें। अक्टुबर माह में काटे हुये भाग के नीचे प्रथम क्रम की शाखाओं का विकास होता है आगे फरवरी माह में उनमे से तने पर समान दूरी पर चारों दिशाओं में स्थित 3–4 शाखाओं का चयन कर लें व बाकी शाखाओं को हटा दें । पुनः मई–जून में चयन की गई प्रथम क्रम की शाखाओं को 50 प्रतिशत लंबाई तक काट दें।

द्वितीय वर्षः सितम्बर–अक्टूबर में प्रथम क्रम की शाखाओं पर नई आई द्वितीय क्रम की शाखाओं में से समान दूरी पर चारों दिशाओं में स्थित 3–4 शाखाओं का चयन कर लें व बाकी शाखाओं को हटा दें । फरवरी–मार्च माह में चयनित द्वितीय क्रम की शाखाओं को 50 प्रतिशत लंबाई तक काट दें। पुनः मई–जून में द्वितीय क्रम की शाखाओं पर नई विकसित हुई तृतीय क्रम की शाखाओं में से 3–4 शाखाओं का चयन करें और उन्हे 50 प्रतिशत लंबाई तक काट दें व बाकी शाखाओं को हटा दें। उपरोक्त प्रकिया के दौरान पेङों पर फूल आ गये हो तो भी कटाई कर लेवें। इस प्रकार पेङ अपना पूर्ण आकार ले लेता है।

तृतीय वर्षः अब पौधा सर्दियों में प्रथम फसल देने के लिए तैयार होगा ।

नोटः चूने व नीले थोथे अलग–अलग घोलकर अलसी के तेल में मिलाकर, पेङ में कटाई के उपरान्त प्रत्येक कटे भाग पर लेप लगायें जिससे पेङों की टहनीयों को सुखने से बचाया जा सके।

बहार नियंत्रण

अमरुद मध्य भारत में वर्ष में मुख्य रुप से दो बार फल देता है शरद तथा वर्षा ऋतु में। वर्षा ऋतु की फसल की गुणवता अच्छी नहीं होती क्योंकि इस समय फल मक्खी का प्रकोप ज्यादा होता है व स्वाद भी अच्छा नहीं होता। इससे बाजार भाव अच्छा नहीं मिल पाता । जबकि शरद ऋतु की फसल उच्च गुणवता व स्वादिष्ट फलों वाली होती है जिससे बाजार भाव अच्छा मिलता है। जो किसान दोनों फसल लेते हैं उन्हें शरद ऋतु की फसल से पैदावार कम मिल पाती है। अतः शरद ऋतु की फसल से अच्छी पैदावार लेने के लिये वर्षा ऋतु की फसल न लें इसलिये बहार नियंत्रण जरुरी है। अमरुद आधारित वानिकी में बहार नियंत्रण के द्वारा पौधों के आकार पर नियंत्रण, फल तथा फसल के उत्पादन में काफी हद तक निरन्तरता बनाये रखी जा सकती है इसके लिये नियमित काट–छांट जरुरी है।

खाद व उर्वरकोंः

सामान्तयाः अमरुद की अधिक फसल उत्पादन के लिए खाद एवं उर्वरक की निम्नलिखित मात्रा देना चाहिए।

सिंचाईः रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करना आवश्यक है। लाल मृदा में लगे छोटी उम्र के पौधों को गर्मियों में 5–7 दिन तथा सर्दियों में 15–20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें जबकि काली मृदा में लगे पौधों को गर्मियों में 10–12 दिन तथा एवं सर्दियों में 25–30 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। फलन वाले पेङों में फूल आने से 15–20 दिन पूर्व सिंचाई अवश्य करें ताकि पुष्पन अच्छा आये। जब फलों के आकार बढने के समय एक (काली मृदा)/दो (लाल मृदा) सिंचाई अवश्य करें अन्यथा आकार छोटा रह जाता है। फल पकने से एक सप्ताह पूर्व सिंचाई बंद कर दें ड्रिप सिस्टम लगााने से जल, उर्वरकों, धन व समय की बचत होने के साथ–साथ खरपतवार कम आते हैं। उत्पादन अच्छा मिलता है।

तुङाईः वानस्पतिक प्रर्वधन द्वारा तैयार पौधे चौथे वर्ष से

सारणी सं. 2: तृतीय वर्ष से काट–छांट निम्नवत करें:

वर्षा तथा शरद ऋतु की फसलें लेने के लिये	शरद ऋतु की फसल लेने के लिये
फरवरी–मार्च: फल तुड़ाई के बाद फलत वाली सभी शाखाओं को 50 प्रतिषत लंबाई तक काट दें अप्रेल में फूल आने प्रारम्भ हो जाते हैं। **मई माह:** फलत वाली लगभग 50 प्रतिषत षाखाओं जिनमें फूल न लगे हों या कम मात्रा में लगे हो, को 50 प्रतिषत लंबाई तक काट दें। कटिंग के बाद, गोबर की सडी हुई खाद, सिफारिष की गई मात्रा में, गुड़ाई के समय देकर पानी दें। **जून:** नत्रजन की आधी मात्रा, सुपर फॉस्फेट व पोटाष की पूरी मात्रा डालकर गुड़ाई कर व सिंचाई कर दें। **जुलाई:** वर्षा ऋतु की फसल तैयार हो जाती है। **सितम्बर–अक्टूबर** में बची हुई नत्रजन दें।	• **फरवरी–मार्च:** फल तुड़ाई के बाद, मई के अन्त तक पानी बंद कर दें • हल्की मिट्टी में मई में एक पानी दें • **मई–जून:** फलत वाली सभी षाखाओं को 50 प्रतिषत लंबाई तक काट दें। • **जून:** नत्रजन की आधी मात्रा, सुपर फॉस्फेट व पोटाष की पूरी मात्रा डालकर गुड़ाई कर सिंचाई कर दें। अगले 20–25 दिन में फूल आने प्रारम्भ हो जाते हैं। • **सितम्बर–अक्टूबर** में बची हुई नत्रजन दें।

सारणी सं. 3: अमरुद के पौधों के लिये खाद व उर्वरकों की संस्तुति

पौधे की आयु	गोबर की खाद (कि.ग्रम प्रति पौधा)	यूरिया (ग्रम प्रति पौधा)	सुपर फॉस्फेट (ग्रम प्रति पौधा)	पोटाश (ग्रम प्रति पौधा)
1–3	10–20	150–200	500–1500	100–400
4–6	25–40	300–600	1500–2000	600–1000
7–10	40–50	750–1000	2000–2500	1100–1500
10 एवं अधिक	50	1000	2500	1500

अच्छा उत्पादन देना शुरु कर देते हैं। फल का रंग जब गहरे हरे रंग से हल्का हरा या पीला हरा हो जाये तथा फल थोडे कडे रहें तब उन्हें निश्चित अन्तराल पर तुड़ाई करते रहें। आपके फल उपयोग के लिये अच्छे माने जाते हैं। अधपके फलों को 2–3 दिन भण्डारित किया जा सकता है।

उपज: उत्पादन पेड़ की उम्र, किस्म, फलन का मौसम व कर्षण क्रियाओं पर निर्भर करता है। पूर्ण विकसित पेड़ से उचित प्रबन्धन के द्वारा दोनों बहारों से औसतन 150–200 किलोग्रम फल प्रति पेड़ प्राप्त किया जा सकता है।

अमरुद के प्रमुख कीट एवं रोग

उपरोक्त वर्णीत कीट एवं रोगों के अलावा भी कुछ अन्य कीट एवं रोग लगते हैं अतः कृषि विशेषज्ञ से सम्पर्क कर उचित दवा का समय पर उपचार करें।

सारणी सं. 4 अमरुद के प्रमुख कीट एवं रोग

प्रमुख कीट	लक्षण	रोकथाम
फल मक्खी मिलीबग छाल भक्षी इल्ली प्रमुख रोग सूखा रोग अमरूद का मल्लानी (उकटा) रोग	इसका प्रकोप सबसे ज्यादा बारिष वाली फसल ज्यादा आता है। ये फल के अन्दर अण्डे देती है। इनसे निकले मेगट फल के गूदे को खाते है व फल सड़ जाते है। यह कीट रूई के समान बढ़वार से अपने आपको ढ़क कर रखता है। वह कोमल पत्तियों, टहनियों, फूलों व फलों का रस चूसते है। इस कीट का प्रकोप उत्तर प्रदेष में बहुत देखने को मिलता है। इस कीट इल्ली तने की छाल खाकर तने में छेद बना देती है। छाल खाने के बाद इल्ली का मल तने पर चिपका रहता है। लक्षण इसमें षाखायें ऊपर से सूखनी षुरू कर देती है। यह एक कवक जनित रोग है। रोग के लक्षण सर्वप्रथम बरसात में दिखाई देते हैं। रोगी पेड़ मुरझा जाते हैं तथा षाखायें एक–एक करके सूखने लगती है।	मई–जून के माह में बाग की अच्छे से जुताई कर दें। सड़े हुये फलों को किसी गड्ढे में दबाकर गड्ढ़े मिट्टी से ढ़क दें। कृषि विषेषज्ञ से सम्पर्क कर उचित दवा का समय पर छिड़काव करें। पौधों के तने पर जमीन से 20–30 सेमी ऊंचाई पर मोटी पॉलीथीन की सीट की 20–30 सेमी चौड़ी पट्टी को पेड़ के तने पर जुलाई–अगस्त माह में बांध दे। पट्टी के नीचे के हिस्से पर ग्रीस लगा दें, जिससें इस कीट के लार्वा पेड पर न चढ़ सके। ज्यादा प्रकोप होने पर, कृषि विषेषज्ञ से सम्पर्क कर उचित दवा का समय पर छिड़काव करे। बाग की उचित देखभाल करते रहे। घनी व प्रभावित षाखाओं तथा प्ररोहों को छाँट दें। इसके बाद नई पत्तियां निकलने के समय मेटास्सिटॉक (0.05 प्रतिषत) का छिड़काव करें। इसके द्वारा बनाये गये छिद्रों में कैरोसिन से भीगी हुयी रूई एक पतली तार के माध्यम से डाले। तथा छेद को चिकनी मिट्टी से बन्द कर दें। **रोकथाम** प्रभावित षाखाओं को ऊपर से काटकर नष्ट कर दें। ज्यादा प्रकोप होने पर, कृषि विषेषज्ञ से सम्पर्क कर उचित दवा का समय पर छिड़काव करें। बागों में जल निकास का उचित प्रबंध करें। ज्यादा प्रकोप होने पर, कृषि विषेषज्ञ से सम्पर्क कर उचित दवा का समय पर छिड़काव करें।

जैविक खेती के प्रमुख घटक

कामिनी कुमारी

ओरियन्टल यूनिवर्सिटी, इंदौर

भारत में पिछलें 5 दशक में रासायनिक खेती पद्धति अपनाते हुए आशातीत सफलता प्राप्त की गई है। इस सफलता हेतु पर्यावरणीय क्षति के कुछ लक्षण परिलक्षित होने लगे है। कृषि का आधार स्वस्थ्य भूमि, शुद्ध जल, जैव विविधता में निहित है। आवश्यकता प्रतीत होने लगी है कि सघन रासायनिक कृषि पद्धति सदा निभने वाली कृषि पद्धति नहीं है। अंतः पौध पोशण हेतु रसायनों पर निर्भरता को कम करते हुए जैव पौध पोषण को प्राथमिकता देनी होगी। प्रश्न यह उठता है कि रसायन पर निर्भरता कम करते हुए उत्पादन स्तर व प्रगति की दर बनाए रखना संभव होगा कि नहीं ? उत्तर यह है कि जैविक कृषि को अपनाकर हम वांछित उत्पादन स्तर व प्रगति की दर पा सकते है ।

जैविक खेती से लक्षित उत्पादन प्राप्ति संभव है, यह संभव है बहुआयामी प्रयासों से जिसमें कई लघु उपायों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। इस समन्वित उपाये के तीन प्रमुख घटक है :–

1. एकीकृत कीट व व्याधि प्रबंधन
2. एकीकृत मृदा व जल प्रबंधन
3. एकीकृत पौध पोषण

1. एकीकृत कीट व व्याधि प्रबंधन – जैविक खेती का लक्ष्य कीड़ो का विनाश करना नहीं है किन्तु उनका आर्थिक स्तर तक नियंत्रण करना है। इसके लिये स्वस्थ कृषि, परिजीवी कीटों, फिरोमोन व प्रकाश प्रपंच, कीट भक्षी पक्षियों, कीटविनाशक रोगों, मेढ़क आदि का उपयोग समन्वित रूप से किए जाने के प्रयोग सफल हुए है ।

2. एकीकृत मृदा व जल प्रबंधन – प्रकृति की संपदा मृदा व जल के मध्य संतुलन बनाये रखते हुए इनका तात्कालिक पूर्ति हेतु दोहन किया जाता है व उसे भविष्य की धरोहर के रूप में सवंर्धित रखा जाता है। मृदा, जीवांश व जल संवर्धन एक दूसरे के पूरक है ।

3. एकीकृत पौध पोषण – यह कृषि की वह पद्धति है जिसमें पर्यावरण को स्वच्छ प्राकृतिक संतुलन को कायम रखते हुए भूमि, जल एवं वायु को प्रदूशित किए बिना दीर्घकालीन व स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस पद्धति में रसायनों का उपयोग कम से कम व आवश्यकतानुसार किया जाता है। यह पद्धति रासायनिक कृशि की अपेक्षा सस्ती, स्वावलम्बी एवं स्थाई है। इसमें मिटट्ी को एक जीवित माध्यम माना गया है, यह मात्र भौतिक माध्यम नहीं है । प्रस्तुत आलेख में एकीकृत पौध पोशण घटक के बारे में विस्तृत जानकारी दी जा रही है ।

एकीकृत पौध पोशण तंत्र में निम्नलिखित तत्वों का समावेश है ।

(1) **जैव अवशेष प्रबंधन** – देश में जैव एवम् औद्योगिक अवशेश की प्रचुर मात्रा उपलब्ध है, उसे नष्ट न करते हुए पौध हेतु कम्पोस्ट में परिवर्तित करें । कम्पोस्ट बनाने की कोई भी विधि अपनाएं।

(2) **कार्बनिक खाद निर्माण** – 1 अब खेती मे कार्बनिक खादों के समावेश की आवश्यकता महसूस की जा रही है । इन जैविक खादों के उपयोग से मिट्टी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में सुधार होता है और इसके परिणाम स्वरूप फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ – साथ पर्यावरण भी प्रदुषण मुक्त रहता है ।

कार्बनिक खादों के अंतर्गत आने वाली व अच्छी गुणवत्ता वाली कम्पोस्ट खादों के बनाने की विधियों एवं कृषि में उनके उपयोग का उल्लेख निम्नानुसार है ।

कम्पोस्ट तैयार करने की विभिन्न विधियां

इंदौर विधि : यह विधि सर एलवर्ट हावर्ड और यशवंत वाड द्वारा 1926 – 31 में विकसित की गई । इस विधि में गड्डे का साइज 10 x 6 x 2 फीट रखा जाता है । इसमें सर्वप्रथम 3 इंच खरपतवार व्यर्थ कचड़ा आदि की परत बिछाई जाती है । इसके बाद राख, मूत्र मिश्रित मिट्टी मिलाकर फैला दी जाती है । उसके ऊपर 2 इंच गोबर मिट्टी व बिछावन को पानी से गीला कर दिया जाता है । इसके बाद एक के बाद एक तह प्रायः जमीन से 1 फीट ऊंचाई पर 6 – 7 दिन में पूर्ण कर लिया जाता है । गड्डे का 1/2 भाग खाली छोड़ा जाता है, जिससे खाद की पलटाई की जा सकें । दो से तीन दिन तक पानी छीटंते रहते है, जिससे जल शोषित कर सड़ने की प्रकिया प्रारंभ

हो जावें । कुछ समय बाद ढेरी सिंकुड़ना प्रारंभ हो जाती है । इस विधि में ढेरी की पलटाई तीन बार की जाती है :– प्रथम पलटाई 10 से 15 दिन में, द्वितीय 15 दिन बाद तथा तृतीय पलटाई 2 माह बाद की जाती है । तीन माह बाद काली दानेदार खाद तैयार हो जाती है । इस खाद को गड्डे से बाहर निकालकर ढेर के रूप में जमा दी जाती है, इस पर पानी का छिड़काव करते रहते है, जिससे सूक्ष्म जीवाणु नत्रजन स्थरीकरण कर सकें ।

एजेटोवेक्टर छोड़कर सभी जीवाणु कल्चर 2 बाल्टी पानी में अच्छी तरह घोलकर कम्पोस्टिंग पर छिड़के कल्चर की अनुपस्थिती में पशु गोबर पानी में घोलकर कम्पोस्टिंग सामग्री मे मिलाएं, गोबर घोल में राख, फास्फेट और मिट्टी मिलाएं । इसके बाद पानी इतना मिलाएं की 60 से 70 प्रतिशत नमी हो जाएं । इस सामग्री को गड्डे में भरें 15 दिन बाद पलटाई करें आवश्यकतानुसार पानी मिलाएं, दूसरी पलटाई 1 माह बाद करें तथा एजेटोवेक्टर मिलाएं । सभी सामग्री को परतानुसार बिछायें, प्रथम 15 सेमी मोटे कचड़े की परत उसके पश्चात जीवाणु कल्चर, मिट्टी, राख फॉस्फेट, पानी पर्याप्त मात्रा में बनाएं रखे । चार बार 15 दिन के अंतराल से पलटाई करते रहें, 90 दिन में जीवाणु युक्त कम्पोस्ट खाद पूर्णतः तैयार हो जाती है ।

2नाडेप विधि : यह विधि महाराष्ट्र राज्य के यवतमाल जिले के कृषक श्री नारायणदेव राव पाढ़री पाण्डे (नाडेप काका) ने विकसित की । इसमें गड्डे का साइज 12 x 5 x 3 फीट या 10 x 6 x 3 फीट (180 घनफीट) ईंट का आयताकार टांका बनाया जाता है । जिसकी दीवार 9 इंच चौड़ी रखी जाती है, टांके की जुड़ाई मिट्टी गारे से की जा सकती है, जिसके आखरी रद्दा की जुड़ाई सीमेंट, रेत से की जाती है । फर्श ईंट पत्थर के टुकड़े डालकर धुमसकर सीमेंट से पक्का किया जाता है, हवादार टांका बनाते समय दीवारों में चारों और छेद रखे जाते है, हर दो रद्दे की जुड़ाई करते समय एक ईंट जुड़ाई के बाद 7 इंच छेद छोड़कर जुड़ाई की जाती है । इस तरह चारों दीवारों पर छेद बन जाते है । छेद पहली लाइन के दो छेदों के मध्य दूसरी लाइन के छेद आना चाहिए और दूसरी लाइन के छेदों के मध्य तीसरी लाइन के छेद आना चाहिए । इस प्रकार तीसरे, छठे व नवें रद्दे में छेद बनेंगे । छेदों की संख्या बढ़ाने से खाद जल्दी पककर तैयार हो जाती है । अंदर – बाहर की दीवारों को मिट्टी के गोबर से लीप दिया जाता है ।

सामग्री : (1) उपलब्ध फसल अवशेष : कचरा, वानस्पतिक व्यर्थ पदार्थ, सूखे पत्ते, छिलके, डण्ठल, टहनियां, जड़े 1400 से 1500 किग्रा । (2) गोबर 90 से 100 किग्रा (8 – 10 टोकने) (3) सूखी छनी मिट्टी 1750 किग्रा (120 टोकनी) गोमूत्र से सनी मिट्टी विशेष लाभदायी होती हैं । (4) पानी : मौसम अनुसार वर्षा मौसम में कम सूखे मौसम में अधिक जल की आवश्यकता होती है । (1500 से 2000 लीटर)

नाडेप हौद भरने की विधि : सर्वप्रथम दीवाल एवं फर्श पर गोबर का घोल छिड़के (1) पहली परत उपलब्ध पौंध अवशेष कचरें 6इंच की परत भरें (मात्रा 100 से 110 किग्रा) (2) दूसरी परत गोबर या गोबर गैस स्लरी 4 से 5 किग्रा 125 से 150 लीटर पानी में घोलकर कचरे की परत पर छिड़के (3) तीसरी परत साफ सूफ सूखी छनी मिट्टी (कंकर, पत्थर प्लस्टिक रहित) भीगी हुए कचरें की परत पर 50 से 60 किग्रा मिट्टी बिछा दें ।

उपरोक्त तीनों परतों के क्रम को दोहराते हुए हौद के मुँह के ऊपर डेढ़ फीट ऊंचाई पर झोपड़ी नुमा आकार में परते भरते जाईयें । पूरा हौद एक या दो दिन में भर दें, करीब 11 से 12 परतों में हौद भरेगा और भरे हुए हौद को 3 इंच मिट्टी (300 से 400 किग्रा) की परत से ढककर सील कर दें और इसे गोबर मिश्रण से लीप दें, दरार पड़ने पर पुनः लीप दें जिससे गैस बाहर न निकल सकें।

दूसरी भराई – वानस्पतिक पदार्थ का किण्डवन होने से 15 से 20 दिन बाद सामग्री दब जाती है । आवश्यकतानुसार पहली भराई की तरह वानस्पतिक पदार्थ गोबर व छनी मिट्टी की पतरे बिछाकर हौद की सतह पर पुनः डेढ़ फीट तक भरकर 3 इंच मिट्टी की परत बिछाकर गोबर लीपकर सील बंद कर दें।

नाडेप कम्पोस्ट तैयार होने में 3 से 4 माह का समय लगता है, तीन से चार माह पश्चात गहरे भूरे रंग की भुरभुरी दुर्गंध रहित खाद तैयार हो जाती है। खाद में 15 से 20 प्रतिशत नमी बनाए रखने के लिए पानी का छिड़काव करते रहें, जिससे पोषक तत्व सवंर्धित रहते है। एक हौद में साधारणतः 160 से 175 घनफीट छना खाद व 40 से 50 घनफीट बिना पका कच्चा खाद मिलेगा साधारणतः एक हौद से तीन टन खाद प्राप्त हो जाती है।

हरी खाद – अविच्छेदित हरें पौधों के अवशेशों या पौधों को मिट्टी की भौतिक दशा सुधारने तथा उर्वरता बढ़ाने हेतु, मिट्टी में जोतना या दबाना हरी खाद देना कहलाता है।

हरी खाद देने की विधियॉ

(क) हरी खाद देने की सीटू विधि – इस विधि के

अंतर्गत हरी खाद की फसल को खेत में फूल आने के पूर्व की अवस्था तक अथवा बाद तक उगाया जाता है तथा खड़ी फसल को उसी खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से दबा दिया जाता है । इस विधि में रबी की फसल की कटाई तथा खरीफ की फसल की बुवाई के मध्यकाल में सनई, ढेंचा, पिलीपेसारा आदि दलहनी हरी खाद की फसल बोई जाती है तथा उन्हें जुलाई – अगस्त माह में वर्शा ऋतु में मिटट्री में जोतकर दबा दिया जाता है। ये फसलें धान की रोपाई से पूर्व खेत में गल सड़कर पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न कर देती है। हरी खाद हेतु उपयुक्त फसलें है सनई, ढेंचा, पिलीपेसारा, ग्वार, मूंग, लोबिया, बरसीम, रिजका, सैन्जी, उड़द, मैथी आदि।

3(ख) हरी पत्तियों से हरी खाद – इस विधि के अंतर्गत हरी खाद की फसलों को एक खेत में उगाकर दूसरी जगह मिट्टी में दबाया जाता है अथवा पेड़ो की शाखाएं व हरी पत्तियां एकत्रित करके खेत में दबाई जाती है। यह विधि प्रायः ऐसे क्षेत्रो में प्रयोग की जाती है जहां जल का अभाव होता है। वनों से प्राप्त पत्तियों को भी प्रयोग में लाया जा सकता है । आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू, केरल आदि की धान वाली मृदाओं में हरी पत्तियों वाली खाद प्रयोग में लाई जाती है । हरी पत्तियों की हरी खाद हेतु उपयुक्त फसलें है – ग्लिसीरीडिया, करंज, नील, जंगली ढेंचा, पोवाडिया आदि ।

कम्पोस्ट का उपयोग व प्रभाव

इंदौर और नाडेप विधियों से तैयार की गई कार्बनिक खादों (जैव खादों) का उपयोग सभी प्रकार की मिट्टियों व फसलों के लिए लाभदायक है । इन खादों का पूरा लाभ तभी मिलता है । जब इन्हें नम मिट्टी में बुवाई से लगभग दो सप्ताह पूर्व मिला दिया जायें । इनको खेत में फैलाकर /छिटककर जुताई करके शीघ्र मिला देना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में गन्ना, धान, आलू तथा सब्जियों की फसलों के लिए 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से कम्पोस्ट दी जा सकती है । अन्य सिंचित फसलों में 10 से 15 टन प्रति हैक्टर की दर पर्याप्त होती है । कम वर्शा वाले असिंचित क्षेत्रो में 3 से 5 टन प्रति हैक्टर की दर से खाद दी जाती है ।

केचुआं खाद – जैविक खादों में केचुएं से खाद बनाना अधिक आसान व सस्ता उपाय है। किसान, केंचुए की खाद का अपने खेत में उपयोग कर न केवल महंगे रसायनिक उर्वरकों का विकल्प तैयार कर सकता है बल्कि, वह कार्बनिक पदार्थो का पुनर्चक्रण कर पर्यायवरण प्रदूषण को कम कर सकता है तथा अपनी भूमि की उर्वरता को टिकाऊ भी बनाएं रख सकता है। स्वस्थ जीवांश से भरपूर एवं नम भूमि में केंचुओं की संख्या पचास हजार से चार लाख प्रति हैक्टर तक होती है ।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि :–

- वर्मी कम्पोस्ट को छायादार किसी ऊंचे स्थान पर जहां पानी न भरता हो, बेड तैयार करना चाहिए।
- बेड की लंबाई 6 फीट, चौड़ाई 4 फीट तथा गहराई 2 फीट होना चाहिए। बेड को लकड़ी के मोगरी से हल्के से पीटकर पक्का व समतल बना लें।
- गडढ़े की निचली सतह पर आसानी से अपघटित होने वाले सूखी घास, पुआल, ज्वार के डंठल की छः इंच मोटी तह बना दें।
- इसके ऊपर छः इंच पकी हुई गोबर खाद डाल दें।
- इस खाद की तह पर 100 केंचुए प्रति वर्ग फीट के मान से डाल दें।
- केंचुओं को डालने के पश्चात इसके ऊपर 9 इंच की मोटी परत सब्जी के टुकड़े, जूठन, पत्ती आदि डालकर इसे मोटी टाट–पटटी या जूट के बोरों से ढक दें।
- तत्पश्चात टाटपटटी पर प्रतिदिन आवश्यकतानुसार पानी छिड़कते रहें ताकि नमी 40 प्रतिशत बनी रहें।
- सप्ताह में एक बार खाद को ऊपर – नीचें पलट दें।
- 30 दिन में छोटे – छोटे केंचुए दिखना शुरू हो जाते है इस अवस्था में बेड के ऊपर कूड़े – कचरें की छः इंच मोटी तह बिछाकर इने नम कर दें।
- 50 – 60 दिन बाद पानी छिड़कना बंद कर दें। जिससे कि केंचुएं वर्मी बेड की सतह में चले जाते है।
- इस पद्धति से 50 – 60 दिन में खाद तैयार हो जाती है।
- इसके बाद गडढ़े से कम्पोस्ट निकालकर पॉलीथिन शीट पर ढेर लगा दें ताकि केंचुए खाद की निचली सतह में चलें जायें एवं बाद में 2 मि.मी. जाल वाली छलनी से खाद को छान लेते है।
- छनी हुई खाद को सुखा लें एवं बोरियों में उपयोग के समय तक भण्डारित कर रख सकते हे ।

तैयार वर्मी कम्पोस्ट की पहचान :

- तैयार वर्मी कम्पोस्ट गहरे भूरे रंग का चायपत्ती जैसा दिखता है ।

- भार में हल्का होता है ।
- इसमें किसी प्रकार की अवांछित गंध नहीं आती है ।
- तैयार वर्मी कम्पोस्ट की ढेर से या गडढ़े से केंचुएए इधर – उधर रेंगते हुए दिखाई दे तो समझ लेना चाहिए कि वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो गया है ।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने में सावधानियॉ

- केंचुओं को धूप, वर्शा आदि से सुरक्षा हेतु वर्मी बेड के ऊपर डालकर छाया करनी चाहिए ।
- वर्मी कम्पोस्ट बेड में उचित तापमान एवं नमी के लिए समय – समय पर पानी छिड़कते रहें ।
- प्रति सप्ताह बेड को एक बार हाथ से पलट दें ताकि गोबर पलट जायें और वायु संचार हो जायें जिससे बेड में गर्मी न बढ़ने पाएं ।
- खाद बनाये जा रहे पदार्थो में कांच, पत्थर एवं प्लास्टिक आदि नहीं हों ।
- वर्मी बेड में सदैव 40 प्रतिशत नमी बनाए रखें ।

वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग कहां करें ।

- फलदार पौधों में
- बगवानी एवं खेतों में
- सब्जी–बाड़ी एवं गमलों में

कम्पोस्ट खाद के उपयोग से लाभ :–

- कम्पोस्ट से फसलों को प्रमुख पोषक तत्व जैसे – नत्रजन (0.5 से 1.5 प्रतिशत), स्फुर (0.5 से 0.9 प्रतिशत) और पोटाश (1.2 से 1.4 प्रतिशत) तो प्राप्त हो ही जाते है, साथ ही अन्य आवश्यक गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व भी मिल जाते है ।
- इसके उपयोग से मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार होता है। क्ले मृदा भुरभुरी होती है तथा बलुई मृदा दानेदार हो जाती है ।
- मृदा की जल अवशोषण व जल धारण क्षमता में वृद्धि हो जाती है ।
- इसके उपयोग से मृदा में ह्यूमस की मात्रा बढ़ जाती है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है ।
- कम्पोस्ट खादों के मिट्टी में अनुप्रयोग से कार्बनिक अम्ल बनते है जो अप्राप्य अकार्बनिक यौगिकों को घोलकर पौधों को उपलब्ध कराने में अपना योगदान देते है।
- कम्पोस्ट में विटामिन्स तथा हारमोन्स जैसे वृद्धिकारक तत्व पाये जाते है।
- कम्पोस्ट से मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों को उर्जा, कार्बन पोशण मिलता है। जिससे लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संख्या व उनकी कियाशीलता में वृद्धि होती है और मृदा का स्वास्थ्य ठीक रहता है।
- कम्पोस्ट के मृदा में अनुप्रयोग से डाले गये उर्वरकों की उपयोग क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पडता है।

3. जैव उर्वरक का प्रयोग

जैव उर्वरक वे आदान है कि जिनमें उपयोगी सूक्ष्म जीव पाए जाते है। ये पौध पोशक तत्वों की अनुपलब्ध अवस्था को उपलब्ध अवस्था में बदल देते है। जैव उर्वरक जैविक सूक्ष्म जीवों से युक्त वह माध्यम है जो जमीन को बिना नुकसान पहुचायें उर्वराशक्ति को बढ़ाती है।

- नत्रजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरक
- स्फुर घोलक जैव उर्वरक
- क्वकमूल (माइकोरल) जैव उर्वरक

1. नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरक – उद्यानिकी फसलों में नत्रजन स्थिर करने वाले जीवों को दो वर्गो में रखा जा सकता है – सहजीवीं एवं असहजीवी। सहजीवी नत्रजन स्थिरीकरण सूक्ष्मजीवों में राइजोबीयिम प्रजाति के सूक्ष्मजींव आते है जो दलहनी पौधें की जड़ो की ग्रंथियों में साहचर्य के आधार पर रहते है तथा असहजीवी सूक्ष्मजीवों में एजोटोबेक्टर प्रजाति एवं एजोस्पिरिलम प्रमुख है।

नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरको से लाभ

(अ) राइजोबीयम प्रजाति – राइजोबीयम प्रजाति के जीवाणु दलहनी किस्म में पौधों की जड़ों पर नत्रजन स्थिर करने वाली संरचना बनाते है। जिसे गठन, ग्रन्थियां अथवा नोड्यूल कहते है। इन ग्रंथियो में उपस्थित जीवाणु वातावरण की नाइट्रोजन को अवशोशित कर दलहनी पौधों की जड़ों में स्थिर कर पौधों को पोषण हेतु प्रदान करते है । कुछ राइजोबीयम खास किस्म की प्रजाति के पौधों में ही ग्रंथियों का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए राइजोबीयम लेग्यूमीनोसोरम प्रजाति केवल मटर के जड़ो में ही सहजीवी संबंध स्थापित करती है। जबकि राइजोबीयम

लेग्यूमीनोसोरम फेजियोलाई फ्रेंचबीन के सिवा और फली वाली दलहनी सब्जियों में सहजीवी संबंध स्थापित कर सकती है ।

(ब) एजोस्पिरिलम प्रजाति – यह सूक्ष्मजीव कई सब्जी वाली फसलों में पौधों की जड़ो के साथ साहचर्य स्थापित कर वातावरण के नाइट्रोजन को स्थिर करने में मदद करता है। यह विभिन्न फसलों में 10 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टर तक स्थिर करता है।

6**(स) एजोटोबेक्टर प्रजाति** – एजोटोबेक्टर दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें ऐजोटो का अर्थ है नत्रजन तथा बेक्टर का अर्थ है प्रदान करने वाला जीवाणु। यह स्वंतत्र रूप से भूमि एंव पौधों की जड़ो की सतह रूप से भूमि एवं पौधों की जड़ों की सतह पर रहते है। आक्सीजन की उपस्थिति में यह वायुमण्डलीय नत्रजन को अमोनिया में परिवर्तित करते है, जिसे पौधे अपने उपयोग में ले लेते है। एजोटोबेक्टर के उपचार से 10 – 20 प्रतिशत तक नत्रजनयुक्त रसायनिक उर्वरक की बचत हो सकती है।

2. स्फुर घोलक सूक्ष्मजीव – फास्फोरस (स्फुर) पौधों के लिए एक अत्यन्त आवश्यक पोशक तत्व है। जिसकी आवश्यकता पौधों को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में होती है। फास्फोरस के अकार्बनिक रूप कैल्शियम, आयरन (लोहा) एवं एल्युमीनियम के यौगिक होते है। विभिन्न प्रकार की भूमि में डाले गए फास्फोरस (स्फुर) की ज्यादातर मात्रा स्थिर हो जाती है जो पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाती है। कई प्रकार की मिट्टी में पाये जाने वाले बेक्टीरिया विशेशकर स्युडोमोनास एवं बेसीलस प्रजाति के बैक्टीरिया मे इस अघुलनशील स्फुर को घुलनशील अवस्था में बदलने की क्षमता होती है।

3. कवकमूल (माइकोराइजा) – कवकमूल (माइकोराइजा) कवक तथा उच्च पादप के मध्य सहवास का नाम है। माइकोराइजा का अर्थ कवक का संवहनी पादपों की जड़ों के साथ संबंध है। माइकोराइजा पौधों को पोशक तत्व उपलब्ध कराने में सहायक होता है तथा विशमपोशी प्रवृत्ति का होने के कारण ये स्वपोशी पौधों से कार्बोहाइड्रेटस ग्रहण करती है।

स्फुर विलयकारी के रूप में जाना जाने वाला महत्वपूर्ण माइकोराइजा (वेम) का निर्माण कवक के द्वारा होता है ।

जैव उर्वरकों की उपयोग विधि

उद्यानिकी फसलों में जैव उर्वरकों को निम्नलिखित विधियों द्वारा उपयोग किया जा सकता है ।

- बीज उपचार
- मृदा उपचार
- पौध उपचार
- सिंचाई जल के साथ

1. बीजोपचार – इस विधि का प्रयोग सामान्यतः राइजोबीयम, स्फुर घोलक सूक्ष्मजीव (पी.एस.एम.) एजोटोबेक्टर, एजोस्पिरिलम आदि के लिए करते है। इस विधि में 50 ग्राम गुड़ को आधा लीटर पानी में उबालते है। ठण्डा होने के बाद इसमें 200 ग्राम जैव उर्वरक मिलाकर अच्छी तरह घोलते है। इसके बाद एक बर्तन में 10 किलो बीज लेकर उसके ऊपर घोल मिलाते है तथा बीजों को हाथों से उलटते पलटते रहते है। ताकि प्रत्येक बीज पर जैव उर्वरक की एक पतली परत चढ़ जाएं । इस उपचारित बीज को छायादार स्थान में सुखाकर बुआई की जाती है।

2. मृदा उपचार – इस विधि का प्रयोग मुख्यतः एजोटोबेक्टर के लिए करते है। इसमें एजोटोबेक्टर कल्चर का 2–3 किग्रा. मात्रा को 40–50 किग्रा. अच्छी पकी गोबर की खाद में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से खेत में रोपाई/बुवाई पूर्व, बुवाई के समय अथवा गुड़ाई के समय समान रूप से बिखेर दिया जाता है।

3. पौध उपचार – इस विधि का उपयोग स्फुर घोलक सूक्ष्मजीव, एजोटोबेक्टर एवं एजोस्पिरिलम हेतु किया जाता है। इस विधि में 15–20 लीटर पानी में आवश्यक मात्रा को मिलाकर पौधों की जड़ो को कम से कम 5 मिनट तक डुबोने के उपरान्त रोपाई की जाती है।

4. सिंचाई जल के साथ उपयोग – अगर पूरे खेत में एक ही फसल उगाई जा रही हो तो सिंचाई जल के साथ सूक्ष्मजीव कल्चर का उपचार किया जा सकता है । कल्चर को जड़ के पास पानी में घोल कर उपचार किया जा सकता है।

जैव उर्वरक के प्रयोग में सावधानियां

- जैव उर्वरकों का भण्डारण ठण्डे 20 – 28 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान तथा धूप रहित कमरों में करें।
- जैव उर्वरकों के प्रयोग एवं भण्डारण के समय रासायनिक उर्वरकों अथवा कीटनाशक दवाओं से अलग तथा दूर रखें।
- जैव उर्वरकों को सूर्य के सीधे प्रकाश से दूर रखें।
- राइजोबीयम जैव उर्वरक प्रत्येक फसल के लिए अलग

– अलग होता है। अंतः यह अनिवार्य है कि फसल के अनुसार ही राइजोबीयम प्रजाति का प्रयोग करें ।

- जैव उर्वरकों का अंतिम उपयोग तिथि (एक्सपायरी डेट) के पहले ही उपयोग करना चाहिए। अंतिम उपयोग तिथि के बाद उसका कोई परिणाम नहीं मिलता है।
- रासायनिक उर्वरकों एवं जैव उर्वरको को एक साथ मिलाकर उपयोग न करें इससे सूक्ष्मजीवी मर जाते है।
- यदि फफूंदनाशको से बीजोपचार कर रहे है तो पहले उनसे बीजोपचार करें फिर जैव उर्वरकों का उपयोग करें ।

4. फसल प्रणाली – क्षेत्र विशेष के अनुसार विभिन्न फसल प्रणालियां अपनायी जाती है। एक मुख्य आवश्यकता है फसल चक्र अपनाने की। यदि दलहन/अनाज फसल चक्र अपनाया जाता है तो अवशेष नत्रजन अगली फसल को प्राप्त होने से 15 से 20 प्रतिशत पोषक तत्वों की बचत हो जाती है। एकल फसल पद्धति रासायनिक पौध पोषण आधारित है। ऐसी फसल पद्धति में रासायनिक पौध पोषण पर निर्भरता कम करना संभव है। यदि अनाज/तिलहन/नगद फसल के साथ दलहन की अन्तरवर्तीय/मिश्रित फसल जी जाय। ऐसा करने से दलहन व अनाज फसल पौध पोषण में एक दूसरे के पूरक साबित होते है। दलहन नत्रजन उपलब्ध कराते है तो अनाज की फसलें मॉइकोराइजा के द्वारा स्फुर उपलब्ध कराते है।

5. संतुलित रासायनिक उर्वरक प्रबंधन – रासायनिक उर्वरक का प्रदाय, प्रकार, मात्रा व समय का निर्धारण मिट्टी परीक्षण पर आधारित होना चाहिए। मिट्टी परीक्षण आधारित रासायनिक उर्वरक प्रदाय करने से फसलों को संतुलित पोषण प्राप्त होता है साथ ही किसी तत्व विशेष की कमी की भरपाई होती है एवं बहुलता में उपस्थित तत्व की अतिरिक्त मात्रा देने से किसान बच सकते है, फलस्वरूप फसल लागत में कमी आती है। शुद्ध रूप से जैविक कृशि करने से मिट्टी की भौतिक, जैविक व रासायनिक गुणों में अनुकूल प्रभाव पड़ता है, किन्तु इसके प्रारंभिक वर्षो में वांछित उपज प्राप्त नहीं हो सकती। अंतः या तो किसान बंधुओं को लंबे समय तक संयम रखकर जैविक खेती अपनानी पड़ेगी या एकीकृत पोषण प्रबंधन अपनाकर रासायनिक उर्वरको पर निर्भरता धीरे–धीरे कम करनी पड़ेगी।

जलवायु परिवर्तन का गेहूँ उत्पादन पर प्रभाव

दीपक, चरण सिहं, अरूण गुप्ता, विकास गुप्ता, भूमेश कुमार एंव ज्ञानेन्द्र सिहं

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत में गेहूँ की फसल को खाघ सुरक्षा की दृष्टि से मुख्य फसल माना जाता है। भारत में मुख्यतः गेहूँ की खेती उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश एंव गुजरात आदि राज्यों में की जाती है। देश की जनसंख्या असीमित गति से बढ रही है अतः बढी हुई जनसंख्या के लिए अतिरिक्त खाघान्न की व्यवस्था हमारे लिए एक चुनौती हैं वर्ष प्रतिवर्ष भूमि सीमित होती जा रही है व भूमिगत जल का उपयोग वास्तव में घटता जा रहा है और तापमान में वृद्धि होती जा रही है। जो हमारे लिए भविष्य में गेहूँ की खेती के लिए मुख्य चुनौती है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में विश्व के क्षेत्रों का तापमान सन् 2020 तक 1.0–1.5 डिग्री से0 2050 ई0 में 2.5–4 डिग्री से0 और सन् 2080 तक 4.5.6 डिग्री से0 तापमान बढोतरी की सम्भावना है इस दौरान कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा क्रमशः 414, 522 और 682 पी0पी0एम0 हो सकती हैं। भारत में रबी के मौसम में वर्षा भी कम होने का अनुमान है भारत में इस परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन में 10–40 प्रतिशत नुकसान होने का सकेंत दिया है (स्टर्न, 2007) जलवायु परिवर्तन के बारे में नोबल पुरूस्कार विजेता आई0पी0सी0सी0 के अध्यक्ष डॉ आर0के0 पंचौरी के मुताबिक भारत की जलवायु परिवर्तन की वजह से बुरी तरह प्रभावित होगी। भारत देश की अधिकांश आबादी का मुख्य भोजन गेहूँ, चावल, दलहन फसलें है इसलिए किसानों को संयमित दोहन की आवश्यकता है। भारतीय अनुसधांन सस्थांन, नई दिल्ली के अध्ययन के अनुसार, ''भारत में सन् 2020–30 के दौरान प्रत्येक 1 डिग्री से0 तापमान में वृद्धि के परिणामस्वरूप गेहूँ की उपज में 4–5 मिलियन टन उत्पादन की हानि की सम्भावना है।

गेहूँ की फसल अधिक तापमान के प्रति संवेदनशील होती है तथा एक निश्चित तापमान के ऊपर बालियो में स्वस्थ एव सुडौल दाने विकसित नहीं हो पाते हैं। उदाहरणतया, मार्च 2004 में भारत के मैदानी क्षेत्रो के तापमान को अचानक 3–6 डिग्री से0 की वृद्धि हुई जिससे गेहूँ की फसल 10 से 20 दिन पूर्व ही पक गई। इसके कारण गेहूँ उत्पादन में कमी रिकार्ड की गई है समान्यतः ताप वृद्धि खरीफ की उपेक्षा रबी में होने की सभावना अधिक हैं यह परिवर्तन गेहूँ उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। जबकि उत्पादकता में ठहराव, सिचांई जल की कमी तथा अन्य प्राकृतिक ससांधनो का हॉस पहले से ही दबाव बनाये हुए है। उत्तर भारत के पहाडी एवं मैदानी क्षेत्रो में गेहूँ में दानो के भरने एवं पकने के समय ऊँचे तापमान तथा बारानी क्षेत्रों में पानी की कम उपलब्धता के कारण बीज का उपयुक्त विकास नहीं हो पाता है। इसलिए भविष्य में विकसित की जाने वाली प्रजातियों को नमी एंव तापमान के प्रति सहनशील होना चाहिए। उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों में अगेती बीजाई वाली लम्बी अवधि वाली प्रजातियों को अल्प शरद अवधि मिल पाने के कारण एक तरफ फुटाव निकलने एवं फूल आने की अवस्था प्रभावित होगी और दूसरी तरफ से पछेती गर्मीयां उच्च तापमान और पानी की कमी के तनाव से जूझना पड़ सकता है कम अवधि में पकने वाली इन किस्मों की महत्वपूर्ण विकास की अवस्थाएं तापमान की अधिकता एवं पानी की कमी के भी दुष्प्रभाव से बच पाने में सक्षम हो सकती है। जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप नयी–नयी बीमारियां व कीटों का प्रकोप भी फसलों पर पड़ता है। जिसमें फसलों की उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लाभकारी सूक्ष्म–जीवाणु नष्ट होगें वहीं हानिकारक कीटो की सख्यां में वृद्धि होगी। बदलती जलवायु में पेराबैगनी–विकरण बढ़ने से फसलों की बढ़ोतरी तथा उसके उत्पादन पर बडे क्षेत्र (भू–भाग) पर इसका प्रतिकूल असर होगा।

जलवायु परिवर्तन में उचित सावधानियां

1. गेहूँ की फसल में पौधों के जमाव से लेकर पकने तक उच्च तापमान का प्रभाव पड़ता है जिससे दानें सिकुड कर छोटे हो जाते हैं तथा पैदावार में भी कमी आ जाती है। हमें तापरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए एंव उसका प्रचार–प्रसार करना चाहिए।
2. गेहूँ की समय से बीजाई करनी चाहिए तथा पछेती बीजाई से बचना चाहिए।
3. दाना भरते समय (दुग्ध अवस्था) हल्की सिंचाई करनी चाहिए।
4. ट्रिप सिंचाई/फव्वारा विधि से सिंचाई करने से जल का हॉस कम होने के साथ–साथ भूमि में नमी बनी

रहती है।

5. संसाधन संरक्षण तकनीकों (जीरो टिलेज, टर्बो सीडर आदि) से गेहूँ की बीजाई करनी चाहिए।
6. खेतों में कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना चाहिए।
7. वृक्षारोपण को बढाये तथा जगंली पेड पौधो की कटाई ना करें जिससे पर्यावरण को शुद्ध करने में मददगार साबित होगें।
8. मशीानीकरण की कार्यक्षमता में सुधार लाया जाये।
9. मृदा निरिक्षण हो ताकि मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का ज्ञान हो तभी जलवायु परिवर्तन दौर में कम भूमि में अच्छी फसल को प्राप्त कर लाभप्रद हो सकते है।
10. बदलती जलवायु में किसानों को का समुचित विधिया का प्रशिक्षण देना चाहिए।
11. विशेषज्ञों द्वारा समय–समय पर जलवायु परिवर्तन में उत्पन्न नयी नयी प्रजातियों का प्रचार किसानों तक पहुँचाना अति आवश्यक है।
12. ऐसी किस्मों को विकसित किया जाए जो कम पानी में अच्छी पैदावार दे सके एंव किस्में सुखारोधी हो इसके लिए ज्यादा फैलने वाली जड़ों के पौधों ज्यादा पानी सोख सके इसके लिए पौध की कोलियोप्टाईल ज्यादा लबांई होनी चाहिए ताकि पौधे भूमि पर ज्यादा सघन हो तथा पानी का सरंक्षण हो सकें।
13. फसल विवधीकरण करें ताकि प्राकृतिक प्रकोप की स्थिति में यदि एक फसल नष्ट हो जाए, तो दूसरी फसल किसान की जीविका का संसाधन बन सके।
14. उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।
15. संरक्षण को बढावा दे जैसे फसल क्रम, शून्य जुताई, फसल अवशेष आदि से 20–30 प्रतिशत तक जल का संरक्षण किया जा सकता है।

जौ के विभिन्न उपयोग

दीपक, चरण सिंह, अरूण गुप्ता, अनुज कुमार, दिनेश कुमार, लोकेन्द्र कुमार
अजीत सिंह खरब एंव जी पी सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

विश्व में जौ सबसे पुरानी फसल है। जौ का धार्मिक व पर्यावरण की दृष्टि से काफी महत्त्व हे। जौ फसल रबी मौसम मे भारत के उत्तर मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में उगायी जाती है। जौ पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य के सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम फसल है। पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति में जौ की खेती को बढ़ावा मिलना चाहिए ताकि सम्पूर्ण जन–समुदाय किसी न किसी रूप में लाभन्वित हो सकें। जौ फसल को कम पानी, समस्याग्रस्त क्षेत्र (क्षारीय/लवणीय) में भी उगाकर भरपूर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में जौ का उपयोग हम पशुओं के खाद्यान्न चारे के रूप में तथा बड़ी मात्रा मे औद्योगिक क्षेत्रों मे प्रयोग जैसेः माल्ट व बीयर, व्हिस्की उपर्युक्त पेय बनाने के उघोग मे तथा जौ से बहुत से बालाहार, बारले सीरप, हार्लिक्स, माल्टोवा एवं मनमोहक टॉफिया व कई प्रकार के हेल्थ टॉनिक बनाने मे किया जाता है जौ मे एक महत्वपूर्ण गुणकारी कारक बीटा–ग्लूकन पाया जाता है जो 3–11 प्रतिशत तक होता है बीटा–ग्लूकन, कालेस्ट्रोल एवं ग्लूकोज की मात्रा को संतुलित रखने का कार्य करती है जौ मे पोटेशियम, फारस्फोरस एवं मैग्निशियम की पर्याप्त मात्रा होती है। इसके अलावा विटामिन्स (थायमीन, राइबोफ्लेबिन, नियासिन, बी–6 आदि) भी प्रचुर मात्रा में होते है। जौ एक प्रकार का पोषक तत्वों का बिजली घर है।

जौ के उपयोग से स्वास्थ्य लाभ

- **उक्त रक्तचाप** :– जौ मे उपस्थित पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम उच्चरक्तचाप को कम करने और वजन नियत्रिंत करने में मदद करता है।
- **अस्थि स्वास्थ्य** :– जौ मे कैल्शियम की मात्रा बहुत अधिक है साथ मे इनमें फास्फोरस, मैंगनीज़ और तांबा पाया जाता है जो हड्डियों के ढ़ाचें और उसकी शक्ति को बनाये रखने में सहायक है।
- **हृदय स्वास्थ्य** :– जौ मे बीटा–ग्लूकान, जौ फाइबर, पोटेशियम, विटामिन बी–6 की मात्रा कोलेस्ट्रॉल की कमी के साथ हृदय रोग के खतरे को कम करता है।
- **कैंसरः**– जौ मे सेलेनियम नाम का खनिज पाया जाता है। यह कैंसर के कुछ यौगिकों का विषहरण मे मदद करता है इसके अलावा सेलेनियम सूजन को रोकर ट्यूमर की वृद्वि दर को कम करता है।
- **पाचन और नियमितताः**– जौ फाइबर का एक बहुत अच्छा स्त्रोत होने के नाते, पेट और आंत को स्वस्थ रखता है। हमारी बड़ी आंत के अनुकूल बैक्टीरिया के लिए एक ईंधन के स्त्रोत के रूप में कार्य करते है। जौ फाइबर पेट के कैंसर और बवासिर जैसी बीमारियो की सम्भावना को कम करती है।
- **इम्यून सिस्टम को बढ़ाने मेंः**– जौ इम्यून सिस्टम के सुधार में भी उपयोगी है।
- **गठिया रोग मे कारगरः**– जौ मे पाया जाने वाला कॉपर, जो रूमेठी गठिया के लक्षणों को कम करने मे सहायक हो सकता है। कॉपर युक्तकण हड्डियों और जोड़ो को लचीला बनाने मे सहायक है।
- **बालों के स्वास्थ्य** :– जौ मे उपस्थित महत्त्वपूर्ण खनिज, विटामिन और एंटी आक्सीडेंट बालों के उत्पादन के लिए आवश्यक होता है। जौ मे उपस्थित तत्व बालों को स्वच्छ व स्वस्थ रखता है साथ ही इसमें उपस्थित लोहा व तांबा लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ावा देता है और बालों के टूटने झड़ने को कम करता है।
- **बच्चों की वृद्वि एवं विकासः**– जौ पोषक तत्वों और थायमिन, नियासिन और परोसायनाडिन बी–3 के रूप मे खनिजों से सम्पन्न होता है। यह बढ़ते बच्चों की वृद्वि एवं विकास को प्रोत्साहित करता है।
- **मधुमेह टाइप–2 की रोकथाम** :– जौ टाइप–2 मधुमेह पर प्रभावी ढंग से काम करते है जौ मे उपस्थित उच्च फाइबर खाघ पदार्थ मधुमेह के रोगियों के दैनिक आहार मे शामिल किया जाना चाहिए जौ फाइबर खाद्य पदार्थ मधुमेह के रोगियों के शरीर का कार्बोहाइड्रेट अवशोषण को धीमा करने के लिए

ग्लूकोज के स्तर में कमी करने के लिए उपयुक्त है। इसके अलावा मधुमेह रोगियों को अपने दैनिक आहार मे जौ के साबुत अनाज को शामिल किया जाना चाहिए।

- **गुर्दे और मूत्राशय के रोगों मे मददगार** :– जौ रस गुर्दे और मूत्राशय के रोगों से पीड़ित लोगों को चिकित्सीय उपयोग मे लाभकारी पाया जाता है।

जौ का उपयोग गेहूँ के साथ मिलाकर (10–30%) चपाती के रूप मे किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जौ का दलिया, जौ का सत्तू व अन्य अनाज फसलों के साथ मिश्रण के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है।

जौ के अवयव (मात्रा प्रति किलोग्राम)

1.	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	–	73.48
2.	प्रोटीन (प्रतिशत)	–	12.48
3.	रेशों की मात्रा (ग्राम)	–	17.3
4.	जल (प्रतिशत)	–	9.44
5.	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	–	3.54
6.	लिपीड (ग्राम)	–	2.3
7.	पौटेशियम (मिली ग्राम)	–	452
8.	फॉस्फोरस (मिली ग्राम)	–	264
9.	मैग्निशियम (मिली ग्राम)	–	133
10.	कैल्शियम (मिली ग्राम)	–	33
11.	सोडियम (मिली ग्राम)	–	12
12.	नियासिन (मिली ग्राम)	–	4.60
13.	आयरन (मिली ग्राम)	–	3.6
14.	जिंक (मिली ग्राम)	–	2.77
15.	थायमिन (मिली ग्राम)	–	0.646
16.	राइबोफ्लेविन (मिली ग्राम)	–	0.285
17.	विटामिन बी–6 (मिली ग्राम)	–	0.32
18.	फोलेट (माइक्रो ग्राम)	–	19
19.	विटामिन ए (आई यू)	–	22
20.	वसा अम्ल (मोनोअनसैचुरेटेड ग्राम)	–	0.29

जौ की सस्य क्रियाएं

विनोद कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, मण्डकौला, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

इस फसल को मुख्य रूप से पशुओं को दाने के रूप में खिलाया जाता है। जौ का माल्ट विभिन्न प्रकार के पोषक भोजन, हल्के पेय व मादक पेय आदि बनाने के काम आता है। सही किस्म, शुद्ध बीज, बीज उपचार व रोगों की रोकथाम होने पर किसान अच्छी पैदावार ले सकते हैं। हरियाणा में इसे मुख्यतः उस भूमि में उगाया जाता है जहाँ सिंचाई की सुविधा कम हैं।

मिट्टी :–

अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी में जौ की फसल अच्छी होती है। रेतीली और कमजोर जमीनों में भी यह सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बारानी इलाकों में थोड़ी–सी वर्षा से भी जौ की फसल अच्छी हो जाती है।

जमीन की तैयारी :–

जौ की अच्छी फसल उगाने के लिए समतल खेत की आवश्यकता होती है। खेत में पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद की 3–4 जुताइयां देसी हल से करें। बारानी स्थितियों में 4 से 5 जुताइयों की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक जुताई के बाद सुहागा लगायें।

सारणी सं. 1: उन्नत किस्में

किस्में	विशेषतायें	पकाई	औसत उपज (क्विं./एकड़)
बी.एच. 75	बौनी, छः कतारी, अधिक फुटाव वाली, मध्यम ढीली बालें, समय की सिंचित दशा के लिए।	अगेती	10–16
बी.एच. 393	समस्त हरियाणा के सिंचित क्षेत्रों में समय की बुवाई के लिए।	अगेती	19.0
बी.एच. 902	समस्त हरियाणा	अगेती	20.0
बी.एच. 885	बौनी, द्वि कतारी, अधिक फुटाव वाली, सिंचित दशा के लिए, माल्ट के लिए,समय की बुवाई के लिए।	अगेती	20.0
बी.एच. 946	छः कतारी	अगेती	21.0

बीज मात्रा :–

अच्छी पैदावार के लिए सिंचित स्थितियों में 35 किलो बीज प्रति एकड़ डालें। पछेती बिजाई में 45 किलो बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बारानी स्थितियों में 30 किलो बीज प्रति एकड़ डालें। इस बीज मात्रा से पौधों में नमी सोखने की होड नहीं रहती।

बिजाई का समय :–

बारानी क्षेत्रों में जौ की बिजाई अक्तूबर माह के दूसरे पखवाड़े में शुरू कर दें। सिंचित क्षेत्रों में समय की बिजाई 15 से 30 नवम्बर के बीच कर लें। माल्ट जौ की किस्में विशेषतया बी.एच. 885 की बुवाई 10 से 25 नवम्बर के बीच पूरी कर लें। दिसम्बर माह में बोई गई फसल पछेती मानी जाती है। पछेती बोई गई फसल में माल्ट की पैदावार व गुणवत्ता कम हो जाती है।

बीज उपचार :–

बीजोपचार एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा मामूली लागत से किसान बहुत सी बीमारियों से प्रभावी तरीके से फसल को बचा सकते हैं। प्रमाणित साफ और स्वस्थ बीजों को भी फफूंद रोगों तथा कीटों मुख्यतः दीमक से सुरक्षित रखने के लिए फफूंदनाशक दवा एवं कीटनाशक दवा से उपचार किया जाता है।

जौ की खुली कांगियारी :–

धूप उपचार (मई–जून माह में): मई–जून के महीने में किसी शांत एवं धूप वाले दिन प्रातः 8 से 12 बजे तक बीज को पानी में 4 घंटे भिगोने के बाद उसे पतली परत के रूप में (40 किलो बीज की मात्रा 15 वर्ग गज) पक्के फर्श पर सुखा लें। इसे किसी तिरपाल, कपड़े या बोरी आदि से न ढकें। सुखाये बीज को बोने के समय तक किसी सूखे स्थान पर रखें। धूप उपचार के बाद किसी दवा उपचार की आवश्यकता नहीं।

उन्नत सौर ताप उपचार (सितम्बर माह में) : यदि किसी कारणवश सौर ताप उपचार मई–जून माह में नहीं किया गया हो तो सितम्बर माह में भी किसी शांत एवं धूप वाले

दिन कर सकते हैं। इस उपचार में 40 किलो बीज को 40 लीटर पानी में भिगोया जाता है व इसके लिए गेलब्नाईजड टब (36''×36'' ऊपरी चौड़ाई, 24''×24'' – सतह की चौड़ाई, 13 ''– गहराई) उपयुक्त होगा। बीज को पानी में डालने के बाद टब के मुंह पर एक पारदर्शी पॉलीथीन कस कर बांध दें और 8 बजे प्रातः से 2 बजे दोपहर तक धूप में ही रहने दें। 6 घण्टे भिगोने के बाद बीज को पानी से निकाल लें और धूप में पतली परत के रूप में पक्के फर्श पर फैला कर पूर्णतया सुखा लें। पूर्णतयाः सूखे बीज को दांतों से तोड़ने पर कड़क की आवाज़ आयेगी। सुखाये बीज को बिजाई तक किसी सूखे स्थान पर रखें। इस उन्नत सौर ताप उपचार से खुली कांगियारी का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

दवा उपचार : वीटावैक्स या बाविस्टीन 2 ग्राम ग्राम प्रति किलो बीज की दर से सूखा उपचार करें। धूप उपचार के बाद किसी दवा उपचार की आवश्यकता नहीं।

दीमक : दीमक से सुरक्षित रखने के लिए 600 मि.ली. क्लोरपाइरीफास + पानी का 12.5 लीटर घोल बनाकर 100 किलो बीज के उपचार के लिए प्रयोग करें।

सावधानियां :–

अगर किसान भाईयों को बीज को तीनों दवाओं की कीटनाशक, फफूंदनाशक और टीका/कल्चर से उपचारित करना हो तो इसे क्रमबद्ध तरीके से उपचारित करना चाहिएः–

- कीटनाशक– (गीला उपचार एक दिन पहले)
- फफूंदनाशक–(सूखा उपचार बिजाई वाले दिन)
- कल्चर –जीवाणु टीका खाद) (आखिर में बिजाई से थोड़ा पहले)

बिजाई की विधि :–

यदि भूमि में पर्याप्त नमी हो तो फसल केरा प्रणाली से बोएं। बारानी क्षेत्रों में जहाँ पर भूमि की ऊपरी सतह में नमी की कमी होती है वहाँ पोरा प्रणाली से बिजाई करें। ठीक समय पर बोई गई फसल के लिए दो खूडों की दूरी 22 सै.मी. तथा देर से बांई जाने वाली और बारानी क्षेत्रों में 18–20 सै.मी. के अन्तर से बहुत अच्छे परिणाम निकलते है।

खाद व उर्वरक :–

फासफोरस, पोटाश तथा आधी नत्रजन की मात्रा बिजाई के समय डालें और बची हुई नत्रजन पहली सिंचाई के बाद डालें। खादों की सही मात्रा को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण करवायें। असिंचित क्षेत्रों में नत्रजन व फासफोरस खाद की सारी मात्रा बिजाई के समय डालें।

सिंचाई :–

सिंचित क्षेत्रों में जौ की अच्छी फसल उगाने के लिए सिंचाई की संख्या वर्षा के ऊपर निर्भर करती है। दक्षिणी–पूर्वी खुश्क जिलों में बिजाई के बाद साधारणतया 2 सिंचाईयों की आवश्यकता पड़ती है। पहली सिंचाई बिजाई के 40–45 दिन बाद और दूसरी सिंचाई 80 से 85 दिन बाद करें।

जस्ते की कमी के लक्षण व उपचार : जौ की फसल में जस्ते की कमी प्रायः हो जाती है। फुटाव से पहले पत्तियों की शिराओं के मध्य अनियमित धब्बे बन जाते है। ये धब्बे बाद में बड़े होकर मिल जाने पर सफेद व हरी चित्तियों में बदल जाते है। कमी वाले पौधों की पत्तियों पर बैंगनी रंग के धब्बे हो जाते है। नई पत्तियां बढ़ती नहीं है तथा उनके किनारे सफेद हो जाते है।

उपचार : भूमि में यदि जस्ते की कमी है, डी.टी.पी.ए. निष्कर्षणीय जस्ता 0.35 पी.पी.एम. से कम है, तब गेहूँ में बताई गई विधि द्वारा जस्ते की कमी का उपचार

सारणी सं. 2: जौ के लिये खाद व उर्वरकों की संस्तुति

क्षेत्र की दशा	पोषक तत्त्व			उर्वरक मात्रा प्रति एकड़		
	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश	यूरिया (46%)	सिंगल सुपर फास्फेट (16%)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (46%)
सिंचित	24	12	6	52	75	10
असिंचित	12	6	–	26	40	–
द्वि कतारी किस्म बी.एच. 885 के लिए	32	16	8	70	100	13

मध्य भारत में गेहूँ की नई लाभदायक किस्में

अनिल कुमार सिंह, एस. व्ही. साई प्रसाद एवं दिव्या अंबटी

भाकृअनुप–भारतीय अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर

धान्य फसलों में गेहूँ एक महत्वपूर्ण फसल है क्योकि यह विश्व की अधिकांश जनसंख्या का प्रमुख भोजन है। इन्दौर स्थित भारतीय अनुसंधान संस्थान का क्षेत्रीय केन्द्र विगत 68 वर्षों से गेहूँ की नई प्रजातियों के विकास, अनुकूलन तथा प्रसार में कार्यरत है। मध्य क्षेत्र के अंतर्गत मध्य प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड एवं दक्षिणी राजस्थान सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र के लगभग 80 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में गेहूँ बोया जाता है, जो देश में बोये जानेवाले गेहूँ के कुल क्षेत्रफल का लगभग 30% है। मध्य भारत का गेहूँ गुणवत्ता में पूरे देश में अग्रणी है। मध्य भारत के लगभग 30% क्षेत्रफल मे कम सिंचाई (0–2 सिंचाई) का गेहूँ बोया जाता है। इस कम पानी वाले गेहूँ को स्थानीय मंडियों में तथा व्यापारियों को शरबती/चंदौसी के नाम से ऊँचे भावों पर बेचा जाता है । यह गेहूँ रोटी के लिये सर्वश्रेष्ठ होता है तथा इससे किसानो को गेहूँ फसल से अच्छा मुनाफा मिलता है। मध्य क्षेत्र, भारत ही नहीं अपितु विश्व में अपने सुन्दर, सुडौल, आकर्षक, चमकदार रंग एवं अन्य गुणों से परिपूर्ण **"मध्य प्रदेश गेहूँ"** के लिये जाना जाता है। इसका बाजार भाव अन्य प्रदेशों के गेहूँ से 50 से 60 प्रतिशत अधिक होता है मध्य क्षेत्र में पैदा किये गये गेहूँ की देश के बड़े शहरों की मंडियों में अधिकतम भावों पर निरन्तर मांग बनी रहती है। बड़े शहरों की मंडियों से उपभोक्ताओं तक पहुँचने में मध्यप्रदेश गेहूँ के खुदरा मूल्य लगभग दोगुनी हो जाती है। मध्य भारत के बहुआयामी विकास के लिये केन्द्र द्वारा निम्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं:

- प्रजातियों का विकासः अधिक उत्पादकता, शीघ्र पकनेवाली तथा सूखारोधी प्रजातियों का विकास
- अनुमोदित तकनीकों के मूल्यांकन एवं पुनर्स्थापन द्वारा उत्पादन लागत कम करना
- खरीफ फसल कटाई के बाद खेत की सीमित जुताई
- अधिक जल–उपयोग क्षमता वाली प्रजातियों का विकास
- जल–उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिये सस्य तकनीक
- गेहूँ की खेती में पौध संरक्षण रसायनों का उपयोग सीमित करना
- ड्यूरम/मालवी गेहूँ का विकास

कम पानी की किस्में (चन्दौसी किस्में)

इस गेहूँ को आष्टा/सीहोर शरबती या विदिशा/सागर चन्दौसी के नाम से उपभोक्ताओ एवं आटा उधोगों मे प्रिमियम गेहूँ के रूप में जाना जाता है। यह गेहूँ अपनी चमक, आकार, स्वाद, और उच्च बाजार भाव के लिये सुप्रसिद्ध है। वर्तमान समय में, उपयुक्त तकनीक की जानकारी के अभाव में, किसानों द्वारा ऐसे बहुत से खेत रबी में खाली छोड़ दिये जाते हैं, जिनमें उच्च गुणों वाला चन्दौसी गेहूँ उगाया जा सकता है। उचित तकनीक अपनाकर ऐसे खेतों में 18 से 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज आसानी से प्राप्त की जा सकती है। मध्य भारत की भूमि और जलवायु उत्तम गुणों वाले गेहूँ के उत्पादन के लिये वरदान है। कम सिंचाई की चंदौसी प्रजातियाँ केवल 1–2 सिंचाई में 20–40 क्विंटल/हैक्टेयर उत्पादन में सक्षम हैं।

मालवी/कठिया (ड्यूरम) किस्में

प्रकृति ने मध्यभारत को मालवी/कठिया गेहूँ उत्पादन की अपार क्षमता प्रदान की है। इस क्षमता का पर्याप्त दोहन कर वांछित लाभ लिया जा सकता है। मालवी गेहूँ का विशिष्ट स्वाद है अतः इसका विभिन्न व्यंजनो में उपयोग किया जाता है। मालवी गेहूँ में प्रोटीन तथा येलो पिगमेंट की अधिकता है। साथ ही इसमें कुछ खनिज तत्व (लोहा,जस्ता,तांबा आदि) उपस्थित हैं जो शरीर के लिये लाभदायक हैं। नवीन मालवी/कठिया किस्मो में कम सिंचाई की आवश्यकता, अधिक उत्पादन, गेरूआ महामारी से बचाव व अधिकतम पोषण के गुण होते हैं । मालवी किस्मों में अपेक्षाकृत सूखा सहने की क्षमता अधिक हैं। मध्य भारत में गेरूआ रोग के प्रसार के लिये द्वितीयक स्त्रोत का कार्य करता है। अतः ड्यूरम गेहूँ की भूरा गेरूआ, कण्डवा तथा करनाल बंट के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता के कारण, देश की गेहूँ की खेती को गेरूआ महामारी से मुक्त रखने के लिये, मध्य भारत में ड्यूरम (मालवी) गेहूँ की खेती एक नितांत वैज्ञानिक आवश्यकता है । खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा के लिये मालवी गेहूँ की खेती अवश्य करें।

पछेती खेती

पछेती खेती का अर्थ है गेहूँ की देर से बुवाई करना। मध्य भारत में समान्यतः दिसम्बर–जनवरी में पछेती गेहूँ की बुवाई की जाती है। इस अवस्था में फसल को पकने के लिये कम समय मिलता है तथा तापमान अधिक होने के कारण केवल पछेती गर्मी सहने वाली नई प्रजातियों की ही खेती लाभदायक होती है। ये प्रजातियाँ 100–105 दिन मे पक जाती हैं तथा इनसे 35–45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज ली जा सकती है। मध्यक्षेत्र में देर से बुवाई के लिये गेहूँ आधारित विभिन्न फसल चक्र हैं:

- सोयाबीन–आलू– गेहूँ
- धान– गेहूँ
- कपास– गेहूँ
- अरहर– गेहूँ
- मक्का–आलू/ अन्य सब्जियाँ– गेहूँ
- उड़द–हरी सब्जियाँ (टमाटर,बैंगन,प्याज, लहसुन, पालक, मेथी,मूली,गाजर इत्यादि)–गेहूँ
- ज्वार–हरी सब्जियाँ– गेहूँ

खेती के तरीके में बदलाव

गेहूँ की खेती में अधिक लाभार्जन तथा सतत् उत्पादकता बनाये रखने के लिये अनुसंधान के आधार पर, संस्थान ने नई प्रजातियों के साथ–साथ खेती के तरीके में भी कुछ बदलाव की अनुशंसा की है । इनमें प्रमुख हैं :–

खेत की तैयारी

सितम्बर–अक्तूबर में सोयाबीन/खरीफ कटाई के बाद लगभग 6–8 दिनों तक खेत की जमीन मुलायम रहती है। अतःजितना जल्दी हो सके आड़ी एवं खड़ी, केवल दो जुताई (पंजा या पावड़ी द्वारा) भारी पाटा के साथ करें ।

बुवाई का समय

अगेती बुवाई अर्थात असिंचित तथा अर्धसिंचित खेती में 20 अक्टूबर से 10 नवम्बर, सिंचित समय से बुवाई में 10–25 नवम्बर, तथा देरी से बुवाई में दिसम्बर माह में एवम अत्यन्त देरी से बुवाई में जनवरी माह (प्रथम सप्ताह) में बुवाई अच्छी रहती है।

किस्मों का चयन

उन्नत खेती के लिये सुलभ प्रमाणित बीजों का ही उपयोग करें। प्रमाणित और आधारीय बीजों के उपयोग से, उपज अधिक मिलती है तथा उपज की गुणवत्ता बनी रहती है। गेहूँ की सफल खेती का अहम पहलू उपयुक्त किस्मों का चुनाव है। अन्य लागतों का प्रभाव भी उन्नत किस्मों पर ही निर्भर करता है (तालिका 1)।

बीज दर

1000 दानों के वजन के आधार पर बीज की दर निर्धारित करें। 1000 दानों का वजन जितने ग्राम आये, उतने ही किलोग्राम बीज प्रति एकड़ उपयोग में लायें। उदाहरणः अगर किसी किस्म मे 1000 दानो का वजन 40 ग्राम है, तो उस किस्म के बीज की 40 किलोग्राम मात्रा प्रति एकड़ बोना चाहिए। सामान्य तौर पर छोटे दानों की किस्मों के लिये100 किलो प्रति हेक्टेयर एवं बड़े दानों वाली किस्मों का 125 किलो प्रति हेक्टेयर बीज उपयोग में लाना चाहिए।

बुवाई

उर्वरक को बीज बोने से पहले सीडड्रिल द्वारा खेत में 3 से 4 इंच (8 से 10 से.मी) की गहराई पर ओरना चाहिए। इससे बीज का अंकुरण व फसल का उठाव अच्छा होता है। सुखे में बुवाई कर ऊपर से दिया गया पानी गेहूँ फसल में अधिक समय तक काम आता है। ध्यान रखें बुवाई गहरी करने से गेहूँ के बीज उग नहीं पाते और जमीन के अन्दर ही मर जाते हैं।

सिचांई प्रबन्धन

एक या दो सिंचाई उपलब्ध होने पर 20 अक्टूबर से 10 नवंबर के बीच बुवाई करें। तीन या अधिक सिंचाई उपलब्ध होने पर, 5 से 25 नवंबर के बीच का समय सबसे उपयुक्त है।

विभिन्न प्रजातियों के लिए उपयुक्त सिंचाई अंतराल :

1) **एक सिंचाई वाली** जातियों में उगने वाले पानी के बाद एक मात्र सिंचाई 35–40 दिन की अवस्था पर करनी चाहिए।

2) **दो सिंचाई वाली** जातियो में उगने वाले पानी के बाद प्रथम सिंचाई 35–40 दिन पर तथा दूसरी सिंचाई 75–80 दिन पर करना अधिक लाभप्रद रहता है।

3) **पूर्ण सिंचित** जातियों में अंकुरण हेतु दिये गये पानी के बाद 4 सिंचाईयाँ उपलब्ध होने की अवस्था में 20–25 दिन के अंतराल पर 4 सिंचाईयाँ करनी चाहिए। यदि 3 ही सिंचाई उपलब्ध हो तो 25–25 दिन के अंतराल से 3 सिंचाईयाँ करना लाभदायक होता है।

4) **देर से बुवाई वाली प्रजातियों** में अंकुरण हेतु दिये गये पानी के बाद 17–18 दिन के अंतराल से 3–4 सिंचाई करनी चाहिए।

सिंचाई पद्धति

सिंचाई करने की आधुनिक पद्धति, क्यारी पद्धति होती है, इस पद्धति में बुवाई के पश्चात हर 15 से 20 मीटर की दूरी पर आड़ी तथा खड़ी दोनो दिशाओं से सीधी नालियाँ बनाई जाती है। यह नालियाँ देशी हल, कुल्पा या रिजर द्वारा आसानी से बनाई जा सकती है। अंत में खेत के चारो ओर भी नालियाँ बना देते है। इस विधि में नालियों द्वारा एक–एक क्यारी की बारी से सिंचाई की जाती है, इस विधि से सिंचाई करने पर सरी विधि की तुलना में आधे सिंचाई जल की आवश्यकता ही होती है। जहॉ क्यारी पद्वति से सिंचाई करने मे लगभग सभी बीज अंकुरित हो जाते हैं, वहीं सार की मेड़ो के नीचे दब गये बीज उग नहीं पाते हैं व इस तरह बीज की एक बड़ी मात्रा नष्ट हो जाती है।

उर्वरक

गेहूँ की प्रजाति के अनुसार खाद की मात्रा और उपलब्ध सिंचाई का तालमेल भरपूर उत्पादन क्षमता सुनिश्चित करता है। गेहूँ की फसल के लिये संतुलित खाद में नत्रजन, स्फुर व पोटाश का अनुपात क्रमशः 4:2:1 होना चाहिये, अर्थात नत्रजन चार भाग, स्फुर दो भाग एवं पोटाश एक भाग। खेत की उर्वरता के अनुसार खाद की मात्रा कम की जा सकती है, अन्यथा बढ़ाई जा सकती है। यह कार्य प्रयोगशाला में मिट्टी परीक्षण एवं उर्वरक अनुशंसा के पश्चात ही करना चाहिये। संतुलित खाद के उपयोग से फसल की बढ़वार संतुलित व स्वस्थ होती है, एवं प्रजाति की क्षमता अनुसार उत्पादन मिलता है। संतुलित खाद भूमि को स्वस्थ रखकर इसकी उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता को सतत् बनाये रखती है। ऊँचे कद की (कम सिंचाई वाली) जातियॉ में नत्रजनःस्फुरःपोटाश की मात्रा 80:40:25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुआई से पूर्व ही देना चाहिये। बौनी किस्मों को नत्रजनःस्फुरःपोटाश की मात्रा 140:70:35 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर देना चाहिये। इनमे नत्रजन की आधी मात्रा और स्फुर एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई पूर्व देना चाहिये तथा नत्रजन की शेष आधी मात्रा प्रथम सिंचाई (बुआई के 20 दिन बाद) देनी चाहिये।

जीवांश खाद

सतत् उत्पादकता बनाये रखने के लिये भूमि में कम से कम आधा प्रतिशत (0.5 प्रतिशत) जैविक कार्बन होना चाहिये। जमीन की उर्वराशक्ति व स्वास्थ्य को बनाये रखने हेतु जीवांश खादें जैसे : गोबर की खाद, मुर्गी की खाद या हरी खाद का उपयोग आवश्यक है। खेत में डाले गये रासायनिक उर्वरकों की सक्रियता के लिये, खेतों में पर्याप्त जैविक कार्बन की उपलब्धता अति आवश्यक है। गोबर की खाद 10 टन प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष या मुर्गी की खाद 2.5 टन प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष या हरी खाद के लिये पहली वर्षा के साथ खेत में ढैंचा या सनई की बुआई करें। हरी खाद की 30 से 35 दिन की फसल को जुताई कर खेत मे मिला दें। ये उपाय खेत में पर्याप्त जैविक कार्बन की उपलब्धता सुनिश्चित करेंगे। खेत में गेहूँ या अन्य फसलों के ठूठ, डन्ठल या पत्तियों को न जलायें। फसलों के अवशेष जलाने से खेत के लाभदायक सूक्ष्म जीव व जीवांश नष्ट हो जाते है तथा जमीन बंजर हो सकती है।

खरपतवार प्रबन्धन

गेहूँ की फसल को पहले 35 दिन तक खरपतवारविहीन रखना अति आवश्यक है, यदि हाथ से खींचकर, खुरपी द्वारा या हो आदि चलाकर खत्म कर दिया जाये तो उत्तम रहता है। इसके लिये निम्न बातों का घ्यान रखें:

- साफ–सुथरी खेती करें
- साफ–सुथरे एवं शुद्ध बीज का उपयोग करें।
- बुवाई के लगभग एक महीने बाद 'हैण्ड हो' से निदाई–गुड़ाई करें एवं डोरे चलायें।
- अति आवश्यक होने पर ही उपयुक्त खरपतवारनाशी रसायनों का उपयोग विशेषज्ञ की सलाह से सावधानीपूर्वक करें।
- खरपतवारों के नियंत्रण के लिए फसल–चक्र में बदलाव लायें। गेहूँ–सोयाबीन फसल–चक्र में, सोयाबीन के स्थान पर मक्का, ज्वार और अरण्डी तथा गेहूँ के स्थान पर चना, बरसीम, सूरजमुखी तथा सरसों लेना चाहिए।
- मेंड, रास्ते तथा नालियों को खरपतवार से मुक्त रखें। खरपतवार के बीज मेंड, रास्ते तथा नालियों से खेत में चले जाते हैं।
- भूमि को बांझपन से बचाने के लिए, खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशी रसायनों का उपयोग कम से कम करें।

आवश्यक होने पर खरपतवार नियंत्रण हेतु निम्न खरपतवारनाशी रसायनों का इस्तेमाल किया जा सकता है:

- चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लियेः 2–4 डी 650 ग्राम सक्रिय तत्व/है, अथवा मैटसल्फ्युरॉन मिथाइल 4 ग्राम सक्रिय तत्व/है, 550–600 लीटर पानी में मिलाकर 30–35 दिन की फसल होने पर छिड़कें।

- संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के लियेः क्लॉडीनेफॉप प्रोपरजिल – 60 ग्राम सक्रिय तत्व/है, 550–600 लीटर पानी में मिलाकर 30–35 दिन की फसल होने पर छिड़कें।
- दोनों प्रकार के खरपतवारों के लियेः एटलान्टिस 400 मिलीलीटर अथवा वैस्टा 400 ग्राम अथवा सल्फोसल्फ्युरॉन 25 ग्राम सक्रिय तत्व/है अथवा सल्फोसल्फ्युरॉन 25 ग्राम सक्रिय तत्व/है, + मैटसल्फूरॉन मिथाइल 4 ग्राम सक्रिय तत्व/है, 550–600 लीटर पानी में मिलाकर 30–35 दिन की फसल होने पर छिडकें।

रोग नियंत्रण

मध्य भारत में गेहूँ में लगने वाली बिमारीयों में भूरा एवं काला गेरूआ प्रमुख हैं। इस रोग के बचाव का सबसे सरल उपाय नवीनतम, गेरूआ अवरोधी अथवा सहनशील किस्मों की खेती है। इसके लिये निम्न बातों का घ्यान रखेंः

- गेरूआ नियंत्रण के लिये रसायनों का उपयोग विशेषज्ञो की सलाह तथा समझदारी से करें।
- एक फसल–एक किस्म की खेती न अपनायें।
- उत्तर भारत के लिये अनुमोदित किस्में मध्य भारत में न लगायें तथा संवेदनशील किस्में जेसे सुजाता, लोक–1 तथा डब्ल्यू. एच. 147 आदि की खेती ना करें।
- मालवी /कठिया गेहूँ कि नई किस्मों की खेती करें, ये रोटी वाले गेहूँ पर लगने वाले गेरूआ रोगों से प्रतिरोधी हैं।
- फव्वारे से सिंचाई वाले क्षेत्र में बालियाँ निकलते समय 10–15 दिन तक फव्वारा न चलायें।
- गेरूआ लग जाने पर रसायन प्रभावी नहीं होते हैं। इससे अनावश्यक खर्च एवं प्रदूषण बढ़ता है।
- बालियाँ निकलते समय फव्वारे का पानी करनाल बन्ट संक्रमण को बढ़ावा देता है।

कटाई एवं मँडाई

गेहूँ की कटाई एवं मँडाई किस्मों के आधार पर करें। जल्दी पकने वाली किस्मों को पहले काटें। दानों को झड़ने से बचाने के लिए शरबती/चन्दौसी किस्मों की कटाई पहले तथा मालवी/कठिया किस्मों की बाद में करें। कटाई के लिए उचित अवस्था देखने के लिए पौधा सूखने पर उसकी बाली से दाना निकाल कर दॉत से दबायें, कट की आवाज होने पर खेत कटाई के लिए तैयार है। फसल काट कर 4–5 दिन खेत में अच्छी तरह से सुखायें तब थ्रेसिंग करें। अपरिपक्व दानों की गुणवत्ता कम हो जाती है तथा भण्डारण में कीट लगने का भय रहता है। यदि सम्भव हो तो इसकी थ्रेसिंग भी सबसे पहले साफ थ्रेसर से करें और इसको अगले वर्ष के लिए बीज के रुप में सुरक्षित रखें।

खेती में जोखिम कम करना :

आज खेती में जोखिम बढ़ता जा रहा है तथा लाभार्जन कम होता जा रहा है। कृषकों को चाहिए कि लाभ बढ़ाने तथा जोखिम कम करने के लिये निम्न उपायों का अनुसरण करें।

- बीज ग्रामों की सीापना ।
- आदानों की लागत में यथासंभव कमी करना ।
- वैज्ञानिक खेती द्वारा अधिकाधिक उत्पादन बढ़ाना ।
- फसलों, प्रजातियों, फसल चक्र, फार्म उद्यमों तथा –उद्योगों द्वारा का विविधिकरण ।
- गॉव आधारित भण्डारण एवं विपणन की व्यवस्था करना ।
- विभिन्न बाजार भावों तथा विपणन की नवीनतम जानकारी रखना ।
- फार्म का नियोजन तथा संचालन आधुनिक प्रबन्धन के सिद्धान्तों के आधार पर करना ।
- स्वयं सहायता समूह तथा ग्रामीण संस्थाऍ बनाकर स्वसशक्तिकरण करना ।

तकनीकि हस्तांतरण

सशक्त तकनीकि हस्तांतरण हेतु केन्द्र द्वारा निम्न कार्यक्रम लागू किये गये हैं :

- केन्द्र की संस्तुत तकनीकों का, उपेक्षित, अति पिछड़े तथा आदिवासी क्षेत्रों में प्रमुखता से प्रचार–प्रसार
- कृषक प्रक्षेत्र पर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन तथा कृषक भागीदारी द्वारा संस्तुत तकनीकों की स्थानीय उपयोगिता, मूल्यांकन, पुनर्निर्धारण एवं पुनर्स्थापन सुनिश्चित करना ।
- "प्रक्षेत्र दिवस", "किसान गोष्ठी" तथा "किसान मेलों" का आयोजन करना।

पौधा किस्म और कृषक अधिकार सरक्षंण अधिनियम

चरण सिहं, अरूण गुप्ता, दीपक, विनित कुमार, भूमेश कुमार, विकास गुप्ता, ज्ञानेन्द्र सिहं एंव जी पी सिहं

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत विश्व व्यापार संगठन के संस्थापक राष्ट्रों में से एक है तथा संगठन के द्वारा जारी किये गये घोषणा को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है। विश्व व्यापार संगठन के व्यापार संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स) समझौते पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् देश को अपने व्यापार संबंधित बौद्धिक सम्पदा के अंतर्गत पौधा किस्मों को संरक्षण देने के लिए अधिनियिम बनाया गया। इसके लिए देश के पास दो विकल्प थे या तो पौधों को संरक्षण देने के लिए अंतराष्ट्रीय संगठन यू.पी. ओ.वी. के नियमों को लागू करता या फिर वे अपने प्रकार का कोई अधिनियम बनाना। भारत ने अपने प्रकार का पौधा किस्मों को संरक्षण देने के लिए पी.पी.वी. एफ.आर.ए. अधिनियम 2001 लागू किया। जिसमें कृषकों के अधिकार पर विशेष बल दिया गया। इसका मुख्य उद्धेश्य था कि कोई अंतराष्ट्रीय या राष्ट्रीय कम्पनी उनका शोषण न कर सके।

भारत एक प्रधान देश है और किसानो को अन्नदाता के रूप में जाना जाता है। जिन्होने अपने कठिन परिश्रम से पीढी दर पीढी अपने देश की जैव विविधता को बनाए रखा है। आधुनिक समय से इस प्रतिस्पर्धा के इस दौर में किसानों की जैव सम्पत्ति को कोई अन्य अवैध रूप से उपयोग ना कर सकें इसके लिए किसानों के अधिकारों को इसमें सम्मिलित किया गया है। इस लेख में कृषकों, प्रजनकों तथा अनुसंस्थान कर्ताओं के अधिकारों की जानकारी दी जा रही है। भारत में पी.पी.वी.एफ.आर.ए. अधिनियम 2001 को लागू करने के लिए पी.पी.वी. प्राधिकरण की नई दिल्ली में स्थापना की गई है।

इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य हैं

- पौधो की किस्मों, किसानों और पौधे के प्रजनको के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक प्रभावी प्रणाली स्थापित करना और नई नई किस्मो के पौधे के विकास को प्रोत्साहन करना।
- नई किस्मो के विकास के लिए किसी भी समय सरंक्षण, उनमे सुधार और उपलब्ध आनुवंशिक ससांधन उपलब्ध कराने में उनके योगदान के सम्बंध में किसानों के अधिकारों का पहचानना और उनकी रक्षा करना।
- देश के विकास में तेजी लाना, पादप प्रजनकों के अधिकारों की रक्षा करना तथा पौधो की नई किसमों के प्रजनन के लिए सरकारी व निजी क्षेत्रों में अनुसधांन एंव विकास में किए जाने वाले निवेश को बढावा देना।
- देश में बीज उघोग की वृद्धि को सरल बनाना जो किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीज और रोपण सामग्री को आसानी से उपलब्ध करायेगा।

प्रधिकरण के सामान्य कार्य

- नई–पौधो की किस्मों का पंर्जीकृत करना
- नई पौधों की प्रजातियों के लिए डी0यू0एस0 (स्पष्टता, एकरूपता, स्थिरता) परीक्षण कराना
- पंजीकृत किस्मों का विकास और प्रलेखन विकसित करना।
- सभी प्रकार के पौधो के लिए अनिवार्य कैटलॉगिंग सुविधाँए प्रदान कराना।
- किसानों को किस्मों का प्रलेखन, अनुक्रमण और कैटलॉगिंग कराना।
- प्रगतिशील कृषकों की पहचान करके उन्हे पुरस्कृत करके प्रोत्साहित करना।
- आर्थिक पौधो और उनके जंगली पौधे आनुंवाशिक संसाधनो का सरंक्षण कराना।
- राष्ट्रीय–जीन बैंको का रखरखाव करना।
- परीक्षण दिशा निर्देश का विकास करना।

अधिनियम के तहत प्रजनक, अनुसंधान कृताओं के अधिकार

1. **प्रजनक के अधिकार** : इस अधिनियम के तहत एक प्रजनक के पास संरक्षित किस्म के उत्पादन, ब्रिकी , बाजार, वितरण, निर्यात के विशेष अधिकार होगें।

2. **अनुसधांन के अधिकर** : शोधकर्ता प्रयोग/अनुसधांन के लिए अधिनियम के तहत पंजीकृत किस्म का उपयोग अपने शोध के लिए कर सकते हैं।

3. कृषकों के अधिकार

पौध किस्म व अधिकार सरंक्षण अधिनियम के तहत जो व्यक्ति या समूह स्वंय खेतो की जुताई की फसल उगाता है। जो पांरपारिक अथवा जगंली प्रजातियो को अलग अलग कर या सामुहिक रूप से संरक्षित व सुरक्षित करता है व चयत करके उपयोगी गुणों को पहचान कर जगली–एंव पांरपारिक प्रजातियों में सुधार करता है। व्यक्ति समूह को किसान के रूप में परिभाषित किया जाता है। एक किसान जो नई किस्में विकसित करता है वह एक किस्म को ब्रीडर के रूप में पंजीकरण और संरक्षण के लिए हकदार है किसानों की किस्म को एक विलुप्त किस्म के रूप में भी पंजीकृत किया जा सकता है। किसान भाई पौध–किस्म और कृषक अधिकर सरंक्षण अधिनियम 2001 के तहत सरक्षित किस्मों के बीज का उपयोग करके इसे सरक्षित रख सकते है और पुनः उपयोग में ला सकते है। पी.पी.वी.एफ. आर अधिनियम –2001 के तहत किसान सुरक्षित किस्म के बीज का आदान प्रदान कर सकते हैं लेकिन ब्रांडेड बीज के रूप में बेच नहीं सकते।

किसानों के अधिनियम, 2001 की धारा 39(2) के तहत विभिन्न प्रकार के गैर–प्रदर्शन के लिए मुआवजा देने का भी प्रावधान है। अधिनियम के तहत प्राधिकरण/रजिस्ट्रार/ट्रिव्यूनल/उच्च–न्यायालय के सक्षम किसी भी कार्यवाही में किसी भी शुल्क का भुगतान करने के लिए किसान उत्तरदायी नहीं होगा। आनुवशिंक विविधता संरक्षण में किसानो की भूमिका स्वीकार करते हुए हर साल बीज खरीदने की क्षमता व सरक्षता को ध्यान में रखते हुए किसानो को निम्नलिखित अधिकार प्रदान किए गए है।

1. बीज पर अधिकार

किसानो को उनकी फसल का बीज बचाकर रखने, प्रयोग करने बुवाई करने हेतु उपयोग करने पुनः बुवाई के लिए आदान प्रदान और किसानों के साथ साझा कर सकतें है। लेकिन अधिनियम के अन्तगर्त पंजीकृत किस्म के ब्राडेंड बीज की ब्रिकी का अधिकार किसानों को नहीं होगा यहाँ पर ब्रांड युक्त बीज से तात्पर्य यह है कि जो पंजीकृत किस्म के बीज को पैकेट के अंदर रखा गया हो और लेबल लगातार बाजार में ब्रिकी के लिए उपलब्ध है।

2. नई किस्म के प्रजनक के रूप में किसानो का अधिकार

इस अधिनियम के तहत किसानों को ना केवल एक कृषक के रूप में बल्कि विभिन्न फसलों के जननद्रवय को सुरक्षित करने तथा फसलों क प्रजनकों के रूप में भी मान्यता देता है। कृषक किस्म से तात्पर्य उस किस्म से है जो किसानों द्वारा पांरपारिक रूप से उगाई, विकसित या संरक्षित की जाती है। किसानों द्वारा विकसित की गई नई नई किस्मों का पंजीकरण करने का हकदार होगा।

3. पंजीकृत किस्में के बीज प्राप्त करने का अधिकार

इस अधिनियम का उद्देश्य किसान भाईयों को गुणवत्ता वाले बीज एंव रोपण सामग्री उपलब्ध कराकर, विकास को बढावा देना है यदि कृषक लाईसेसं धारक, पंजीकृत किस्म के बीज की उपलब्धता से संतुष्ट नहीं होता और पंजीकरण के 3 साल बाद तक उचित मूल्य पर नहीं देते है तो कृषक बीज अनुपलब्धता का मुद्दा प्राधिकरण के सामने उठा सकते है और प्राधिकरण अनिवार्यता लाईसेंसिगं के तहत पंजीकृत किस्मों का बीज उपलब्ध करवा सकते हैं।

4. खराब गुणवतता वाले बीजो की क्षतिपूर्ति का अधिकार

इस अधिनियम के तहत, बीज कंपनियाँ पंजीकृत सामग्री किसानों को बेच सकते है। यदि किस्म अपनी शुद्धता के अनुरूप पूरा करने में विफल होती है तो किसान प्राधिकरण के समक्ष अपने क्षतिपूर्ण के लिए दावा कर सकता है और प्राधिकरण दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद, यदि उचित समझे तो किस्म प्रजनक को मुआवजे के भुगतान के लिए दिशा निर्देश जारी कर सकता है।

5. कृषकों को मुफ्त सेवांए प्राप्त करने का अधिकार

किसान को आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, प्राधिकरण ने किसानों को उनकी फसल की किस्म के पंजीकरण के लिए परीक्षण, नवीनीकरण, प्रतिपक्ष एंव लाभ में भागीदारी के लिए शुल्क भुगतान में छुट दी गई है इसके अतिरिक्त कृषकों एंव गाँव समुदायों को इस सबंध में किसी भी कार्यवाही के लिए अधिनियम के समक्ष शुल्क भुगतान करने का उत्तरदायी नहीं होगा।

6. भूलवशं/अनजाने में हुए किसी उल्लघंन के प्रति छुट

इस अधिनियम के तहत कृषकों द्वारा भूलवशं किसी अधिकार का उल्लंघन किये जाने पर उल्लघंन नहीं माना जाएगा अगर उल्लघंन के समय कृषक को किसी प्रकार के अधिकार की जानकारी नहीं थी।

7. शुल्क में छुट

कृषक या कृषक समुदाय को पंजीकरण के लिए

रजिस्ट्रार–न्यायधिकरण अथवा उच्च न्यायालय के समक्ष किसी भी कार्यवाही हेतु कोई भी शुल्क नहीं देना होगा।

8. पंजीकरण करवाने में लाभांश

अगर कोई प्रजनक या सस्ंथा किसी पंजीकृत कृषकए किस्म का उपयोग करता है या उससे कोई नई किस्में विकसित करता है। तो ऐसी परिस्थिति में प्रजनक या सस्ंथा को अपने लाभ में से एक हिस्सा उस किसान या किसान समुदाय को देना होगा जो परस्पर सहमति में तय होगा।

किसानों के ज्ञान को सराहना और पुरस्कार देना

किसानों ने प्राचीन समय से ही जगंली पौधो से खेती के लिए उपयुक्त पाये गये पौधो का चयन किया तथा उसमें सुधार किया और उनका उपयोग करके उनको सरंक्षण प्रदान किया तथा अपने भोजन की आवश्यक्ता की पूर्ति की कृषकों ने नई किस्मो के विकास मे अहम् योगदान दिया। कृषको ने यदि किसी फसल को कोई विशिष्ट किस्म को विकसित किया हो या उसके सरक्षण में अपना योगदान दिया है तो प्राधिकरण उसे पुरूस्कृत करके उनका हौसला बढाती है। जिससे भविष्य में फसल किस्म के कार्य में प्रोत्साहित होकर कृषक जैव सरक्षण में अपना योगदान दे सके।

किसानों को सरंक्षण कार्यकमों में योगदान के लिए पुरस्कृत करने का प्रावधान

पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम 2001 के अन्तर्गत किसानों एंव किसान समुदायों को प्रत्येक वर्ष निम्नलिखित पुरस्कार दिये जाते है।

1. पादप जीनोम सरक्षंक समुदाय पुरस्कार

इस पुरस्कार के अंतर्गत अधिकतम 5 किसान समुदायों को प्रशस्त्रि पत्र, स्मृति चिन्ह और 10 लाख रु प्रति समुदाय दिये जाते है।

2. पौधा संजीन उद्धारक कृषक पुरस्कार

इस पुरस्कार में अधिकतम् 10 किसानों को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और 1.5 लाख रूपये प्रति किसान दिये जाते है

3. पौधा संजीन उद्धारक कृषक

इस पुरस्कार में एक विन्तिय वर्ष में अधिकतम 20 किसानों को, प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और 1 लाख प्रति किसान दिये जाते है।

एक बार पुरस्कार प्राप्त होने के पश्चात कृषक अथवा कृषक समुदाय पुनः उसी श्रेणी का पुरस्कार प्राप्त करने का हकदार नहीं होता है।

वर्तमान में पी.पी.वी.एफ.आर. प्राधिकरण ने 156 फसलों में पंजीकरण आरम्भ कर दिया है। लेकिन यदि किसी किस्म/ पादप प्रजाति जिनमें विशिष्ट गुण उपलब्ध है और जो व्यवसायिक रूप से महत्वपूर्ण है। ऐसी किस्मे का किसान भाई प्राधिकरण के पंजीकरण करवा सकते है।

संरक्षित कृषि –बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का आधुनिक विकल्प

निधि कम्बोज, आर.के. शर्मा, आर.एस. छोकर, सुभाष चंद्र गिल, एस.सी. त्रिपाठी, राज पाल मीणा, विकास जून, संदीप कुमार एवं दिनेश चौधरी

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए आज के समय में पर्याप्त खाद्य पदार्थ प्राप्त करवाना एक बहुत ही बड़ी चुनौती है। किसान आज सघन कृषि को अपना कर अधिक से अधिक पैदावार पाने में तो कामयाब हुआ है, परन्तु इसके साथ ही सघन कृषि में बड़ी मात्रा में प्रयोग होने वाले बाहरी निवेशों जैसे कि अप्राकृतिक एवं कृत्रिम रसायनों, कीटनाशक, अकार्बनिक उर्वरक के प्रयोग से न केवल मिटटी की उपजता को बल्कि पर्यावरण को भी भारी नुकसान पहुँचता है। इसके अलावा ट्रैक्टर और अन्य मशीनरी का उपयोग जुताई से संबन्धित समस्याओ जैसे मिट्टी की समतल सतह बनाने, बुआई के लिए बैड तैयार करने, खरपतवारों को नष्ट करने, मिट्टी को भुरभुरा बनाने ताकि उसमें वायु, जल, ताप और प्रकाश का संचालन सफलतापूर्वक हो सके, खाद और उर्वरक को पौधे की जड़ क्षेत्र में पहुंचाने और कीटनाशकों को सक्रिय करने के समाधान के लिए किया गया था परन्तु लगातार कई वर्षों तक जुताई करने से मिट्टी के स्वास्थ्य पर इसके नकारात्मक प्रभाव अधिक होने लगे है, चूंकि जुताई से मिट्टी की संरचना भंग होता है जिससे मिट्टी की रन्ध्रता बाधित हो जाती है और एक हार्डपैन विकसित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप जड़ वृद्धि, फसल विकास और उपज पर भारी प्रभाव पड़ता है। गहन जुताई के अन्य बुरे प्रभावों में मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ में गिरावट, मिट्टी संरचनात्मकता में कमी, पानी और हवा का क्षरण तथा पानी के मिटटी में ठहराव की दर में कमी आदि सम्मिलित है।

किसानों को इस समय मिट्टी की उर्वरकता में कमी के अलावा और भी बहुत सी चुनौतियों का सामना करना पड रहा है इनमे मुख्य तौर पर जलवायु परिवर्तन है जिसके कारण बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा का होना, गरम हवाओं (लू) का चलना, बढ़ते चक्रवात तथा बाढ़ का आना आदि, शामिल है, जोकि फसलों की पैदावार को कम कर रहा है। इन सभी समस्याओं से निजात पाने के लिए हमें कृषि की पारंपरिक पद्धति को छोड़ कर संरक्षित कृषि के माध्यम से आने वाले समय में प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखते हुए एवं उत्पादकता लाभ के लिए खेती के तरीकों में सहायक बदलाव लाने चाहिए।

संरक्षित कृषि से अभिप्राय

संरक्षित खेती कृषि की उस पद्धति को कहा गया है जिसमें संसाधनों की बचत के साथ साथ कम लागत में अत्याधिक लाभ अर्जित करने के उपायों के माध्यम से सतत एवं उन्नत खेती की जा सकें। इस खेती में मुख्यता उन्ही कृषि क्रियाओं पर जोर दिया जाता है जो मिटटी के ऊपरी तथा अंदर होने वाली विभिन्न जैविक गतिविधियों को प्राकर्तिक रूप से बढ़ने दें तथा पर्यावरण पर कम से कम नकरात्मक प्रभाव डालें।

भारत में संरक्षित कृषि का स्थान

विश्व भर में संरक्षित खेती का स्तर सन् 2008 में 106 मिलियन हैक्टर से बढ़कर सन् 2018 में लगभग 162 मिलियन तक पहुँच गया है। संरक्षित खेती को पिछले 40 वर्षो से विश्व भर में कई देशों ने अपनी क्षमता तथा अनुकूलता के अनुसार अपनाया है। इन देशों में मुख्यतः संयुक्त राष्ट्र अमरिका,

वर्ष	क्षेत्र (मिलियन हैक्टर)
2008–2009	106
2010–2011	125
2011–2012	145
2013–2014	155
2015–2016	159
2017–2018	162

अर्जेंटीना, ब्राज़ील, ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा की भागीदारी पायी गयी है। संरक्षित कृषि हर प्रकार की जलवायु जैसे कटिबंधीय, उष्णकटिबंधीय, शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण इत्यादि में मिट्टी की उर्वरता बनाये रखने तथा इसके कटाव और क्षरण को कम करने एवं उत्पादन लागत को घटाने के लिए अपनाया जा सकता है। वर्ष 1962 में मिट्टी के कटाव की समस्या से निजात पाने तथा मिटटी को कृषि योग्य बनाये रखने के लिए ब्राज़ील ने संरक्षित खेती को अपनाने की शुरुआत की थी।

नब्बे दशक के शुरुआती दौर में गोविन्द बल्लभ पंत कृषि विश्वविद्यालय ने जीरो टिल सीड ड्रिल उपकरण का अविष्कार करके भारत में संरक्षित खेती का प्रारम्भ किया। उस समय जीरो टिल सीड ड्रिल को शून्य कर्षण के नाम से जाना जाता था। वर्तमान समय में भी भारत में संरक्षित कृषि का अधिक प्रचार नहीं हुआ है। किसानों को संरक्षित कृषि को अपनाने के लाभों से अवगत करवाने के लिए अनेक कृषि विश्वविद्यालय तथा संस्थान समय समय पर अपना योगदान दे रहे है। भारत में मुख्यतः संरक्षित खेती को गंगा–सिंधु घाटी के मैदानी इलाकों में जहाँ गेहूँ तथा धान की फसले प्रमुख है, में बड़े पैमाने पर अपनाया गया है। इन क्षेत्रो में गेहूँ की बिजाई के लिए जीरो टिल सीड ड्रिल उपयोग में ली जाती है जिससे किसानों को समय तथा लागत को बचाने में सहायता मिलती है।

संरक्षित कृषि के सिंद्धांत

संरक्षित खेती विशेष रूप से तीन सिंद्धान्तो पर आश्रित है

(1) न्यूनतम मिट्टी की गड़बड़ी

(2) फसल अवशेषों या कवर फसलों के माध्यम से मिट्टी को स्थायी रूप से ढ़कना

(3) अधिक उत्पादन के लिए फसल चक्र को अपनाना।

न्यूनतम जुताई तथा जीरो टिल से मिटटी की कम से कम गड़बड़ी

सघन जुताई से होने वाले विपरीत प्रभावों से मिट्टी की स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक है कि कम से कम जुताई की जाये या बिना जुताई के सीधे ही बीज की बिजाई की जाये। इससे मिट्टी में उपस्थित जीवाणुओं की क्रियाएं सुचारु रूप से प्रबल होती है तथा मिट्टी के कार्बोनिक संसाधनों की भी बचत होती है। इसके साथ ही मिटटी के आकर एवं छिद्रों को भी सबलता मिलती है जिससे मिट्टी में जल, वायु तथा पोषक तत्वों का संचार सही तरीके से होता है।

स्थाई रूप से मिट्टी को ढकें रखना

संरक्षित कृषि के दूसरे नियम के अनुसार मिट्टी की ऊपरी सतह को कम से कम 30 प्रतिशत फसल अवशेषों तथा अन्य कवर फसलों के साथ सदैव ढ़के रखना चाहिए। यह ढकी हुई फसल अवशेषों की परत मिटटी के लिए बचाव का कार्य करती है। यह परत मिट्टी में खरपतवारों की रोकथाम करती है तथा मिट्टी में जल का संरक्षण करती है। इसके साथ–साथ मिट्टी में उपस्थित जीवों तथा सूक्ष्म जीवों के लिए भोजन का साधन बनती है तथा मिट्टी की क्षरण होने की समस्या को भी दूर करती है।

फसल–चक्र को अपना कर फसल विविधता लाना

लम्बे समय से एक ही प्रकार की फसल–प्रणाली को अपनाते रहने से मिट्टी की उर्वरकता तो कम होती ही है साथ ही कीट पतंगो के अधिक मात्रा में पाए जाने का भी खतरा बढ़ जाता है। इसलिए संरक्षित खेती के लिए तीसरा नियम फसलों में फसल–चक्र के माध्यम से विविधता लाना है। धान–गहूँ के अलावा यदि दलहनी फसलें भी फसल–चक्र में शामिल की जाये तो यह न केवल मिट्टी की उर्वरकता बढ़ाते है अपितु कीटों के जीवन–चक्र को भी नष्ट कर उन्हें बढ़ने से रोकते है। फसल–चक्र में जल की अधिक मांग रखने वाली फसलों के बाद कम मांग वाली फसलों को उगाना चाहिए। इसी प्रकार अधिक पोषक तत्वों की मांग रखने वाली फसलों को कम पोषक तत्वों की मांग रखने वाली फसलों से बदल देना चाहिए। मिट्टी को क्षरण होने से बचाने के लिए उथली जड़ वाली फसलों को गहरी जड़ों वाली फसलों के साथ उगाना चाहिए।

उपरोक्त सभी सिद्धांतो के समावेश से संरक्षित कृषि के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कुछ आधुनिक उपकरणों का बहुत योगदान है।

जीरो टिल सीड ड्रिल मशीन

इस मशीन का प्रयोग धान की फसल की कटाई के बाद बिना खेत तैयार किये सीधे ही गेहूँ की बिजाई करने के लिए किया जाता है। इससे समय, ईंधन तथा पैसे की बचत

होती है और उत्पादन भी अधिक होता है। यह मशीन अमूमन सभी फसलों की बुआई के लिए प्रयोग की जाती है। धान की कटाई के उपरांत 4 से 5 दिनों में ही इस मशीन से गेहूँ की निर्धारित दुरी पर बुआई की जाती है। मशीन में यह दुरी इसके निर्माण के दौरान ही तय कर दी जाती है। इस मशीन में 9 से 11 फाड़े होते है जोकि आगे से नुकीले होते है और खेत में समान तथा सीधी कतारों का निर्माण करते है। प्रत्येक फाडे में एक प्लास्टिक की पाइप जुडी हुई होती है जो सभी कतारों में समान रूप से गेहूँ की बुआई करती है। इस मशीन के प्रयोग से किसानों का समय, मेहनत और पैसा इत्यादि की बचत होती है। यदि लागत मुल्य के पैमाने पर देखें तो 1800 से 2500 प्रति हेक्टेर जुताई खर्च कम लगता है और साथ ही उत्पादन अधिक मिलता है।

टर्बो हैप्पी सीडर

कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई करने के बाद बचे फसल अवशेषों का प्रबंधन करना किसानों के लिए एक बहुत ही बड़ी समस्या है। धान की कटाई के बाद गेहूँ की बुआई के लिए समय की कमी तथा अधिक से अधिक लागत से बचने के लिए किसान खेतों में ही फसल अवशेषों को जला देते है जो पर्यावरण प्रदूषण का कारण तो बनते ही है साथ में मिट्टी के सूक्ष्म जीवों को भी खत्म कर देते है। इस समस्या से बचने के लिए टर्बो हैप्पी सीडर का इस्तेमाल किया जा सकता है। टर्बो हैप्पी सीडर के उपयोग से फसल अवशेषों के साथ ही बिना जुताई के ही बीज को बोया जा सकता है। हैप्पी सीडर में दो इकाइयां मौजूद होती है एक भूसा इकाई और दूसरी बुआई इकाई। बुआई इकाई से कतारों में बीज बोया जाता है तथा भूसा इकाई बीज बोई जाने वाली कतार में उपस्थित फसल अवशेषों को घूमने वाली लोहे की पत्ती की सहायता से 5 से 7 सेंटीमीटर की उचाँई से काट कर बोये हुए बीज के ऊपर फैला देता है। इससे बीज को संरक्षण मिलता है। यह मशीन पी.टी.ओ ट्रैक्टर से 45 हॉर्स पावर से संचालित किया जाता है। हैप्पी सीडर से किसानों की खाद तथा बीज की बुआई लागत भी कम लगती है।

लेज़र लैंड लेवलर

समतल भूमि अच्छी पैदावार के लिए बुनियादी जरूरत है। एक समतल भूमि में जल का, बीज का तथा खाद का वितरण समान रूप से होता है। लेज़र लैंड लेवलर लेज़र बीम की मदद से भूमि को समतल बनाता है। लेज़र लैंड लेवेलर में कई इकाइयां होती है जैसे लेज़र ट्रांसमीटर जो लेज़र बीम को निकलता है, लेज़र रिसीवर जो बीम को रिसीव करता है, इलेक्ट्रॉनिक मेनुअल कंट्रोल बॉक्स जो की ट्रैक्टर ड्राइवर की गद्दी के पास जुड़ा होता है तथा बकेट स्क्रेपर जो हैड्रॉलिक की सहायता भूमि को समतल बनती है। यह बकेट स्क्रेपर उचाई वाली जगह से मिट्टी को हटा कर ढलान वाली जगह पर डाल देती है और पुरे खेत को एक निश्चित डिग्री पर समतल कर देती है।

मल्टीक्रॉप प्लांटर

यह मशीन मटर, मूंगफली, सूरजमुखी, मक्का, चना, कपास, इत्यादि की बिजाई के लिए उपयोगी है। इसमें लगी विभिन्न आकार वाली डिस्क के प्रयोग से कतार से कतार तथा पौधे से पौधे की दुरी को निश्चित किया जाता है। इसमें लगे रीज़र की सहायता से खेत में बुआई के साथ–साथ नालियों का भी निर्माण हो जाता है जोकि वर्षा के समय में अधिक पानी के निकासी में लाभकारी होती है। इसके प्रयोग से उत्पादन में 18 से 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

पैड्डी बेलर

यह मशीन धान की पराली को काट कर तथा संकुचित कर उसके गट्ठर बनता है। इन गट्ठरों का आसानी से परिवहन कर सकते है। इनका भंडारण भी आसान हो जाता है जिससे इन्हे बाद में अनेक कार्यो के लिए प्रयोग किया जाता है जैसे की मशरूम उत्पादन में, विधुत उत्पादन में तथा ईंधन की तरह। यह मशीन आठ घंटो में 400 से 600 गट्ठर बनाने की क्षमता रखती है तथा प्रत्येक गट्ठर का भार लगभग 30 से 35 किलोग्राम तक होता है।

स्ट्रॉ रीपर

स्ट्रॉ रीपर के प्रयोग से कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई के बाद बचे हुए गेहूँ के अवशेषो को काटकर बारीक़ भूसे में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस मशीन की औसत क्षमता 0.4 हैक्टर प्रति घंटा है तथा 50–60 प्रतिशत पुआल वसूल किया जा सकता है। इस मशीन की सहायता से खेत में बिखरे भूसे से अनाज निकालने पर 1 से 5 प्रतिशत अनाज बेकार होने से बचाया जा सकता है।

निष्कर्ष

संरक्षित कृषि एक साथ संसाधनों के संरक्षण एवं उनके कुशल उपयोग, मिट्टी की गुणवत्ता तथा उत्पादन क्षमता और पर्यावरण की स्वच्छता को बनाते हुए निरंतर उत्पादकता वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती है। उपरोक्त सभी आधुनिक तकनीकों पर आधारित उपकरणों का इस्तेमाल करके हम संरक्षण खेती को अपना सकते है तथा वर्तमान के साथ–साथ आने वाली पीढ़ी को भी सुरक्षित एवं सतत कृषि प्रदान कर सकते है।

गन्ना की फसल में हानिकारक कीटों की पहचान, नुकसान पहुँचाने के लक्षण एवं उनका प्रबंधन

महासिंह जागलान व अश्वनी कुमार[1]

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
[1]धान अनुसंधान केन्द्र, कौल (कैथल). 132021

गन्ना भारत की नकदी फसलों में से एक मुख्य फसल है। इसके अंतर्गत हरियाणा प्रांत में लगभग 1.30 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल है। हरियाणा में गन्ना की फसल में बहुत से कीड़े लगते हैं। हरियाणा की जलवायु कीटों के पलने–बढ़ने के लिए अनुकूल होने के कारण कीटों के लिए आसानी से भोजन उपलब्ध रहता है तथा बुआई से कटाई तक विभिन्न कीटों के आक्रमण से काफी नुकसान होने की संभावना रहती है। अतः प्रस्तुत लेख में दिए गए सुझाव अपनाकर गन्ना की फसल में हानिकारक कीटों की पहचान एवं एकीकृत प्रबन्ध कर सकते हैं और निश्चित तौर पर अंधाधुंध कीटनाशकों का प्रयोग कम कर सकते हैं। इसलिए गन्ना फसल के मुख्य कीटों की पहचान, नुकसान पहुँचाने के लक्षण तथा उनके प्रबंधन का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है।

1. जमीन के अन्दर रहकर गन्ने के जमीन के भाग को नुकसान पहुंचाने वाले कीट

दीमक : इस कीट के मटमैले भूरे रंग के पंखरहित प्रौढ़ व बच्चे मिट्टी की सुरंग अथवा बाम्बी में रहते हैं। बिजाई के तुरन्त बाद ही दीमक बीज की आंखों व सिरों को खोखला कर देती हैं। ये फुटाव पश्चात् पौधों के जमीन के अन्दर के भाग को खाती हैं, जिससे पौधे सूख जाते हैं व खींचने पर जमीन से आसानी से निकल आते हैं। बरसात उपरान्त

दीमक से ग्रसित पौधे

दीमक से ग्रसित पौधे

गन्ना फसल पर आक्रमण से पत्ते पीले पड़ कर सूख जाते हैं व बाद में पूरा गन्ना ही सूखकर गिर जाता है। गन्ने की पोरियां खोखली हो जाती हैं व जड़ की तरफ से मिट्टी से भर जाती है। इनका हमला अक्सर गर्म शुश्क व रेतीले इलाकों में अधिक पाया जाता है। कच्ची गोबर की खाद के इस्तेमाल से व खेत में फसल अवशेश छोड़ने से दीमक खेतों में पहुंच जाती है।

सफेद लट : सफेद लट का आक्रमण रेतीली जमीनों में जुलाई से अक्तूबर तक रहता है। मानसून की पहली बारिश के होने पर इस कीट के प्रौढ़ जमीन से निकलकर खेतों के आसपास बेर, जामुन, नीम आदि वृक्षों पर बैठ जाते हैं। मादा कीट जमीन में अण्डे देती है। इनसे निकली सूण्डियां अर्धविराम आकार की होती हैं जो गन्ने को जमीन के अन्दर के भाग को खाकर फसल को नुकसान पहुॅचाती हैं। ऐसे पौधे सूख कर गिर जाते हैं। इस कीट की वर्ष में एक ही पीढी होती है।

2.पौधे के विभिन्न भागों के बेधक कीट

कनसुआ : इसके प्रौढ़ मटमैले भूरे रंग के तितलीनुमा होते

कन्सुआ कीट से ग्रसित पौधे

हैं। मादा पत्तियों की निचली सतह पर समूह में भूरे–सफेद रंग के अण्डे देती है, जिनसे निकली सूण्डियो के शरीर पर लम्बाई के बल पांच गहरी धारियां होती हैं। सूण्डियां जमीन की सतह या थोड़ा नीचे जाकर तने में घुसकर पौधों को खाती हैं जिस कारण पौधों की गोभ मर जाती है। सूखी गोभ खींचने पर आसानी से बाहर आ जाती है व इसमें शराब जैसी दुर्गन्ध आती है। कन्सुआ का प्रकोप गर्म व शुश्क मौसम (अप्रैल से जून) में फसल की प्रारंभिक अवस्था में सर्वाधिक होता है। गेहूं के बाद बोई फसल में इस कीट का हमला सर्वाधिक होता है। अधिक आक्रमण की हालत में खेत में पौधों की संख्या कम हो जाती है जिसकी वजह से पैदावार में कमी आ जाती है।

जड़ बेधक : इसकी सूण्डियां जड़ को नहीं खातीं अपितु जड़ के ऊपर के भाग में सुरंग बनाकर तन्तुओं को खाती हैं। ग्रसित पौधों के बाहर के पत्ते पहले सूखते हैं व बाद में गोभ सूख जाती है जो खींचने पर आसानी से बाहर नहीं निकलती और न ही पौधा खींचने पर उखड़ता। इसकी सूण्डी दूधिया रंग की व बिना धारी के होती हैं। यह कीट

जड़ बेधक कीट से ग्रसित गन्ना व कीट की सूंडी

गन्ना फसल को प्रारंभिक अवस्था में कम परन्तु बरसात के बाद अधिक प्रकोपित करता है। सूखे की अवस्था में फसल पर इसका प्रकोप बढ़ जाता है। वर्षाकाल के बाद जड़ बेधक के आक्रमण से पत्ते पीले पड़ जाते हैं व पौधे की बढ़वार रुक जाती है जिससे पैदावार में कमी आती है।

चोटी बेधक (टॉप बोरर) : इस कीट की पहली व दूसरी पीढ़ी बरसात से पहले तथा तीसरी व चौथी पीढ़ी बरसात के बाद हमला करती है। इस कीट की सफेद रंग की मादा तितली की पीठ के पीछे कत्थई रंग के बालों का गुच्छा होता है। अण्डे पत्तों पर समूह में होते हैं जो कत्थई रंग के बालों से ढके होते हैं। अप्रैल से जून तक ग्रसित पौधों को जमीन की सतह से गहरा काटकर नष्ट कर दें। पत्तों पर चिपके कत्थई रंग के बालों के गुच्छों से ढके अण्ड–समूहों को भी इस दौरान इकट्ठा करके नष्ट कर दें। सूण्डियां पत्तों की मध्य शिरा में सुरंग बनाकर गन्ने की चोटी में घुस जाती हैं। छोटे ग्रसित पौधों की गोभ कानी हो जाती है और ऐसे पौधे बाद में सूख जाते हैं। जुलाई से सितम्बर में इसके आक्रमण से ऊपर की पोरियों की आंख फूट जाती है जिस कारण चोटी में अगोलों का झुण्ड नजर आता है। इसे 'बन्ची टॉप' कहते हैं। फसल में इस कीट का आक्रमण 'बन्ची टॉप' की वजह से आसानी से पहचाना जा सकता है। ग्रसित फसल की पैदावार तथा चीनी में कमी आती है।

तराई बेधक (स्टॉक बोरर) : इसकी सूण्डी के शरीर पर लम्बाई में पांच धारियां होती हैं। फसल की प्रारंभिक अवस्था में पहली व दूसरी पीढ़ी से ग्रसित पौधे पूरे सूख जाते हैं। वर्षाकाल के बाद सूण्डियां पोरियों में घुसकर अन्दर ही अन्दर सुरंग बना कर खाती रहती हैं। खाया हुआ

गन्ना अन्दर से लाल हो जाता है। गिरे हुए गन्ने, ज्यादा सिंचाई व अधिक नत्रजन प्रयोग से इस कीट का प्रकोप बढ़ता है। अधिक चीनी वाली, रसीली व नरम किस्मों में यह कीट अधिक लगता है।

गुरदासपुर बेधक : इस कीट का हमला फसल में जून अन्त से सितम्बर अन्त तक रहता है। अण्डों से निकली छोटी–छोटी सूण्डियां ऊपर की कच्ची पोरियों (पहली से चौथी पोरी) की आंख में सुराख बना कर पोरी को छल्लेनुमा ढंग से खाती है। इसकी सूण्डी के शरीर पर लम्बाई के बल चार लम्बी, गहरी जामुनी रंग की धारियां होती हैं। छोटी सूण्डियां ऊपर की कच्ची पोरियों में आंख के रास्ते घुस कर छल्लेनुमा ढंग से खाती हैं।पहले बीच का पत्ता व बाद में पूरी चोटी सूख जाती है। थोड़ा झटका देने पर गन्ना खाई हुई जगह से टूट जाता है। सितम्बर अंत में तीसरी पीढ़ी की सूण्डियां जमीन के अन्दर की पोरियों में सुराख कर अगले साल मानसून आने तक सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है जिससे यह कीट एक फसल से दूसरी फसल तक फैलता है। राज्य में इस कीट का प्रकोप यमुनानगर व अम्बाला जिलों तक सीमित था परन्तु अब यह कीट हरियाणा के लगभग सभी जिलों में फैल गया है।

3.पौधे के विभिन्न भागों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाने वाले कीट

काली कीड़ी : इसके प्रौढ़ छोटे, काले रंग के व पंखों वाले होते हैं, जबकि शिशु गुलाबी व काले रंग के तथा बिना पंख वाले होते हैं। यह गोभ के अन्दर छुपकर रस चूसते हैं जिस कारण पत्ते पीले पड़ जाते हैं व उन पर आंख जैसे लाल धब्बे पड़ जाते हैं। इसका प्रकोप अक्सर गर्मी व शुश्क मौसम (मई–जून) में मोढ़ी फसल में अधिक पाया जाता है। प्रभावित फसल की बढ़वार में कमी आती है तथा देख कर लगता है जैसे फसल में नत्रजन की कमी हो गई है। मोढ़ी फसल में समय पर रोकथाम न होने की वजह से यह कीट बौअड़ फसल पर चला जाता है।

पायरिल्ला : पायरिल्ला जिसे अल या फड़का भी कहते हैं, हर पांच–सात साल में महामारी के रूप में हमला करता है। इसके प्रौढ़ भूसे जैसे रंग के व नुकीले सिर वाले होते हैं। मादा अल पत्तों पर समूहों में अण्डे देती है। यह अण्डे हल्के हरे–सफेद रंग के व लाइनों में होते हैं जो सफेद बालों से ढके होते हैं। इनके शिशु भूरे–सफेद रंग के होते हैं जिनकी पीठ के पीछे दो धागे जैसे लम्बे पर होते हैं। प्रौढ़ व बच्चे दोनों ही पत्तों का रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं और बाद में सूख जाते हैं। यह कीट मलमूत्र के रूप में एक चिपचिपा–सा रस निकालते हैं जो पत्तों पर चिपक जाता है। इस रस पर काली फफूंदी लग जाती है जो पत्ते को ढक लेती है व इससे प्रकाश संश्लेषण में बाधा पहुंचती है। पायरिला का अधिक हमला होने से गन्ने की बढ़वार रूक जाती है तथा गन्नों में चीनी की मात्रा कम हो जाती है।

सफेद मक्खी : यह कीट अगस्त से अक्तूबर तक फसल पर आक्रमण करता है। सूखे तथा बाढ़ दोनो अवस्थाओं में इसका प्रकोप ज्यादा होता है। इसकी दो जातियां गन्ना फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। 'आलीरोलोबस बेरोडेनसिस' की पहचान पत्तों पर चिपके सफेद छोटे–छोटे निशानों से होती है, जबकि 'निओमसकेलिया बरगाई' के चकत्ते छोटे–छोटे व काले रंग के होते हैं। इस कीट के बच्चे पत्तों का रस चूसते हैं, जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं तथा अधिक आक्रमण होने पर सूख जाते हैं। यह कीट एक चिपचिपा पदार्थ भी छोड़ते हैं जिस पर काली फफूंदी लग जाती है जो प्रकाश संश्लेषण में बाधा पहुंचाती है। मोढ़ी की फसल में कम नत्रजन व कम सिंचाई की अवस्था में भी यह काफी नुकसान पहुंचाता है।

अष्टपदी (माइट) : आठ टांगों वाली रेड माइट आंखों से साधारणतया नहीं दिखती। यह पत्तों की निचली तरफ जाले में पलती है। इनके द्वारा रस चूसने की वजह से पत्तों पर लाल लम्बी धारियां पड़ जाती हैं। गन्ना फसल पर कभी–कभी सूखे की अवस्था में जालेवाली या पीली अश्टपदी का भी आक्रमण पाया जाता है। इसका हमला फसल पर बरसात व बरसात के बाद के मौसम में पाया जाता है। सूखे की अवस्था में यह पत्तों की उल्टी तरफ पत्ते की लम्बाई के बल लाइन में जाले बना कर पत्तों का रस चूसते हैं। ग्रसित फसल के पत्तों पर सफेद गोल–गोल मोती के आकार के धब्बे लम्बाई के बल कतारों में पाये जाते हैं। अधिक आक्रमण होने पर पत्ते सूख जाते हैं व फसल की बढ़वार पर असर पड़ता है।

चुरड़ा (थ्रिप्स) : यह कीट काले रंग के पतले व बहुत छोटे आकार के होते हैं जो पौधों की गोभ में छुपकर रस चूसते हैं। ग्रसित फसल के पत्तों की नोक सूखकर अन्दर की ओर मुड़ जाती है। इस कीट का आक्रमण मई से जुलाई के महीनों में सूखे की अवस्था में कभी–कभी होता है। ग्रसित पौधों के पत्तों की चोटी सूख जाती है गर्मी के मौसम में समय पर सिंचाई देने से इस कीट से फसल का बचाव हो जाता है।

स्केल कीट : अभी तक यह कीड़ा सोनीपत और

गन्ने पर काली कीड़ी के प्रौढ व काली कीड़ी से ग्रसित

फरीदाबाद जिलों तक ही सीमित है। इस कीट का आक्रमण गन्ने में पोरी बनने के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है।यह कीड़ा विशेषतः गन्ने के निचले भाग को अधिक प्रभावित करता है जिसके फलस्वरूप इसके गुण व शर्करा प्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके शिशु पोरियों पर झुण्ड के रूप में चिपक जाते हैं व बाद में अपने शरीर पर मोम की तह जमा लेते हैं। बच्चे पोरियों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं।

4. पत्तों को खाकर नुकसान करने वाले कीट

टिड्डे : कभी–कभी मई से जुलाई के महीनों में भारी बरसात होने के कारण टिड्डे कुछ इलाकों में टिड्डी दल का रुप धारण कर गन्ना फसल में नुकसान पहुॅचाते हैं। इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ पौधों के पत्तों को खाते हैं। टिड्डे की विभिन्न प्रजातियों में से ''फड़का'' (हीरोगलाइफस नाइगरेपलेटस) फसल को छोटी अवस्था से लेकर पूरे वृद्धिकाल तक हानि पहुँचाता है। शिशु और प्रौढ़ पत्तों को किनारों से खाते हैं, जिससे भारी प्रकोप की अवस्था में पत्तों की केवल मध्य शिराएं और कभी–कभी तो केवल पतला तना ही रह जाता है, फसल छोटी रह जाती है। इस कीड़े की एक और प्रजाति (हीरागलाइफस बनीइन), जिसके शिशु व प्रौढ़ हरे रंग के होते हैं, भी मिलती है परन्तु इसकी संख्या पहली प्रजाति की अपेक्षा कम होती है। पत्ती बिछाई गई मोढ़ी की फसल पर यह कीट ज्यादा नुकसान करता है। इस कीड़े का प्रकोप फरीदाबाद, पलवल और आसपास के क्षेत्रों में अधिक है जो कि अन्य क्षेत्रों में बढ़ रहा है।

कीट प्रबंधन के उपाए

गन्ना फसल में हानिकारक कीटों की रोकथाम के लिए उनके प्रबंधन का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है।

फरवरी–मार्च

दीमक, कन्सुआ व जड़ बेधक – दीमक, कन्सुआ व जड़ बेधक से बचाव के लिए बिजाई के समय पोरियों को खुड्डों में डालकर सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक से उपचार करें। बिजाई के समय खुड्डों में पोरियों के ऊपर प्रति एकड़ 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस (डरमेट/डर्सबान/ क्लासिक/राडार/ लीथल) 20 ई.सी. या 600 मि.ली. फिप्रोनिल(रीजेन्ट) 5 एस. सी. (रेतीली मिट्टी के लिए 700 मि.ली.) का 600– 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर फव्वारे से छिड़कें अथवा 150 मि.ली ईमीडाक्लोप्रिड (कान्फीडोर 200 एस. एल. या इमिडागोल्ड 200 एस. एल.) को 250–300 लीटर पानी में मिलाकर खुड्डों में पोरियों के ऊपर नैपसैक पम्प से छिड़काव करें अथवा 8 कि. ग्रा. डर्सबान 10 जी. (दानेदार) या 10 कि.ग्रा. फिप्रोनिल (रीजेन्ट) 0.3 जी. (रेतीली मिट्टी के लिए 12 कि.ग्रा.) प्रति एकड़ का खुड्डों में भुरकाव करें। जहां दीमक की समस्या गंभीर नहीं है वहां 1.5 लीटर अमृतगार्ड 0.03 प्रतिशत को 600 लीटर पानी में मिलाकर खुड्डों में पड़े बीज पर फव्वारे से छिड़कें। उपचार के तुरन्त बाद सुहागा लगाकर खुड्डों को बंद कर दें ताकि कीटनाशक का असर कम न हो।

अप्रैल–जून

दीमक, कन्सुआ व जड़ बेधक : बुआई के समय बीज व मिट्टी का उपचार न होने की अवस्था में तथा मोढी की फसल में ऊपर लिखे कीटनाशकों में से कोई एक कीटनाशक पानी के साथ लगायें। मई–जून के महीनों में

औसतन दस दिन के अन्तर पर पानी लगााने से कन्सुआ व दीमक के आक्रमण से बचाव होता है और साथ ही फसल की अधिक बढवार व फुटाव होने से पैदावार में वृद्धि होती है। मई के महीने में हल्की मिट्टी व जून में भारी मिट्टी चढाने से कन्सुआ की रोकथाम होती है। ऐसा करने से कन्सुआ के प्रौढों का पौधों से बाहर निकलने का रास्ता बन्द हो जाता है तथा पौधे के अन्दर ही उनकी मृत्यु हो जाती है।

कन्सुआ व चोटी बेधक : अप्रैल से जून के समय में समय–समय पर बेधक कीटों से ग्रसित पौधों को खेत से निकाल कर नश्ट करें इससे इन कीटों की संख्या में कटौती होती है।

काली कीड़ी : मोढी फसल में इस कीट की रोकथाम के लिए मध्य मई तक प्रति एकड़ 400 मि.ली. फेन्थोएट (एलसान/फैंडाल/सुमिथियॉन) 50 ई.सी या 160 मि.ली. डाईक्लोरवास 76 ई.सी या 400 मि.ली. क्लोरपाइरीफास (डर्सबान) 20 ई.सी. को 400 लीटर पानी में घोल कर फुट या राकिंग पम्प से इस तरह से छिड़काव करें ताकि कीटनाशक गोभ के अन्दर पहुॅचे ताकि दिन के समय इनमें छिपे काली भुंडी के शिशु व प्रौढ़ खत्म हो जाएं। कीटनाशक के घोल में 10 किलो यूरिया प्रति एकड मिलाने से फसल को फायदा मिलता है। अगर यह कीट पूरी तरह से खत्म नहीं हुआ हो तो 25–30 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें। बौअड़ फसल पर इस कीट का हमला होने पर भी मई–जून में इसकी रोकथाम ऊपर बतलाये गये ढंग से अवश्य कर लें नही तो सूखे की अवस्था में यह कीट सितम्बर–अक्तूबर तक फसल को नुकसान पहुॅचा सकता है तथा इस समय इसकी रोकथाम भी कठिन हो जाती है क्योंकि फॅसल ऊॅची होने के कारण छिड़काव करना कठिन हो जाता है।

पायरिला, अ□टपदी (रेडमाईट) व चुरड़ा (थ्रीप्स) : पायरिला कभी–कभी अप्रैल–जून के महीनों में फसल को नुकसान पहुॅचा सकता है। इसके लिए 400 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान/मैलटाफ) 50 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें परन्तु इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब परजीवी खेतों में नहीं हो। लाल अश्टपदी का अधिक आक्रमण होने की स्थिति में 600 मि.ली. डायमैथोएट (रोगोर) 30 ई.सी को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यह कीटनाशक फसल में चुरड़ा की भी रोकथाम करते हैं।

अप्रैल–अक्तूबर

चोटी बेधक (टॉप बोरर) : अप्रैल से जून तक ग्रसित पौधों को जमीन की सतह से गहरा काटकर नश्ट कर दें। पत्तों पर चिपके कत्थई रंग के बालों के गुच्छे से ढके अण्ड–समूहों को भी इस दौरान इकटठा करके नश्ट करें। अप्रैल अंत से मई के प्रथम सप्ताह तक प्रति एकड़ 150 मि. ली. राईनेक्सीपायर (कोराजन) 20 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर पीठ वाले पंप से मोटा फव्वारा बनाकर फसल के जड़ क्षेत्र में डालकर सिंचाई करें। इससे चोटी बेधक के साथ कनसुआ की रोकथाम भी हो जाती है। ऐसे खेतों में जहां इस कीट का आक्रमण जून के अन्त में 15 प्रतिशत से अधिक हो, 13 किलो कार्बोफ्यूरान (फयूराडान) 3–जी प्रति एकड़ यूरिया खाद की तीसरी व अन्तिम खुराक के साथ मिला कर खुड्डों के साथ–साथ डालें तथा हल्की सिंचाई करें। यदि मई के महीने में मोढी व शरद्कालीन फसल में इस कीट का आक्रमण 5 प्रतिशत से अधिक हो तब भी इनमें से किसी एक कीटनाशक का प्रयोग करना चाहिए।

जुलाई–नवम्बर

पायरिला : मौसम में बदलाव के कारण किन्हीं–किन्हीं सालों में पायरिल्ला इस समय महामारी का रूप धारण कर लेता है। परन्तु इस समय आमतौर पर इस कीट के अण्डों, बच्चों (निम्फ) तथा प्रौढ़ के परजीवी भी खेत में मौजूद रहते हैं। अण्डे के परजीवी पायरिल्ला के अण्डों के अन्दर ही पलते हैं, जिसकी वजह से पायरिल्ला के अण्डों का रंग दूधिया से बदल कर भूरा, गुलाबी मटमैला या काला हो जाता है। बच्चों के परजीवी पायरिल्ला के बच्चों के शरीर पर चिपके काले उभरे हुए धब्बे की शक्ल में नजर आते हैं। इसी प्रकार शिशु व वयस्क परजीवी पायरिल्ला के बच्चों व प्रौढ़ के शरीर पर तथा गन्ने के पत्तों पर चिपके सफेद उभरे हुए धब्बे के रूप में नजर आते हैं। अण्डे के परजीवी का नाम टैटारासटिकस पायरिली तथा काइलोन्यूरस पायरिली हैं। इनके अलावा पायरिला के बच्चों पर लकटोड्राईनस पायरिली परजीवी पाया जाता है। एपीरिकेनिया मैलेनाल्युका नामक परजीवी पायरिला के बच्चे व प्रौढ़ दोनों को परजीवीकृत करता है। प्रत्येक अण्डे का परजीवी अपनी उम्र में 20–25 अण्डों का परजीवीकरण करता है और इस प्रकार अण्डे के एक जोड़े परजीवी से एक महीने में एक हजार जोड़ा परजीवी का बन जाता है। इपीरिकेनिया परजीवी की अण्डों से निकली सुण्डियां पायरिला के बच्चों व प्रौढ़ की टांगों से चिपक कर उनकी पीठ तक पहुँच जाती है। पीठ पर चिपकी हुई यह सूण्डियां सफेद उभरे हुए धब्बों के रूप में दिखाई देती हैं। ये सब परजीवी मिलकर

पायरिल्ला की कुदरती तौर पर सही रोकथाम कर लेते हैं। परन्तु कई बार खेत में इनकी संख्या (गिनती) पायरिल्ला की संख्या के मुकाबले कम होने के कारण सही व समय पर रोकथाम नहीं हो पाती है और फसल में नुकसान हो जाता है। ये परजीवी पायरिल्ला से ग्रसित ज्वार, बाजरा व मक्की की फसल में भी काफी संख्या में पाये जाते हैं। पायरिल्ला से ग्रसित गन्ना फसल में इनकी संख्या बढ़ाने के लिए इन फसलों से इकट्ठा करके परजीवियों को गन्ना फसल में छोड़ना चाहिये। ये सभी परजीवी सोनीपत, शाहबाद, महम व जीन्द चीनी मिल में स्थित बायोलोजिकल कंट्रोल लैबोरेट्री में पाले जाते हैं। यहां से इनको गन्ना मिलों तथा किसानों को पायरिल्ला से ग्रसित खेतों में छोड़ने के लिए दिया जाता है। यदि किसी कारणवश परजीवी न प्राप्त हो सकें तब पायरिल्ला के बढ़ते हुए आक्रमण को रोकने के लिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए 400–600 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान/ मैल्टाफ) 50 ई.सी. को 400–600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से फसल में बढ़वार के अनुसार छिड़काव करें।

गुरदासपुर बोरर : जुलाई से सितम्बर तक हर सप्ताह इस कीट से ग्रसित पौधों के ऊपर की तीन चार पोरी तक चोटी के भाग को काटकर खत्म कर दें।

जड़ बेधक : ग्रसित फसल की समय पर सिंचाई करते रहें तथा अगस्त में 8 किलो क्विनलफास 5–जी प्रति एकड़ खुड्डों के साथ–साथ डाल कर सिंचाई दें।

सफेद मक्खी : इस कीट की रोकथाम के लिए 800 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान/मैलटॉफ) 50 ई.सी या इतनी ही मात्रा में 600 मि.ली. डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ईसी. को 400 लीटर पानी में घोल कर प्रति एकड़ छिड़काव करें घोल में दस किलो यूरिया मिला कर छिड़काव करने से पत्तों पर हरापन जल्दी ही वापिस लौट आता है तथा फसल को फायदा मिलता है।

तराई बेधक : तराई बेधक की रोकथाम के लिए मध्य जुलाई से अक्तूबर तक इस कीट के अण्डों के परजीवी ट्राईकोग्रामा काईलोनिस को दस दिन के अंतर पर प्रति एकड़ बीस हजार परजीवी के हिसाब से छोड़ें। यह परजीवी सोनीपत, महम, जीन्द व शाहबाद चीनी मिलों में स्थित बायोलोजिकल कन्ट्रोल प्रयोगशालाओं मे पाले जाते हैं। एक 'ट्राइको' कार्ड पर एक एकड़ के परजीवी चिपकाए जाते हैं। कार्ड का छोटे–छोटे टुकडों में काटकर प्रति एकड़ 35–40 स्थानों पर गन्नों के नीचे के पत्तों के उल्टी तरफ लगाएं अथवा अगोले में टांगें। इस समय फसल में कीटनाशकों का प्रयोग न करें।

सफेद लट : मानसून की पहली बारिश के समय पेड़ों पर इकटठा हुए कीट के प्रोढों को रात के समय इकट्ठा करके नश्ट करें तथा ग्रसित फसल की मोढी न लें और धान के साथ फसल चक्र अपनाने से इस कीट से राहत मिलती है।

दिसम्बर–मार्च

तराई बेधक व दीमक : फसल की कटाई के बाद सूखे गन्ने व सूखी पत्ती आदि को कम्पोस्ट बनाने के लिए इस्तेमाल करें। फसल अवशेश खेत में पड़े रहने से दीमक व बेधक कीटों को बढ़ावा मिलता है।

सकेल कीट :

सकेल कीट से ग्रसित फसल की पिड़ाई जल्दी करनी चाहिये। अधिक ग्रसित फसल की मोढी नहीं रखनी चाहिए। इसे फैलने से रोकने के लिए ऐसे इलाकों से बीज नहीं लेना चाहिए जहॉ इस कीट का प्रकोप हो या फिर बीज को 0.1 प्रतिशत मैलाथियान (20 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. + 10 लीटर पानी) के घोल में 20 मिनट तक भिगों लें। कीड़ा ग्रस्त क्षेत्रों में केवल एक मोढ़ी ही लें। कटाई के तुरन्त बाद सभी पत्तियों व नये फुटावों को खेत में ही नश्ट कर दें। गन्ने के निचले भाग से 2 से 3 बार पत्तियां उतार दें (जब कीड़े का आक्रमण शुरू हो और फिर जब फसल 6 व 8 महीने की हो)। यदि सम्भव हो तो पत्ती उतारने के बाद 0.1 प्रतिशत मैलाथियान का छिड़काव करें। उन कीड़ाग्रस्त क्षेत्रों से, जहां पानी खड़ा रहे, पानी को अवश्य निकाल दें।

अप्रैल –नवम्बर

टिड्डे :

इस कीड़े की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. या 800 मि.ली. मैलिथियान 50 ई.सी. का 400 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

प्रोबायोटिक के उपयोग द्वारा पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता में वृद्धि

विकाश कुमार एवं प्रकाश पाटिल

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रोबॉयटिक प्रयोग के लाभ एवं इसकी कार्य–प्रणाली

प्रोबॉयटिक जीवित रोगाणु खाद्य परिशिष्ट हैं जो आंतों में उपस्थित रोगाणुओं को संतुलित कर पशुओं को लाभ पहुचाते हैं। यद्यपि सभी पशुओं का पाचन तंत्र जन्म जीवाणु एवं रोगाणु रहित होते हैं, परन्तु मां और पर्यावरण से संपर्क के कारण विविध माइक्रोफ्लोरा की स्थापना हो जाती है। प्रोबायोटिक का प्रयोग वाणिज्यिक उत्पादन संचालन में पशुओं के गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल फ्लोरा को बदलने के लिए उपयोग किया जाता है, जिससे पशु के स्वास्थ्य और उत्पादकता में बढ़ोतरी होती है। प्रोबायोटिक का उपयोग करने के कारण पशुओं के संवृद्धि दर में सुधार, मृत्यु दर में कमी, और फीड रूपांतरण क्षमता में सुधार होने के प्रमाण मिले है। यद्यपि प्रोबायोटिक की कार्य– प्रणाली पूरी तरह से ज्ञात नहीं है, फिर भी यह आंतों के फ्लोरा में परिवर्तन, रोग–अवरोधी बैक्टीरिया का विकास, लैक्टिक एसिड और हाइड्रोजन पेरोक्साइड में वृद्धि, आंतों में रोगजनकों का नियंत्रण और पोषक तत्वों का पाचन और उनके उपयोगिता में वृद्धि करता है। विभिन्न प्रोबायोटिक में अलग–अलग प्रकार के बैक्टीरिया पाए जाते हैं जो कि अलग तरीके से असर करते हैं क्यूंकि इनके सत्व अलग–अलग हैं।

अतः प्रोबायोटिक की प्रभावकारिता में अंतर के लिए उनके सूक्ष्म–जीवों की जीवन–दर और उनकी स्थिरता, खुराक, प्रोबायोटिक देने की आवृत्ति, कुछ दवाओं के साथ मिला कर देने और पशु की आयु, तनाव और आनुवंशिकी जिम्मेदार है। प्रोबायोटिक पशुओं को रोगजनकों से बचाता है तथा उनके रोग–प्रतिरोधी क्षमता को बढाता है, इससे एंटीबायोटिक के अत्यधिक उपयोग को कम कर सुरक्षा के उच्च सूचकांक को सुनिश्चित किया जा सकता है। प्रोबॉयटिक में उपयोग किए जाने वाले सूक्ष्म–जीवों में लैक्टोबैसिलस, स्ट्रेप्टोकोकस, एंटरोकोक, बेसिलस, क्लॉस्ट्रिडियम, बिफिडोबैक्टीरियम तथा ई. कोलाई प्रमुख हैं। पशुधन में प्रोबॉयटिक का उपयोग मुख्य रूप से पाचन विकार, तथा विशेष रूप से शारीरिक मुश्किलों के विभिन्न उपचार के लिए किया जाता है।

प्रोबायोटिक की कार्य–प्रणाली ४ तरीके से काम करती है, जिनमे एंटीबायोटिक और एंटी–माइक्रोबियल का न्यनतम उपयोग और उनके उत्पादन में कमी, रोग–जनकों से पौष्टिक स्रोतों के पास बने रहने के लिए प्रतिस्पर्धा और पशुओं के रक्षा–तंत्र को ठीक करना, तथा जीवाणुओं द्वारा विषाक्त उत्पादन को नियंत्रित करना शामिल है।

प्रोबायोटिक का पशु–उत्पादन पर प्रभाव

चिकन, सूअर, भेड़, बकरी और मवेशी में प्रोबायोटिक्स के प्रयोग से चारे की ग्राह्यता में सुधार, फीड रूपांतरण क्षमता में बढ़ोतरी, पशुओं के दैनिक वजन में वृद्धि और कुल वजन में इजाफा होता है। पाचन–क्रिया पर प्रोबायोटिक के विभिन्न लाभकरी परिणाम होते हैं जैसे, रोगाणुओं के प्रोटीन का निर्माण करना, रूमेण के पी.एच. को स्थिर रखनाएवं पोषण–तत्वों का अवशोषण को बढ़ाना।

पशु को चारे के साथ प्रोबायोटिक देने से दूध के उपज, वसा और प्रोटीन में वृद्धि होती है। एस्पर्गिल्ल्स ओरायिजा और सक्खेरोमयिसिज के प्रयोग से दुग्ध– उत्पादन की मात्रा, एस.एन.एफ. एवं प्रोटीन प्रतिशत में वृद्धि होती है। यह सल्लुलोल्यिटक जीवाणु की संख्या में वृद्धि, फाइबर के अपकर्षण और विचल अम्लिक वासा (वी.एफ.ए.) के गुणों में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। उपभोक्ताओं का जीवाणु–रहित मांस में रूचि बढ़ने के कारण प्रोबायोटिक की महत्ता बढ़ी है क्योंकि यह पशुओं के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है तथा उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद देने में समर्थ है। प्रोबायोटिक पशुओं में विकृति और मृत्यु दर कम करता है, जिसके कारण रोग नियंत्रण में प्रयुक्त होने वाले एंटीबायोटिक को घटाया जा सकता है। पेडियोकोकस और स्ट्रेप्टोकोकस प्रजातियों के सूक्ष्म– जीवों के प्रयोग से पशुओं के पेट में निरंतर और नियंत्रित अम्लीकरण होता है जो कि अवांछनीय सूक्ष्मजीवों के उद्भव को बाधित करता है। किण्वित मांस उत्पादों में स्टाफीलोकोकस की रोकथाम

के लिए बेसिलस प्रजाति के जीवाणुओं का प्रयोग किया जाता है। एक स्वस्थ पशु में प्रोबायोटिक गैर विशिष्ट प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को मजबूत करता है और प्रणाली की प्रतिरक्षा क्षमता को बढाता है। प्रोबॉयटिक छोटे आंत उपकला के परिवहन गुणों को प्रभावित कर ग्लूकोज का अवशोषण को बढाता है जो की पशुओं के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। प्रोबायोटिक इम्यूनोग्लोबुलिन के स्तर को बढ़ाता है जिसका उनके विकास, उत्पादन और रोग–प्रतिरोधक क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

डेरी पशुओं में प्रोबायोटिक का प्रयोग

गायों में प्रोबायोटिक के प्रभाव से संबंधित शोध सीमित हैं। उपलब्ध अध्ययनों में प्रोबायोटिक को अन्य योगज के साथ खिलाने पर भी प्रोबायोटिक के प्रभावों से सम्बंधित निष्कर्ष पर पहुचना मुश्किल है। कुछ अध्ययनों में यह पाया गया कि इन डेयरी पशुओं को प्रोबायोटिक दवाओं को खिलने से दूध उत्पादन में 0.75–2.0 किलोग्राम प्रति दिन तक की बढ़ोतरी हुई है। आम तौर पर, दूध में बढ़ोतरी लगातार दर्ज होती है, परन्तु दूध की रासायनिक एवं भौतिक संरचना में बदलाव भी हो रहे हैं।कुछ शोधार्थियों ने स्पष्ट किया कि प्रोबायोटिक देने से लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया एवं एम्.ओ. एस. का प्रयोग होने वाले गायों में दुग्ध–उत्पादन में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष

प्रोबायोटिक का पशु– स्वास्थ्य, उत्पादन और विकास दर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, प्रोबायोटिक्स कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रोबॉयटिक रोगजनकों के साथ पोषण स्रोत के लिए प्रतिस्पर्धा करते हुए, उनके लिए जहरीले यौगिकों का उत्पादन करते हैं जिससे पशुओं की प्रतिरक्षा प्रणाली को बल मिलता है तथा उसमे सुधार आता है। चूकि, एंटीबायोटिक का पोषक तत्व पूरक के रूप में प्रयोग करना गलत है तथा यूरोपीय संघ में इसे प्रतिबंधित कर दिया गया है, इसलिए प्रोबॉयटिक पर हमारी निर्भरता बहुत जरुरी है। नैदानिक परीक्षणों की कमी के कारण विभिन्न उपचारों में प्रोबायोटिक का इस्तेमाल के बारे में विशिष्ट सिफारिशें करना मुश्किल है कि, पाचन–विकार ठीक करने के लिए इसे कैसे और कब प्रयोग किया जाना चाहिए।

गेहूँ का सहभागी गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन

के.के. सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, नगीना, बिजनौर, उ.प्र.

जैसा कि हम अवगत है कि किसी भी फसल में गुणवत्ता युक्त उन्नत प्रजाति का बीज उपयोग करने मात्र से ही उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी हो जाती है। कृषकों को समय पर गुणवत्तायुक्त बीज की प्राप्ति हेतु स्वतः बीज की उत्पादन करना होगा, इसके लिए कृषकों को सहभागी गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन तकनीकी को अपनाना होगा तथा उत्पादित बीज को आपस में परस्पर सहयोगी रूप में वितरित करना होगा।

गेहूँ बीज उत्पादन के अन्तर्गत बीज की आनुवांशिक, भौतिक एवं अंकुरण क्षमता तथा शुद्धता को बनाए रखने के लिए बीज की बुआई से लेकर कटाई तक अनेक प्रकार की सावधानियाँ अपनानी पड़ती हैं उसमें बीज उत्पादक को मानक विधियों का पालन करना पड़ता है, जिससे उत्पादित बीज अच्छी अंकुरण क्षमता और उच्च कोटि की गुणता वाला हो सके।

गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन हेतु महत्वपूर्ण सुझाव

खेत का चयन

खेत का चयन फसल के वातावरण के अनुरूप हो सिंचाई, जलनिकास की व्यवस्था अच्छी हो तथा सूर्य की किरणे आसानी से पहुंचे।

उपयुक्त प्रजाति का चयन

- अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित किस्मों का ही चयन करें।
- बीज किसी विश्वसनीय और प्रमाणित संस्थाओं से ही प्राप्त करना चाहिए।
- रोगरोधी और कीट प्रतिरोधी प्रजातियों को ही बोयें।
- नवीनतम एवं उन्नतशील किस्मों का ही प्रयोग करें।
- बीज स्वस्थ, शुद्ध और साफ–सुथरा होना चाहिए।
- बीज की अंकुरण क्षमता कम से कम 80–90 प्रतिशत अवष्य हो।

खेत की मिट्टी और सिंचाई जल की गुणवत्ता को ध्यान में रखकर किस्मों का चुनाव करें।

पृथक्करण दूरी

शुद्धता बनाए रखने हेतु एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति की बुवाई/रोपाई तीन मी. की दूरी के बाद ही करनी चाहिए।

बीज की मात्रा

बीज दर दानों के आकार, जमाव प्रतिशत, बोने का समय,

क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत प्रजातियाँ निम्नानुसार हैं–

गेहूँ की समय से बुवाई हेतु उन्नत प्रजातियाँ

डब्लू. बी. 02			**एच.पी.बी.डब्लू.**		**01**
अनुमोदन वर्ष	:	2017	अनुमोदन वर्ष	:	2017
पौधे की उचाई (सेमी.)	:	97	पौधे की उचाई (सेमी.)	:	97
फसल अवधि (दिन)	:	142	फसल अवधि (दिन)	:	141
उपज (कु./हे.)	:	51.60	उपज (कु./हे.)	:	51.70
उपज क्षमता (कु./हे.)	:	..	उपज क्षमता (कु./हे.)	:	..
विशेषताएं	:	जिंक की मात्रा 42 पी.पी. एम. एवं आयरन की मात्रा 40 पी.पी.एम. पायी जाती है। जोकि सामान्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक है।	विशेषताएं	:	जिंक की मात्रा 40.60 पी.पी. एम. एवं आयरन की मात्रा 40 पी.पी.एम. पायी जाती है। जोकि सामान्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक है।

डी.बी.डब्लू 88			**एच.डी. 3086**		
अनुमोदन वर्ष	:	2014	अनुमोदन वर्ष	:	2014
पौधे की उचाई (सेमी.)	:	97	पौधे की उचाई (सेमी.)	:	97
फसल अवधि (दिन)	:	140.145	फसल अवधि (दिन)	:	140.145
उपज (कु./हे.)	:	54.20	उपज (कु./हे.)	:	54.20
उपज क्षमता (कु./हे.)	:	69.90	उपज क्षमता (कु./हे.)	:	69.90
विशेषताएं	:	पीला एवं भूरा रतुआ अवरोधी	विशेषताएं	:	पीला एवं भूरा रतुआ अवरोधी
डब्लू. एच. 1105			**एच.डी. 2967**		
अनुमोदन वर्ष	:	2013	अनुमोदन वर्ष	:	2011
पौधे की उचाई (सेमी.)	:	99	पौधे की उचाई (सेमी.)	:	98
फसल अवधि (दिन)	:	142	फसल अवधि (दिन)	:	140.145
उपज (कु./हे.)	:	52.50	उपज (कु./हे.)	:	50.40
उपज क्षमता (कु./हे.)	:	71.60	उपज क्षमता (कु./हे.)	:	66.10
विशेषताएं	:	पीला रतुआ, पत्ती झुलसा एवं पावड्री मिल्ड्यू अवरोधी	विशेषताएं	:	पीला एवं भूरा रतुआ अवरोधी, जिंक एवं आयरन की अधिक मात्रा

गेहूँ की देरी से बुवाई हेतु उन्नत प्रजातियाँ

डी.बी.डब्लू 173			**डी.बी.डब्लू 90**		
अनुमोदन वर्ष	:	2018	अनुमोदन वर्ष	:	2014
पौधे की उचाई (सेमी.)	:	..	पौधे की उचाई (सेमी.)	:	91
फसल अवधि (दिन)	:	115	फसल अवधि (दिन)	:	115.120
उपज (कु./हे.)	:	47.20	उपज (कु./हे.)	:	42.70
उपज क्षमता (कु./हे.)	:	57.00	उपज क्षमता (कु./हे.)	:	66.60
विशेषताएं	:	पीला एवं भूरा रतुआ अवरोधी, तापक्रम के प्रति सहनशील	विशेषताएं	:	तापक्रम के प्रति सहनशील, पीला रतुआ अवरोधी
डब्लू. एच. 1124			**डी.बी.डब्लू. 71**		
अनुमोदन वर्ष	:	2014	अनुमोदन वर्ष	:	2013
पौधे की उचाई (सेमी.)	:	91	पौधे की उचाई (सेमी.)	:	90
फसल अवधि (दिन)	:	120	फसल अवधि (दिन)	:	115.120
उपज (कु./हे.)	:	42.70	उपज (कु./हे.)	:	41.70
उपज क्षमता (कु./हे.)	:	56.10	उपज क्षमता (कु./हे.)	:	68.90
विशेषताएं	:	पीला व भूरा रतुआ अवरोधी	विशेषताएं	:	तापक्रम के प्रति सहनशील
एच.डी. 3059			**पी.बी.डब्लू 590**		
अनुमोदन वर्ष	:	2013	अनुमोदन वर्ष	:	2009
पौधे की उचाई (सेमी.)	:	93	पौधे की उचाई (सेमी.)	:	79
फसल अवधि (दिन)	:	121	फसल अवधि (दिन)	:	120
उपज (कु./हे.)	:	42.50	उपज (कु./हे.)	:	42.20
उपज क्षमता (कु./हे.)	:	59.40	उपज क्षमता (कु./हे.)	:	70.20
विशेषताएं	:	पीला रतुआ अवरोधी	विशेषताएं	:	पीला रतुआ अवरोधी

बोने की विधि एवं भूमि की दशा पर निर्भर करती है। सामान्यतः यदि 1000 बीजों का भार 38 ग्राम है तो एक हेक्टेयर के लिए लगभग 100 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। यदि दानों का आकार बड़ा या छोटा है तो उसी अनुपात में बीज दर घटाई या बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार सिंचित क्षेत्रों में समय से बुआई के लिए 100 कि.ग्रा./है. बीज पर्याप्त होता है। सिंचित क्षेत्रों में देरी से बोने के लिए 125 कि.ग्रा./है. बीज की आवश्यकता होती है।

बीज शोधन

बुवाई पूर्व बीज को 3.0 ग्राम थीरम + 2.0 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से अवश्य शोधित करें।

बुवाई का तरीका

सामान्यतः गेहूँ को 15–23 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोया जाता है। पंक्तियों की दूरी मृदा की दशा, सिंचाइयों की उपलब्धता एवं बोने के समय पर निर्भर करती है।

सिंचित तथा समय से बोने हेतु पंक्तियों की दूरी 23 सें.मी. रखनी चाहिए। देरी से बोने पर तथा ऊसर भूमि में पंक्तियों की दूरी 15–18 सें.मी. रखना चाहिए। सामान्य दशाओं में बौनी प्रजाति के गेहूँ को लगभग 5 सें.मी. गहरा बोना चाहिए, ज्यादा गहराई में बोने से जमाव तथा उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

बुवाई का समय

गेहूँ की बुआई के लिए दिन का औसत तापमान 21–25 डिग्री सेन्टीग्रेड होना चाहिए। अच्छे फुटाव के लिए तापमान 16–20 डिग्री सेन्टीग्रेड होना चाहिए। उत्तरी–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में सिंचित दशा में गेहूँ बोने का उपयुक्त समय नवम्बर का प्रथम पखवाड़ा है। देर से बोने पर उत्तरी–पश्चिमी मैदानों में 25 दिसम्बर के बाद गेहूँ की बुआई करने से उपज में भारी हानि होती है।

पोषक तत्व प्रबन्धन

गेहूँ उगाये जाने वाले ज्यादातर क्षेत्रों में नत्रजन की कमी पाई जाती है। फास्फोरस तथा पोटाश की कमी भी क्षेत्र विशेष में पाई जाती है। उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों में गंधक की कमी भी पाई गई है। इसी प्रकार सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जस्ता, मैंगनीज तथा बोरान की कमी गेहूँ उगाये जाने वाले क्षेत्रों में देखी गई है। ऐसी स्थिति में गेहूँ के लिए संस्तुत दर निम्न हैं–

- समय से सिंचित दशा में 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 80 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता होती है।
- देर से बुआई तथा कम पानी की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में समय से बुआई के लिए लगभग 100 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता होती है।
- सिंचित दशाओं में फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा बुआई से पहले भूमि में अच्छे से मिला देना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष 2/3 मात्रा का आधा प्रथम सिंचाई के बाद तथा शेष आधा तृतीय सिंचाई के बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए। जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में जिंक सल्फेट की 25 कि.ग्रा./है. की दर से धान–गेहूँ फसल चक्र वाले क्षेत्रों में साल में कम से कम एक बार प्रयोग करना चाहिए।

जल प्रबन्धन

सम्पूर्ण जीवन काल में 35–40 सेमी. जल की आवश्यकता होती है, क्रान्तिक अवस्था पर सिंचाई अनिवार्य, इसके छत्रक (क्राउन) जड़ें निकलने तथा बालियों के निकलने की अवस्था में सिंचाई अति आवश्यक होती है, अन्यथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। गेहूँ के लिए सामान्यतः 4–6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। गेहूँ में सिंचाइयों की उपलब्धता के अनुसार निम्न लिखित अवस्थाओं पर सिचाई करनी चाहिए–

अवांछित पौध निकालना (रोगिंग)

बीज की गुणवक्ता बनाए रखने हेतु फसल की नियमित निगरानी रखे तथा आनुवांशिक संदूषण को रोकने के लिए समयान्तराल पर हानिकारक खरपतवार, अन्य प्रजाति के पौधे रोगी/कीट लगे पौधों को बीज प्रक्षेत्र से निकालते रहे। रोगिंग प्रक्रिया तीन अवस्था पर पुष्पावस्था से पहले, पुष्पावस्था पर तथा फसल परिपक्व अवस्था पर अवश्य करें

अवांछनीय पौधो की पहचान

- फसल में लम्बे तथा बौने पौधे निकाल दे।
- पत्तियों बालियो के रंग आकार एवं लम्बाई के आधार पर अन्य पौध पकने की अवधि के आधार पर शीघ्र तथा देर से पकने वाले पौधे निकाल दे।
- पत्तियो, वालियो पर बीमारी/कीट के लक्षण वाले पौधे निकाल दे।

गेहूँ की देरी से बुवाई हेतु उन्नत प्रजातियाँ

क्रांतिक अवस्थायें एवं उनकी अवधि	सिंचाइयों की उपलब्धता					
	1	2	3	4	5	6
1 छत्रक (क्राउन) जड़ अवस्था (बोने के 20–25 दिन बाद)	√	√	√	√	√	√
2. कल्ले निकलने की अवस्था (बोने के 40–45 दिन बाद)			√	√	√	
3. गाँठ बनने की अवस्था (बोने के 60–65 दिन बाद)	√	√	√	√	√	
4. फूल आने के पूर्व (बोने के 80–85 दिन बाद)				√	√	
5. दुग्ध अवस्था (बोने के 110–115 दिन बाद)		√	√	√	√	
6. दाने कड़े होने की अवस्था (बोने के 120–135 दिन बाद)					√	

- तूड़ की लम्बाई के आधार पर भिन्न प्रजाति के पौधों को निकाल दे।
- दूसरी मिलती–जुलती फसलों के पौधों को निकाल दे।
- वे पौधे जिनकी वालियां, फूल, शाखाओं व पत्तो की बनावट रंग व गुण उस प्रजाति के पौधे से भिन्न को निकाल दे।

फसल सुरक्षा

खरपतवार प्रबन्धन

गुणवत्तायुक्त बीज की प्राप्ति हेतु बीज फसल प्रक्षेत्र हानिकारक खरपतवाऐं से मुक्त होना चाहिए। खरपतवारो से 25–35 प्रतिशत तक उपज में कमी आती है गेहूँ की फसल में मुख्यतः गेहूँ का मामा (फैलेरिस माइनर), जंगली जई, बथुआ, जंगली पालक, कृष्णनील, हिरनखुरी आदि खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। रसायनों के अलावा कुछ ऐसे उपाय हैं जिनसे खरपतवारों को कुछ सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है। ये उपाय निम्न हैं–

- स्टेल सीड बेड तकनीक का प्रयोग करें। गेहूँ बोने से पूर्व एक हल्की सिंचाई करके खरपतवार के बीजों को जमने का मौका दें तथा जुताई करके नष्ट कर दें।
- हमेशा खरपतवारों से मुक्त बीजों का प्रयोग करें।
- गेहूँ समय से (15 नवम्बर) पहले बोयें। पंक्तियों की दूरी घटा दें तथा जल्दी बढ़ने वाली प्रजातियों का प्रयोग करें।

रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण सुगम एवं आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होता है। निम्न विधियों से चौड़ी एवं संकरी दोनों तरह के खरपतवार नियंत्रित किये जा सकते हैं

- गेहूँ बोने के तीन दिन के अन्दर पेन्डिमेथालीन की 1000 मि.ली./है. मात्रा को 500 ली पानी में मिलाकर छिड़काव करने से चौडी पत्ती एवं घास वर्गीय खरपतवार नियंत्रित हो जाते हैं।
- मेट्रिब्युजिन की 175 ग्रा. मात्रा/है. की दर से 500 ली. पानी में घोलकर बोने के 25–30 दिन पर प्रयोग करें।
- सल्फासल्फ्यूरान (लीडर) 75 डब्लू जी. 25 ग्राम मेटसल्फ्यूरान (20 डब्लू.जी.) 4 ग्राम 250–300 ली. पानी प्रति हे० छिड़काव करें।
- रसायनों का छिड़काव खिली धूप वाले दिन जब हवा की गति बहुत कम हो तभी करें। संस्तुत मात्रा से कम या ज्यादा रसायनों के प्रयोग से फसल को हानि हो सकती है।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

1. गेरूए (रतुए)

तना गेरूआ

इस रोग की रोकथाम हेतु

- विभिन्न – जलवायु क्षेत्रों के लिए संतुस्त गेरूआ रोगरोधी किस्मों का प्रयोग।
- स्फोटों के दिखाई पड़ने पर 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का एक या दो बार पत्तियों पर छिड़काव करें।

2. पर्ण झुलसा

इस रोग की रोकथाम हेतु

- रोग प्रतिरोधी किस्में उगाएं। 2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू पी) रसायन के साथ बीजोपचार कर बुआई करें।
- खड़ी फसल में 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का छिड़काव करें। खेत में पानी खड़ा न रहने दें।

3. श्लथ कंड

इस रोग की रोकथाम हेतु

- रोगरोधी प्रजातियों के बुआई करनी चाहिए।
- 2.5 ग्रा./कि.ग्राबीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू पी) या कार्बेडाज़िम (बाविस्टीन 50 डब्ल्यू पी) अथवा 1.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर टेब्यूकोनेजोल (रैक्सिल) के साथ बीजोपचार करने के बाद बुआई करें।

4. ध्वज कंड

इस रोग के रोकने के लिए

- बुआई के पहले बीजों को 0.25 प्रतिशत कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू पी) से उपचारित करें। जिन किस्मों में यह ध्वज कंड रोग देखा गया हो, उनकी बुआई न करें।
- रोगप्रतिरोधी किस्में का प्रयोग करें।

- अन्य फसलों जो इस कवक की अतिथेय नहीं हैं, के साथ फसल आवर्तन (क्रॉपरोटेशन) करें।

5. करनाल बंट

इस रोग के रोकने के लिए

- रोग सहिष्णु किस्मों का प्रयोग करें।
- 3 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से थीरम से बीजोपचार इस रोग की रोकथाम में प्रभावी पाया गया है।
- बूट लीफ अवस्था में 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई सी) का पत्तियों पर छिड़काव करने से रोग नियंत्रित किया जा सकता है।

6. चूर्णी फफूँद

इस रोग के प्रबन्धन हेतु

- रोग सहिष्णु किस्मों का प्रयोग करें।
- रोग के आते ही दाने बनने की अवस्था तक 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेज़ोल (टिल्ट 25 ई सी) का पत्तियों पर छिड़काव करें।

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

रबी फसलों में दीमक का प्रकोप अधिक होता है। अतः ऐसे क्षेत्रों में बीजोपचार अवश्य करें। 450 मि.ली. क्लोरोपाईरीफॉस 20 ई.सी. कीटनाशी का 5 लीटर पानी में घोल बनाकर 1 क्विंटल बीज पर छिड़क कर मिला दें। यह क्रिया बुवाई से 1 या 2 दिन पूर्व छाँव में पक्के फर्श पर करें। यदि किसी वजह से बीज का उपचार न हो सके और दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर खेत की सौ किलोग्राम मिट्टी लेकर उपरोक्त कीटनाशियों द्वारा उसे उपचारित कर खेत में छिड़क दें व बहुत हल्की सिंचाई कर दें। इसके अतिरिक्त रस चूसने वाले कीट जैसे चेंपा के लिए इमिडाक्लोप्रीड 200 एस एल अथवा 20 ग्रा. सक्रिय तत्व का छिड़काव खेत के चारों तरफ दो मीटर बार्डर पर करें। शुरू में पूरे खेत में उपचार की आवश्यकता नहीं होती। अधिक प्रकोप होने पर इस कीटनाशी का प्रयोग पूरे खेत में करें। किन्हीं दो छिड़काव के बीच 15–20 दिनों का अन्तर अवश्य रखें।

फसल की कटाई

जब दानों में लगभग 20 प्रतिशत नमी रह जाए तब फसल कटाई के लिए उपयुक्त मानी जाती है। वैसे तो हाथ से कटाई की जाती है पर शीघ्र कटाई के लिए कम्बाईन हार्वेस्टर का प्रयोग किया जाता है। फसल पकते ही सुबह में कटाई करें।

भण्डारण

भण्डारण पूर्व बीज को अच्छी तरह सुखा लें। इसके लिए अनाज को तारपोलीन अथवा प्लास्टिक की चादरों पर फैला कर तेज धूप में अच्छी तरह सुखा लें ताकि दानों की नमी की मात्रा 12 प्रतिशत से कम हो जाए तो 8–10 प्रतिशत नमी की अवस्था पर भण्डारित करे। भण्डारण पूर्व बीज को 2.5 ग्राम थीरम/किग्रा. बीज की दर से शोधित करे। भंडारण के लिए जी.आई. शीट की बनी बिन्स (कोठिला एवं साइलो) का प्रयोग करना चाहिए। अनाज की कीड़ों से रक्षा के लिए एल्यूमीनियम फॉस्फाईड की एक टिकिया 10 कुंतल अनाज में रखनी चाहिए।

छत्तीसगढ़ में देर से बुवाई हेतु गेहूँ उत्पादन तकनीक

दिनेश पाण्डेय, अजय प्रकाश अग्रवाल एवं माधुरी ग्रेस मिंज

ठाकुर छेदीलाल बैरिस्टर कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, सरकण्डा,
बिलासपुर (छ.ग.) 495 001

विश्व के गेंहूँ उत्पादक देशों में भारत दूसरे स्थान पर है। गेंहूँ का उपयोग पहले प्रमुखता से चपाती के रूप में ज्यादातर होता था। वर्तमान में शहरीकरण युवाओं की पसंद (पिज्जा,नान,पास्ता, टोस्ट,नुडल्स आदि) एवं सरकारी नीति जैसे राश्ट्रीय खाद्यान्न सुरक्षा मिशन योजना लागू होने से गेहूँ कि उपयोगिता काफी बढ़ गयी है। भारत देश कि धान एवं गेहॅ दो मुख्य फसले है जो क्रमशः 30 तथा 18 प्रतिशत क्षेत्र मे उगाई जाती है। इनको क्रमशः 42 तथा 30 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता है। ये दोनों फसलें मिलकर लगभग 75 प्रतिशत खाद्य पदार्थ पैदा करती है।गेहॅ जिसका रकबा देश में (1950–51) 9.75 मिलियन हैक्टेयर था आज लगभग 30 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती है। वर्तमान परिदृश्य में छत्तीसगढ़ राज्य पर गेहूँ का उत्पादन मात्र 1.01 मिलियन हैक्टर क्षेत्र (देश कि कुल गेहॅक्षेत्र का 3.40 प्रतिशत हिस्सा) व उत्पादकता 13.96 क्विंटल/हैक्टर है। जबकि छत्तीसगढ़ राज्य में भूमि एवं जलवायुवीय कारक गेंहॅ उत्पादन हेतु अनुकुल है। गेंहूँ की बढ़ती मॉग के आधार पर वर्ष 2030 तक इसकी मॉग देश में 100 मिलियन टन तक होने कि है। यह गेंहूँ कार्यकर्ताओं एवं उत्पादकों के लिए चुनौती पूर्ण कार्य होगा। छत्तीसगढ़ में गेंहूँ की उत्पादकता कम होने के कई कारण है जैसे

1–यह ठंड चाहने वाली फसल है एवें अच्छे वानस्पतिक एवं प्रजनक वृद्धि हेतु औसतन तापमान 20–21 डिग्री सेल्सियस 100–110 दिन की अवधि तक होनी चाहिए जबकि छत्तीसगढ़ में यह अनुकूलतम तापमान केवल 70–80 दिन तक ही मिल पाती है।

2–धान की देरी से पकने वाली किस्मों की काश्त, धान की कटाई मे देरी, कटाई मशीन का इंतजार, कटाई के पश्चात भी जुताई के लिए ओल न आना, गेहूं की प्रजातियों का चयन परिस्थितियों के अनुरूप न कर पानो, करपा उठाने में देरी, खेत खाली होने पर खेत का सुख जाना आदि कारणो से गेहूँ की बुवाई में समय लग जाता है एवं बुवाई दिसम्बर माह के अन्त तक करनी पडती है।

3–देरी से बुवाई पर अंतस्थ ताप (टर्मिनल हीट) के प्रभाव में आने से समय पूर्व परिपक्व होकरं प्रत्यक्ष रूप से उपज में कमी ला देती है।। गेंहूँ की बढ़ती हुई उपयोगिता एवं मांग को देखते हुए रकबा एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी की आवश्यकता है। यदि कृषकों द्वारा खरीफ से योजनाबध्द तरीके से कृशि कार्य किया जाये तो इस देरी व बहुत देरी से बुवाई को समय व देरी से बुवाई में बदला जा सकता है।

समुचित प्रबंधन के साथ नवीनतम् तकनीक का उपयोग कर छत्तीसगढ़ मे देर से बोनी परिस्थिति मे गेंहूँ की उत्पादकता बढ़ायी जा सकती है इनमें भूमि का चुनाव, उपयुक्त प्रजाती, समय पर बुवाई, खरपतवार प्रबंधन एवं उर्वरक तथा जल प्रबंधन तकनीक प्रमुख है।

1. भूमि की तैयारी :

सामान्यतः कृषकों द्वारा धान फसल पकने के बाद सूखने की अवस्था तक खेत में छोड़ दिया जाता है जिससे मृदा में नमी का ह्रास हो जाता है। मृदा में नमी की कमी के कारण खेत की तैयारी के लिए सिंचाई कर बतर आने पर जुताई किया जाता है, जिससे अनायास बुवाई में 10–15 दिनों की देरी हो जाती है एवं उत्पादन कम मिलता है। इस समय को कम करके खेत की तैयारी हेतु पहले मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करके 2–3 बार हेरो चलाना चाहिए। जुताई पश्चात् पाटा चलाकर खेत को समतल कर जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। गेहूं बुवाई के लिए भूमि भुरभुरी व समतल होनी चाहिए इसके लिए जुताई के बाद रोटावेटर का उपयोग करना चाहिए। दीमक संभावित खेतो में जुताई के समय 80 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से नीम खली या एण्डोसल्फान 35 ई.सी. दवा की 1 लीटर मात्रा को 2 ली0 पानी में घोलकर 25 किलोग्राम रेत के साथ मिलाकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में जुताई के पश्चात् डाल देने से फसलोत्पादन में दीमक का प्रकोप काफी कम हो सकता है।

3. बीज दर :

बीज दर का निर्धारण, बुवाई समय, बीज की शुद्धता एवं

तालिका–1: देरी से बोनी अवस्था में गेहूँ का बीज दर

क्र0	बोने की स्थिति	बीज दर कि.ग्रा./ हे.
1	देर से बुवाई	1. पंक्ति में बुवाई : 150 कि..ग्रा./हे.
	(दिसम्बर प्रथम पखवाड़ा तक)	2. छिटकंवा विधि :175 कि..ग्रा./हे.

बोनी विधि के आधार पर होता है, अच्छी उत्पादकता लेने के लिए उपयुक्त बीज दर का उपयोग अति आवश्यक होता है। सामान्यतः देरी से बोनी अवस्था में अधिक बीज दर का उपयोग किया जाता है। देरी से बोनी अवस्था में बीज दर पर विगत दो वर्षो से अनुसंधान किया गया। वर्तमान जलवायुवीय परिवर्तन के परिपेक्ष्य में देरी से बोनी अवस्था पर बीज दर के निर्धारण हेतु ठा.छे.बै.कृशि महाविद्यालय बिलासपुर में दो वर्ष (2012–2013) अनुसंधान किया गया इस अनुसंधान में बीज दर का चार स्तर (125, 150, 175 व 200 कि.ग्रा.हे.) एवं नत्रजन का चार स्तर (80, 100,120, व 140 कि.ग्रा./हे.) को लेकर चक्रण क्षेत्र प्रर्दशन मे अनुसंधान किया गया । दो वर्शो से प्राप्त अनुसंधान परिणाम के विवेचना से परिलक्षित होता है कि निर्धारित बीज दर 125 कि.ग्रा./हे. से बढ़ते क्रम में 175 कि.ग्रा./हे. तक गेहूं कि उपज में वृध्दि हुई है, तत्पश्चात दोनो वर्ष सर्वाधिक स्तर 200कि.ग्रा./हे. बीज दर द्वारा पुनः उपज में कमी पायी गई, यह उपज निर्धारित बीज दर 125 कि.ग्रा. /हे के समतुल्य थी। दोनो वर्ष के औसत उपज का विश्लेशण करने पर यह स्पष्ट होता है कि निर्धारित बीज दर 125 कि.ग्रा./हे. से बढ़े हुए बीज दर 150 व 175 कि. ग्रा./हे. द्वारा अधिक उपज क्रमशः (33.48 व 31.24 क्वि. /हे.) प्राप्त हुई जो कि निर्धारित बीज दर से 17.02 व 11. 07 प्रतिशत ज्यादा थी।

4.बीजोपचार : बीज उपचार हेतु कवकनाशी वीटा वेक्स की 2 ग्राम मात्रा प्रतिकिलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। इसके लिए दवा की अनुशंसित मात्रा को किसी बर्तन में हल्का पानी छिड़ककर बीज के साथ अच्छे से मिलाना चाहिए ताकि दवा का एक परत बीज में चढ़ जाये। जैव उर्वरक एवं फास्फोरक घोलक जीवाणु के उपयोग भी लाभप्रद होता है।

5.बुवाई की उपयुक्त विधि :

तैयार समतल खेत में बीज की उथली बुवाई (4–5 से.मी.) कतार में करना चाहिए। कतार विधि में कम बीज के साथ, फसल का उठाव अच्छा, खरपतवार नियंत्रण व इनका फसलों के बीज प्रतिस्पर्धा छिटकवा विधि की तुलना में कम होता है। देरी से बोनी दशा में कतार से कतार की दूरी 18 –20 से.मी. रखना चाहिए। सामान्यतः सीड ड्रील में कतार से कतार की दूरी 22.5 से.मी. पर निर्धारित होती है जिसे 20 से.मी. में निर्धारित कर बोनी करना चाहिए। कतार अंतरण पर विगत दो वर्षो (2010–11 व 2012–13) में अखिल भारतीय समन्वित गेहूं अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत अनुसंधान हुआ। इस अनुसंधान में चार (15.0, 17.5, 20 व 22.5 से.मी.) कतार से कतार की दूरी ली गई जिसके परिणाम से यह स्पश्ट होता है कि कम कतार अतरण (17.5 से.मी.) द्वारा दोनो वर्शो में अधिकतम उपज (42.37 और 43.52 कि./हे.) प्राप्त हुई जो कि अनुसंशित कतार अंतरण (22.5 से.मी.) से प्राप्त उपज की तुलना में क्रमशः 19.49 और 16.89 प्रतिशत अधिक थी। अतः अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए कतार अतरण 18–20 से.मी. रखना चाहिए।

6. **उर्वरक की मात्रा एवं देने की विधिः** रासायनिक उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण मिट्टी परीक्षण के उपरान्त ही करना चाहिए। विभिन्न परिस्थितियों के लिए उर्वरक की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है।

स्फुर व पोटाश की पूरी मात्रा व नत्रजन की एक तिहाई मात्रा बुवाई के समय व एक भाग प्रथम सिंचाई व शेष बची मात्रा द्वितीय सिंचाई के समय देना उपयुक्त होता है।

7. सिंचाई प्रबंधन :

सिंचाई हेतु गेहूँ की छः (तालिका–3) क्रांतिक अवस्थाएँ होती है, जो कि फसल वृद्धि काल में 18–21 दिन के अन्तराल पर आती है। इन अवस्थाओं में सिंचाई का उत्पादकता पर काफी धनात्मक प्रभाव पड़ता है। आखरी सिचाई अवश्य देना चाहिए अन्यथा गेहूं के दानों का आकार सिकुड़ कर छोटा हो जाता है और उपज कम प्राप्त होती है।

8. उपयुक्त प्रजातियाँः गेहूँ की उत्पादकता को निर्धारित करने में प्रजातियों का चयन महत्वपूर्ण होती है। धान की देर से पकने वाली किस्मो की कटाई के पश्चात देरी से बोनी अवस्था के लिए गेहूँ की दी गई किस्मों का उपयोग करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

अखिल भारतीय गेंहूं एवं जौ अनुसंधान परियोजना, बैरिस्टर ठाकुर छेदीलाल कृशि महाविद्वालय सरकण्डा बिलासपुर द्वारा वर्ष 2017 में देर से बोनी (दिसंबर माह) के लिये उपयुक्त किस्म छत्तीसगढ़ गेंहूं–04 (सीजी 1015) विकसित की गई है। इस किस्म का प्रजनक बीज पहली

तालिका–2: गेहूं में सिंचाई हेतु कांतिक अवस्थायें

क्रं0	क्रांतिक अवस्था	अवधि, दिन	अति संवेदनशील क्रांतिक अवस्था	अवधि, दिन
1	चंदेरी जड़ अवस्था	18–21	1. चंदेरी जड़ अवस्था	18–21
2	कल्ले फुटाव की अवस्था	35–40	2. पोटे एवं बालियां आने की अवस्था	50–55
3	पोटे आने की अवस्था	55–60	3. दाने की दूधियां अवस्था	90–95
4	बालियॉ आने की अवस्था	70–75		
5	दानों की दुधियां अवस्था	90–95		
6	पकने की अवस्था	110–115		

बार कृषकों तक पहुंचने के लिये तैयार है देर से बोनी पर यह किस्म 103 दिनों में पक जाती है जिसकी उंचाई 92 से0मी0 होती है इसका दाना मोटा होता है , 1000 दाना का वनज 44.03 ग्राम होता है। इस किस्म के दाना में 13.02 प्रतिशत प्रोटीन होने के कारण चपाती (रोटी) बनती है। देर से बोनी करने पर इसकी औसत उत्पादकता 53.00 क्वि0 प्रति हेक्टेयर है छत्तीसगढ़ में मार्च के महिने में जल्दी गर्मी पड़ने की दशा में भी यह किस्म अधिक तापमान को सहन कर अच्छा उत्पादन देता ह\।

ऐसी किस्मे जिनकी अनुसंशा पिछले पॉच वर्षो में हुई है कि उत्पादकता का बहुवर्शीय मुल्याकन राज्य मे भी किया गया । सिंचित तथा देर से बुआई की अवस्था में छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्रो में नई किस्म राज 4238 ने अधिकतम उत्पादन 43.35 क्वि. प्रति हेक्टयर प्राप्त हुई इसके पश्चात एच. डी. 2932; 39.92 क्वि. प्रति हेक्टयर एवं एम.पी. 3336; 38.15 क्वि. प्रति हेक्टयर की उपज रही । बस्तर के पठार मे सभी किस्मों की उत्पादकता 25 से 27 क्वि. प्रति हेक्टयर के बीच पाई गई। उत्तरी पहाडी क्षेत्र में नई किस्म राज 4238 ने अधिकतम उत्पादन 41.13 क्वि. प्रति हेक्टयर प्राप्त हुई इसके पश्चात एम.पी. 3336 ;37.40 क्वि. प्रति हेक्टयर एच. डी. 2864 ;35.98 क्वि. प्रति हेक्टयर एवं एच. डी. 2932 ;34. 84 क्वि. प्रति हेक्टयर की उपज रही।

ऐसी किस्मे जिनकी अनुसंशा पिछले पॉच वर्षो में हुई है उनके बीज की उपलब्धता सीमित है एवं इनके बीज कम मात्रा मे कृशि विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र मे मिलते है। जबकि पुरानी किस्मों के बीज, बीज निगम के केन्द्रो में प्रर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होते है।

8. खरपतवार नियंत्रण : बुवाई के 3–4 दिन के अन्दर खरपतवारों के अंकुरण पूर्व पेन्डिमेथालिन (स्टांप) सक्रिय तत्व 750–800 ग्राम प्रति हेक्टेयर छिड़काव करने से खरपतवार की संख्या काफी कम हो जाती है या अंकुरण पूर्व आइसोप्रोट्युरान दवा 1000–1200 कि0ग्रा0 सक्रीय तत्व मात्रा प्रति हेक्टेयर छिड़काव करने से खरपतवारों की संख्या नगण्य होती है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुवा तथा सेंजी के नियंत्रण हेतु 2, 4 डी नामक दवा 1200 मि0ली0/हे0 उपयुक्त पायी गई है। कम से कम 13–14 टंकी स्प्रेयर मिश्रित दवा प्रति एकड़ में छिड़काव करना चाहिए।

9. पौध संरक्षण : गेहूँ पर छत्तीसगढ़ में कीट व्याधी का उतना ज्यादा प्रभाव नहीं देखा गया है। मैदानी भागों में गेहूँ पर रतुवा व कंडवा मुख्य रोग माने जाते है परन्तु कृशक खेतो में इनका आक्रमण बहुत कम देखा गया है। गेहूँ की नवीनतम् संस्तुत की गई प्रजातियॉ रतुवा प्रतिरोधी हैं। रतुवा आने पर हेक्साकोनाजोल 1 मि0ली0 प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। गेहूँ की फसल में दीमक, तना मक्खी, शूट फलाई, तना छेदक आदि कीट कभी–कभी लग जाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए क्लोरपायरीफास 20 ई0सी0 4 लीटर प्रति हेक्टेयर या एण्डोसल्फान 35 ई0सी0 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर सिंचाई के समय छिड़काव करना चाहिए।

10. उपज : देर से बोनी सिंचित अवस्था में इस\ तकनीक को अपनाकर\ कृशकों द्वारा 30–35 क्वि./हे0 तक गेंहू का उत्पादन किया जा सकता है।

बागवानी एवं सब्जियों में जल संरक्षण प्रौद्योगिकियों का प्रयोग

भूपेन्द्र कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, बागपत
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

बागवानी फसलों एवं सब्जियों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए जल एक महत्वपूर्ण व क्रान्तिक आदान है। जनसंख्या में निरंतर हो रही वृद्धि के कारण खाद्यानो, सब्जियो, फलों की मांग दिना प्रति दिन बढती जा रही है। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के भौगोलिक क्षेत्र का 2.3 प्रतिशत है और विश्व की कुल जनसंख्या में 17 प्रतिशत हमारे देश का है। विश्व में कुल जल संसाधन का मात्र 4 प्रतिशत भाग हमारे देश में उपलब्ध है जिसमें से 80 प्रतिशत की खपत कृषि के लिए होती है। हमारे देश में सिंचित कृषि क्षेत्रो में फसल जल उत्पादकता लगभग 2.5 टन प्रति है0 है और समग्र सिंचाई उपलब्धता लगभग 30 प्रतिशत है जबकि विश्व में इसका औसत 4 टन प्रति है0 है। उपर्युक्त परिस्थियों में यह आवश्यक है कि हमारे पास ऐसी सिंचाई प्रणाली हो, जिससे फसल जल उत्पादकता व सिंचाई दक्षता को काफी हद तक बढाया जा सके। ऐसी स्थिति में जल संरक्षण प्रौद्योगिकियों मुख्य रूप से ड्रिप सिंचाई पद्धति, फव्वारा/स्प्रिंकलर सिंचाई प्रौद्योगिकी, भू–समतलीकरण प्रौद्योगिकी, फर्टिगेशन तथा अन्य प्रौद्योगिकियो में उन्नत सस्य क्रियाओं का बहुत ही लाभकारी व दक्षतापूर्ण तकनीक के रूप में उभरकर सामने आई है।

बागवानी एवं सब्जियों में जल संरक्षण की आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ/तकनीक

ड्रिप सिंचाई प्रौद्योगिकी :– बागवानी एवं सब्जियों वाली फसलों में सतत् उत्पादन के लिए ड्रिप सिंचाई सबसे अच्छी तकनीक है। यह एक नई, उन्नत एवं किफायती सिंचाई प्रणाली/विधि है। इसमें श्रम की आवश्यकता कम पड़ती है और यह सिंचाई की अत्यन्त दक्षतापूर्ण प्रणाली है। इस प्रणाली को कठिन परिस्थियों में भी प्रयोग के अनुरूप ढाला जा सकता है ताि समस्याग्रस्त भूमि में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। यहा तक की खराव पानी को भी उपयोग में लाया जा सकता है। इस सिंचाई प्रणाली को अपनाकर सिंचाई के पानी में 36 से 79 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है। इसका प्रयोग कर जल की हानियों जैसे गहन रिसाव, अप्रवाह तथा वाष्पीकरण आदि से बचा जा सकता है। इस विधि के अन्तर्गत फल वाली फसलें जैसे बेर, शहतूत, अंगूर, संतरा, अनार, केला, आम एवं अमरूद आदि, सब्जियों वाली फसलों में टमाटर, खीरा, मटर, बंदगोभी, फूलगोभी एवं भिण्डी, कतार ओर पास–पास बोई जाने वाली फसलों में कपास, गन्ना, मूँगफली, प्याज, आलू एवं बैंगन तथा अन्य फसलों में सजावटी पौधे, फूल वाले पौधे जैसे रजनीगंधा, चमेली, कार्नेशन, गुलाब आदि तथा औषधियों वाली फसलों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

फव्वारा/स्प्रिंकलर सिंचाई प्रौद्योगिकी :– यह विधि बलूई मिट्टी, ऊची–नीची जमीन तथा जहाँ पर पानी की उपलब्धता कम है वहाँ पर प्रयोग की जाती है। इस विधि के द्वारा गेहूँ, कपास, मूँगफली, तंबाकू, तथा अन्य फसलों में की जा सकती है। इस विधि द्वारा 16–17 प्रतिशत पानी की बचत तथा विभिन्न फसलों की उपज में 60 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

भू–समतलीकरण प्रौद्योगिकी :– खेतो में सिंचाई जल का समानता से प्रयोग करने हेतु, मृदा अपरदन, जल गुणवत्ता में कमी एवं जल जमाव द्वारा होने वाली मृदा हानि की रोकथाम हेतु, खेत में अतिरिक्त जल संचय में कमी करने के लिए, जल संरक्षण के लिए एंव उचित सतही जल निकास व्यवस्था के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना चाहिए। इस विधि द्वारा जल उपयोग को 20–30 प्रतिशत कम किया जा सकता है तथा इससे फसल उत्पादन में 10–20 प्रतिशत की वृद्धि ली जा सकती है।

बागवानी फसलों में फर्ट्रिगेशन तकनीक का प्रयोग

फसल उत्पादकता तथा उपज की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए फर्ट्रिगेशन तकनीकी में पोषक तत्वों का प्रबन्धन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। पौधे की बढ़वार के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। नये रोपे गये फलों के पौधो को प्रथम वर्ष पूर्णतः परिपक्व फल के पौधे की संस्तुत खुराक की 10 प्रतिशत आवयकता होती है और धीरे–धीरे हर वर्ष इसकी खुराक 20 प्रतिशत बढ़ाई जाती है। बागवानी फसलो में यह अवस्था अलग होगी जैसे प्रारिम्भक व अन्तिम

विभिन्न फसलों के लिए सिंचाई प्रौद्योगिकी

क्रमांक	फसलें	प्रौद्योगिकी
1	धान्य फसलें– गेहूँ, मक्का, बाजरा एंव ज्वार	स्प्रिंकलर
2	मूँगफली	स्प्रिंकलर / मिनी स्प्रिंकलर / ड्रिप
3	आलू	मिनी स्प्रिंकलर / स्प्रिंकलर / ड्रिप
4	केला	ड्रिप
5	गन्ना	ड्रिप
6	गन्ना+अन्तः फसल	मिनी स्प्रिंकलर / ड्रिप
7	बागवानी फसले + अन्तः फसल	ड्रिप / मिनी स्प्रिंकलर
8	प्याज, लहसून, धनिया व अन्य	मिनी स्प्रिंकलर
9	सब्जियाँ– टमाटर, बैंगन, भिण्डी एवं कद्दू वर्गीय फसले – करेला तथा अंगूर	ड्रिप
10	कपास एवं अरहर	ड्रिप
11	नर्सरी फसले	माइक्रो स्प्रिंकलर / मिनी स्प्रिंकलर
12	लघु एवं सीमांत भूमि वाले कृषकों के लिए	स्प्रिंकलर / ड्रिप
13	पहाड़ी क्षेत्रो के लिए	ड्रिप

अवस्था, बढ़वार अवस्था, फूल आने तथा फल आने के समय आदि। फर्ट्रिगेशन तकनीक में फसलवार अवस्थाओं के साथ–साथ पोषक तत्वों की सघनता, फलो में सिंचाई–उर्वरक / फर्ट्रिगेशन, खुले खेत की सब्जियों में सिंचाई–उर्वरक / फर्ट्रिगेशन, सब्जियों की संरक्षित खेती में सिंचाई–उर्वरक / फर्ट्रिगेशन, फूलो की संरक्षित खेती में सिंचाई–उर्वरक / फर्ट्रिगेशन आदि तकनीकीयों द्वारा फसल उत्पादकता तथा उपज की गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु विकसित किया गया है। उपरोक्त सिंचाई–उर्वरक / फर्ट्रिगेशन तकनीक सभी प्रकार की भूमि के लिए उपयोगी है, फिर भी यह बेहतर होगा कि मिट्टी की जांच के उपरांत ही पोषक तत्वों की मात्रा को स्थान विशेष के अनुसार उपयोग करना चाहिए।

जल संरक्षण हेतु अन्य प्रौद्योगिकियाँ / तकनीक एवं उन्नत सस्य क्रियाओं का प्रयोग

फसलो में उनकी क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई :– बौने किस्म के गेहूँ में पहली सिंचाई शीर्ष जड़ (20–25 दिन बाद) निकलते समय देना, मटर चना और मसूर में फूल निकलने से पहले की अवस्था सिंचाई के लिए क्रान्तिक पाई गई है।

विभिन्न प्रकार की बुवाई विधियों के अनुसार सिंचाई तकनीक अपनाना :– बुवाई विधियों जैसे क्रमिक कूडं सिंचाई, कूडं उठी हुई क्यारी पद्धति, एस0आर0आई0, फब्बारा एवं ड्रिप सिंचाई विधि द्वारा जल उपयोग क्षमता बढाने हेतु उपयुक्त विधियाँ है।

गेहूँ में पानी की बचत करने हेतु सस्य तकनीक :– गेहूँ की बुवाई बिखेरकर (50 प्रतिशत) एवं पंक्ति में बुवाई (50 प्रतिशत) तथा क्रिस–क्रोस विधि द्वारा करने से उपज एवं जल उपयोग क्षमता में वृद्धि हुई है।

फूलगोभी में पानी की बचत के लिए सस्य तकनीक :– प्रति हेक्टर 60:30 नत्रजन एवं फास्पोरस तथा 120 कु0 गोबर खाद डालने से फूलगोभी की उपज के साथ–साथ जल उपयोग क्षमता में वृद्धि हुई है। कूडं में रोपाई एवं सिंचाई करना सबसे अधिक लाभकारी है।

आलू में पानी की बचत के लिए सस्य तकनीक :– आलू की बुवाई मेड पर तथा सिंचाई कूंड में करने पर अधिक उपज प्राप्त होती है। आलू आधारित अन्तःफसलीकरण पद्धतियों में से आलू – मूली अन्तःफसलीकरण, सिंचाई कूंड में देने से लाभकारी था। आलू–मूली अन्तःफसलीकरण पद्धति में सिंचाई आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक कूंड में देने से अधिक जल उपयोग क्षमता एवं अधिक उपज की प्राप्ति होती है।

मूंग में पानी की बचत के लिए सस्य तकनीक :– ग्रीष्मकालीन मूंग में सबसे अधिक पानी की बचत, पहली साखा निकलने पर, दूसरी फूल आने से पूर्व तथा तीसरी फलियों में दाना भरने की अवस्था पर करने तथा बुवाई एवं सिंचाई कूंड में करने पर हुई है।

सरसों में पानी की बचत के लिए सस्य तकनीक :– सरसों की विभिन्न प्रजातियों में जैसे राई में 80:40 नत्रजन एवं फास्फोरस तथा फूल आने पर एक सिंचाई करने से प्रति हे0 अधिक उपज प्राप्त हुई है।

मैं हूँ ड्रैगन फ्रूट (Dragon fruit)

सुरेन्द्र सिंह एवं मंगल सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

किसान भाइयों मैं आपसे अपने बारे में बहुत सारी बात करना चाहता हूँ जिससे आप लोगों की आय बढाने में सहायता मिल सके।

मैं कौन हूँ

किसान भाइयों मेरा नाम ड्रैगन फ्रूट है हिंदी मे लोग मुझे पिताया भी कहते हैं। सबसे पहले मुझे मेक्सिको मे उगाया गया, उसके बाद मेरी खेती थाईलैंड, श्रीलंका, वियतनाम और मलेशिया आदि एशियाई देशों में होने लगी। वहाँ से होकर अब मैं आपके देश भारत मे भी उगाया जाने लगा हूँ।

आपने कैक्टस (नागफनी) तो देखी होगी जो कहीं भी उग आती है। मैं भी उसी से सम्बंधित एक एपिफाईटिक ;मचपचलजपबद्ध कैक्टस प्रजाति का पौधा हूँ। मैं बेल की तरह ही बढ़ता हूँ तथा मेरा पौधा देखने मे बहुत आकर्षक होता है। मुझ पर सुगंधित और सुंदर फल लगते हैं। मेरा स्वाद कुछ हद तक तरबूज और कीवी फल के समान होता है। मेरा फल बाहर से पीला, गुलाबी और लाल रंगों में हो सकता है तथा काटने पर अन्दर से मेरा गुद्दा सफेद और लाल रंग में हो सकता है। औषधीय गुणों के कारण मुझे खाने में उपयोग किया जाता है इस लिए मेरे फल को सुपर फूड भी माना जाता है।

मेरी (ड्रैगन फ्रूट की विशेषताएं)

मेरा फल एंटी–ऑक्सीडेंट, एंटीबायोटिक और पोषण तत्वों से भरपूर होता है जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाता है और खतरनाक रोगो से शरीर को मुक्त कराता है। इसके नन्हे बीज केंसर से लड़ने में भी मदद करते है। औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण मेरा प्रयोग डायबिटीज, अस्थमा, कोलेस्ट्राल आदि के मरीजों के लिए किया जाता है अधिक वसा वाले लोग भी मेरा सेवन करके मोटापा कम कर सकते हैं। मेरा फल ह्रदय को मजबूत करने के साथ ही आंखों की रोशनी भी बढ़ाता है। मेरे बीजों में पॉली अनसेचुरेटेड फेटी एसिड ओमेगा–3 और ओमेगा–6 पाए जाते हैं। इसलिए मुझे आसानी से चबाकर खाया जा सकता है। विषेशज्ञों के अनुसार वास्तव में मुझमें विटामिन बी और सी के साथ कैल्शियम, आयरन, फास्फोरस भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

मेरी खेती करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए

- मेरे पौधे तापमान के उतार चढ़ाव को आसानी से सहन कर सकते है 20 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान मेरे लिए उपयुक्त रहता है। मेरी खेती कम वार्षिक औसत बरसात होने वाली जगह पर आसानी से की जा सकती ह।
- वैसे तो मेरी खेती के लिए कोई विशेष प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता नही होती है सभी तरह की कम उपजाऊ मिट्टी में भी मुझे लगा सकते है लेकिन व्यावसायिक रूप से आप खेती करना चाहते है तो ५ से ७ पी एच मान वाली मिट्टी में मुझे लगाये।
- खेत की तैयारी के लिए पहले खेत को 2 या 3 बार गहरी जुताई कर लें ताकि उसमे पैदा हुए सभी प्रकार के खरपतवार नष्ट हो जाये। उसके बाद खेत में गोबर की खाद् या वर्मी कम्पोस्ट खाद् को मिट्टी में मिलाये। उचित जल निकास का प्रबंध अवश्य करें।
- मेरे पौधे कलम द्वारा तैयार किये जाते हैं। स्वस्थ पौधों की छंटाई करके मेरी शाखाओं से 20 सेमी लम्बे टुकड़े काटकर कलम बनाते है। काटने के बाद कलामों को रोपने से पहले छाँव में रखना चाहिए। जो किसान इसकी खेती कर रहे हैं उनसे भी मेरी कलम को खरीद सकते हैं।
- मेरी कलमों को लगाने के लिए कतार से कतार की दूरी 2 मीटर रखनी चाहिए। 2 ग 2 ग 2 फुट (लम्बाइ ग चौड़ाई ग गहराई) का गड्ढा खोद कर इसमें 12 फुट ऊँचाई और 6 इंच मोटाई का सीमेंट के पोल को गाड़ देना चाहिए। मिट्टी, गोबर की खाद और रेत को 1:1:2 के अनुपात में मिला कर गड्ढे में सीमेंट के पोल के चारों ओर भर दें। मिट्टी के साथ प्रति गड्ढे में 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और कम्पोस्ट को मिला कर भी भर सकते है। इसके बाद पोल के चारों ओर एक एक कलम को रोप दें। इस तरह एक एकड़ जमीन में लगभग

1800 (450 पोल, हर पोल पर 4 कलम) पौधे लग जायेंगे। मेरे पौधे काफी तेजी के साथ विकसित होते है उन्हें सहारा देने के लिए सीमेंट के पोल लगायें जाते हैं तथा हर पोल के ऊपर एक 2ग2 फुट सीमेंट का ही एक गोल चक्कर भी फिक्स कर देना चाहिए। गोल चक्कर पौधों को सपोर्ट देने के लिए लगाये जाते है।

- अन्य फसल की तुलना में मेरी फसल को काफी कम पानी की आवश्यकता होती है। रोपाई के तुरंत बाद पानी दे फिर एक सप्ताह के बाद सिचाई करें। गर्मी के दिनों में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करे। मेरे लिए ड्रिप सिंचाई अच्छी रहती है।
- मेरे पौधों के विकास में सड़ी हुई खाद मुख्य रूप से सहायक होती है इसलिए प्रति पौधे 10 से 15 किलो तक गोबर या कम्पोस्ट खाद देना चाहिए । खाद् की मात्रा प्रति दो वर्ष में बढ़ाते रहना चाहिए। पौधे के समुचित विकास के लिए समय समय पर रासायनिक खाद् भी देना चाहिये जिसमे पोटाश, सुपर फास्फेट, यूरिया को 40:90:70 ग्राम प्रति पौधा देना चाहिए। जब पौधों में फल लगना शुरू हो जाये तब नाइट्रोजन की मात्रा कम कर के पोटाश की मात्रा बढा देनी चाहिए जिससे अधिक उपज प्राप्त हो सके। फूल आने से पहले और फल आने के समय प्रति पौधे में 50 ग्राम यूरिया 50 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और 100 ग्राम पोटाश देना चाहिए। प्रति वर्ष प्रति पौधे में 220 ग्राम रासायनिक खाद् की मात्रा बढाई जानी चाहिए। अधिकतम मात्रा 1. 5 किलो तक हो सकती है।

बीमारियां

मेरे पौधों में अभी तक किसी भी तरह की बीमारी नहीं पायी गई है। जंगली जानवरो से मुझे कोई खतरा नहीं है।

प्रति एकड़ अनुमानित खर्चा, उपज और लाभ

मेरे पौधे दो ढाई साल में ही फल देने के लायक हो जाते है। मई जून महीने में फूल लगते है और अगस्त से दिसम्बर तक फल आ जाते है। प्रति एकड़ 5 से 7 टन उत्पादन होता सकता है। मेरा बाजार में भाव प्रति किलो 150 से 250 तक रहता है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में मेरी अधिक मांग है।

मैं एक सीजन में 3 से 4 बार फल देता हूँ और प्रति फल का वजन लगभग 300 से 800 ग्राम तक होता है। एक पोल पर 40 से 100 फल तक लगते है जिनका अनुमानित वजन

15 से 25 किलो हो सकता है। एक एकड़ में अनुमानित 6750 किलो फल और बाजार भाव कम से कम 125 रूपये प्रति किलो माने तो भी प्रति एकड़ अनुमानित 843750 रूपये की आमदनी हो सकती है। एक बार लगाने के बाद मेरी फसल 15 से 20 साल तक चलती है। शुरुआत मे एक एकड़ फार्म मे लगने वाले पोल, उनके ऊपर गोल चक्कर रखने, ड्रिप इरीगेशन सिस्टम लगाने तथा पौध खरीदने का कुल खर्च अनुमानित 3 से 4 लाख रुपये आता है।

खेती के लिए प्रशिक्षण

अगर आप ड्रैगन फ्रूट की खेती करने के इच्छुक हैं इसके बीज और प्रशिक्षण योजना के बारे में जानकारी चाहिए तो आप ग्रामकुल कृषि विकास केंद्र से बात कर सकते है। ग्रामकुल नाम का एक किसान उत्पादक संगठन हैं जहाँ पर उन्नत किस्म के स्वस्थ पौधे, खेती की तकनीक, परामर्श और बाजार की जानकारी ली जा सकती है। अधिक जानकारी के लिए आप नम्नलिखित पते पर सीधे संपर्क कर सकते हैं

ग्रामकुल कृषि विकास केंद्र, गाँव मित्राऊ, नजफगढ़, नयी दिल्ली

या गाँव कनलोग, तहसील पच्छाद, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश, मोबाइल नंबर 8837671544

जौ की प्रमुख बीमारियां एवं उनकी रोकथाम

अंजू शर्मा, रवि शेखर कुमार, पालिका शर्मा, कृष्ण गोपाल, ईश्वर सिंह, प्रेम लाल कश्यप, पूनम जसरोटिया, सुधीर कुमार एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

जौ हमारे देश के शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली प्रमुख रबी फसलों में से एक है. इसे कम पानी एवं नमकीन भूमि मैं उगाया जा सकता है. जौ की फसल को मुख्य रूप सा य पशुओं को दाने के रूप में खिलाया जाता है. लेकिन अब माल्ट उद्योगों के स्थापित होने से उद्योग जगत में जौ की भरी मांग हो गयी है. फसल स्तर २०१८–२०१६ के दौरान, जौ का उत्पादन १.७३ मिलियन टन और औसत उत्त्पादकता २६१७ किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर होने का अनुमान लगाया गया है। राज्यवार अनुमान बतातें हैं कि राजस्थान जौ उत्पादन (०.७६ मिलियन टन) में पहले स्थान पर है। इसके बाद उत्तर प्रदेश (०.४६ मिलियन टन) और मध्य प्रदेश (०.२६ मिलियन टन) है। उक्त तीन राज्य देश में उत्पादीत कुल जौ उत्पादन का लगभग ८६ प्रतिशत है। आमतौर पर, जौ की खेती सिंचाई एवं उर्वरक के सीमित साधन एवं असिंचित दशा में गेहूँ की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। जौ की फसल मे अनेक प्रकार की बीमारियों का प्रकोप होता है। जिसके कारण फसल में काफी नुकसान होता हैं। अतः उपज की हानि को रोकने के लिए उचित समय पर बीमारियों का नियन्त्रण बहुत आवश्यक है।

पीला रतुआः

जौ के पत्तों पर पीले रंग के छोटे–छोटे फफोले (पुस्टूल), कतारों में बनते हैं. कभी–कभी ये फफोले पतियों के डंठलों पर भी पाये जाते है। अधिक प्रकोप से बलियां भी रोगग्रस्त हो जाती है। यह रोग जनवरी के प्रथम पखवाड़े में दिखाई देने लगता है जब औसत तापमान 11 से 15 डिग्री सैंटीग्रेड एवं नमी अधिक होती है। लंबे समय तक ठंडा मौसम रहने पर यह रोग पौधे की वृद्धि के साथ बढ़ता जाता है तथा दाने भी कमजोर बनते हैं।

रोकथामः

- जौ की रोग रोधी एवं सहनशील किस्में जैसे–डी. डब्ल्यू. आर. बी. १०१, डी. डब्ल्यू. आर. बी. १२३, आर. डी. २८४६, आर. डी. २६०७, बी. एच. एस. ४०० एवं बी. एच. ६४६ को उगाएँ।
- रोग के नजर आते ही फसल पर प्रोपिकोनजाल 25ः ई. सी. का ०.१ प्रतिशत का पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

भूरा या पत्तों का रतुआः

नारंगी रंग के गोल धब्बे बेतरतीब रूप से जौ की पत्तियों एवं कभी–कभी पत्तियों की डंठलों पर बनते ह। इस बीमारी का प्रकोप फरवरी के अंतिम सप्ताह में शुरू होता है तथा जब तक फसल हरी रहती है इसका प्रकोप बढ़ता जाता है।

रोकथामः

- जौ की रोग रोधी किस्म डी. डब्ल्यू.आर.बी. १३७ और एच.यु.बी. ११३ की बिजाई करें।
- रोग के नजर आते ही फसल पर प्रोपिकोनजाल 25ः ई. सी. का ०.१ प्रतिशत का पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए. पहला छिड़काव तब करें, जब कहीं–कहीं बिमारी नजर आए। बाद में 10 से 15 दिन के अंतर से 2 या 3 छिड़काव करें।

आवृत कंडुवा रोगः

इस रोग में बालियों में दानो के स्थान पर फफूंदी का काला चूर्ण बन जाता है, जो एक मजबूत झिल्ली से ढके रहते है और मड़ाई पर वह झिल्ली फट जाती है, तथा वह काला चूर्ण स्वस्थ दानो में भी चिपक जाता है।

रोकथामः

- रोग दिखाई देते ही रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिये।
- रोग–रहित बीज का प्रयोग करें।
- कडुंवा रोग की रोकथाम के लिए बीज को उपचारित करके बुवाई करनी चाहिये।
- वीटावैक्स या बाविस्टीन की 2 ग्राम और टैबुकोनाजोले की १ ग्राम मात्रा से प्रति किलो बीज को उपचारित करके बुवाई करने पर कडुंवा रोग से बचाव किया जा

सकता है।

अनावृत कडुवा रोग:

इस रोग के कारण बालियों मैं दानों के स्थान पर काला चूर्ण बन जाता है, जो पकने तक झिल्ली द्वारा ढका रहता है और पकने पर झिल्ली फट जाती है और कवक बीजणू हवा में उड़कर पूरे खेत या पूरी फसल में फैल जाता है।

रोकथाम:

- रोग दिखाई देते ही रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिये क्योंकि अनावृत्त कंडुवा से ग्रसित पौधे की बालियां काली पड़ जाती है तथा इस रोग के रोगाणु हवा के साथ सम्पूर्ण खेत में फैल जाते है।
- रोग रोधी किस्मों का चुनाव करें।
- वीटावैक्स या बाविस्टीन की 2 ग्राम और टैबुकोनाजोले की १ ग्राम मात्रा से प्रति किलो बीज को उपचारित करके बुवाई करने पर कडुंवा रोग से बचाव किया जा सकता है।

झुलसा एवं पत्ती धब्बा रोग

इन दोनों बीमारियों के कारण पत्तियों पर पीले एवं भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं ये बीमारियां बहुत तेजी से फैलती है तथा फसल को काफी नुकसान पहुँचाती है।

रोकथाम:

- जौ की रोग रोधी एवं सहनशील किस्में उगाएँ।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर मेन्कोजेब का ०.२ प्रतिशत का घोल बना कर छिडकाव करें.

जैविक खेती में फसल सुरक्षा

पूनम जसरोटिया[1], जयंत यादव[2], प्रेम लाल कश्यप[1] एवं सुधीर कुमार[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा
[2]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैविक खेती एक पूर्ण उत्पादन प्रणाली है जो कीटों के प्रबंधन के साथ मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने एवं लाभकारी जीवों के संरक्षण पर भी जोर देती है। कृषि की यह प्रणाली हानिकारक कीटनाशकों से सुरक्षा प्रदान करने एवं पर्यावरण हितैषी होने के कारण समाज के सभी वर्गों (निर्माता, उपभोक्ता और व्यापारी) में व्यापक –प से स्वीकार्य है। पारंपरिक कृषि प्रणाली में कीटों, रोगों और खरपतवारों के नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ा है तथा खाने में जहरीले अवशेषों की वजह से मनुष्यों में बीमारियां पैदा होती है। कृषि रसायनों के निरंतर प्रयोग से कीटनाशक प्रतिरोध बढ़ा तथा अनेकों कीटों का पुनरुत्थान हुआ । कृत्रिम रसायन बिना किसी संदेह से उत्कृष्ट कीटनाशक हैं परन्तु उनके हानिकारक प्रभावों की वजह से सुरक्षित, सस्ते एवं टिकाऊ विकल्प खोजने की जरुरत है। इसके लिए विभिन्न कृषि क्रियाओं का एकीकरण आवश्यक है और उनमे से कुछ इस प्रकार हैं–

1. सस्य विज्ञान क्रियाएं

कीटों एवं रोगों के नियंत्रण में प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक जुताई जैसी कृषि प्रणालियाँ तुलनात्मक –प से ज्यादा प्रभावी हैं क्योंकि ये मृदा में छिपे हुए कीटों एवं रोगजनकों को उघाड़ देती हैं जिससे ये जैव नियंत्रकों तथा प्रतिकूल वातावरण के संपर्क में आकर नष्ट हो जाते हैं। खरपतवारों तथा वैकल्पिक पौधों को कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयोग करना चाहिए जिससे कीटों एवं पादप रोगों का भी संक्रमण कम होता है।

2. बीज, बीजोपचार तथा फसल प्रणाली

जैविक खेती के लिए अनुपचारित बीज पहली आवश्यकता हैं। जहां तक संभव हो कीट प्रतिरोधी स्थानीय –प से उपलब्ध किस्मों का उपयोग किया जाना चाहिए। बीजों को धूप में सुखाकर, 9 प्रतिशत या इससे कम नमी होने पर जैविक पदार्थों से उपचारित करके उचित जगह में भंडारित करना चाहिए। फसल प्रणाली को इस तरह से तैयार किया जाना चाहिए कि कीटों का वहन तथा निरंतर प्रकोप ना हो। फसल प्रणाली पोषक तत्वों को सोखने वाली नहीं होनी चाहिए तथा इसमे दलहन फसलों एवं फूलों वाले पौधों को सम्मलित करना चाहिए ताकि पर–परागण बढ़ने से उपज में भी वृद्धि हो। बुवाई या प्रतिरोपण से पहले 1 लीटर बीजामृत प्रति 10 किलो बीज की दर से किसी भी अन्य जैव–उर्वरक जैसे की एजोटोबैक्टर, एजोस्प्रिलियम, रहिजोबियम या फॉस्फोरस विलेयक के साथ मिलाकर बीजोपचार करना चाहिए। प्रतिरोधी फफूंद (ट्राइकोडर्मा विरिडे) को भी 5 ग्राम प्रति किलो की दर से बुवाई के समय बीज मे मिलाया जा सकता है तथा मुख्य फसल के साथ जाल (ट्रैप) फसलों का प्रयोग भी कीटों के नियंत्रण मे सहायक है।

3. जैव–फार्मूलेशन

एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार 1500 से अधिक प्रजाति के पौधे कीट निरोधक होते हैं तथा पौध भक्षण रोकते हैं। कीटों के नियंत्रण के लिए पौधों में व्यवहारिक एवं हार्मोन विरोधी गुण पाए जाते हैं। इनकी क्रिया प्रणाली को देखते हुए भिन्न प्रकार की फार्मूलेशन तैयार की गयी हैं तथा किसानों, छात्रों और अधिकारियों को इनके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। ऐसी कुछ महत्वपूर्ण फॉर्मूलेशन्स का विवरण निम्न प्रकार से है:

(1) **डेरेक अर्क (रस)**–5 किलोग्राम कटे हुए बकैण (डेरेक) के पत्तों तथा 2 किलोग्राम गोबर को 5 लीटर गोमूत्र में डालें और अच्छी तरह से मिलाकर कम से कम तीन दिनों के लिए स्टोर करें। अच्छी तरह से हिलाकर, छानकर एवं 50 लीटर पानी मिलाने के बाद यह मिश्रण खेत में प्रयोग किया जा सकता है। इसका 5 प्रतिशत की दर से स्प्रे, चूसने वाले कीड़ों (चेपा, चूरड़ा, माइट्स, मिलीबग) और पत्ती के धब्बे एवं

झुलसा रोग के लिए काफी प्रभावी है।

(2) **अग्नेयास्त्र**–आइपॉमिआ पौधे की 1 किलो कटी हुई पत्तियां, 5 किलोग्राम बकैण (डेरेक या मेलिआ अजादिरच) तथा 10 लीटर गोमूत्र को 12 लीटर पानी में डालें। आधा–आधा किलो पिसे हुए लहसुन एवं मिर्च को इस मिश्रण में डालें तथा तब तक उबालें जब तक मात्रा कम होकर आधी न हो जाए। खेत में पत्ती लपेटक एवं छेदक कीटों के खिलाफ उपयोग के लिए स्प्रे से पहले सामग्री को 20 गुना पतला करें।

(3) **देशपणी**– देशपर्णी का मतलब 10 भिन्न पौधों के पत्तो का मिश्रण है। इसके लिए, 100 ग्राम प्रत्येक आइपॉमिआ, मेलिआ, पोलिगोनम हायड्रोपाईपर, अखरोट, अरटिका, लैंटाना, यूपाटोरियम, विटेक्स नेगुंडो, गैंदा और सोलानम जैंथोकारपम के साथ 250–250 ग्राम लहसुन एवं मिर्च का पाउडर 2 लीटर गौमूत्र तथा 10 लीटर पानी में डालें। इस मिश्रण को 10 दिन तक बंद बर्तन में रखने के बाद 5 प्रतिशत की दर से खेत में स्प्रे करें। यह एक जाना माना पारम्परिक कीट निरोधक क्रिया वाला जैव–कीटनाशक है।

(4) **फार्मूलेशन 1**– 3 किलो पिसे हुए नीम या मेलिआ के पत्तों और 1 किलो निम्बोली के पाउडर को 10 लीटर गौमूत्र में डालें तथा इस मिश्रण को आधा रहने तक उबालें। एक दूसरे बर्तन में 250–250 ग्राम लहसुन और मिर्च का 1 लीटर पानी में मिश्रण बनायें । इन दोनों मिश्रणों को मिलाकर खेत में कीटों एवं बिमारियों के खिलाफ प्रयोग करने से पहले 50 लीटर पानी से पतला करें।

(5) **बीजामृत**– बढ़ते बीजों के कीटों से संरक्षण के लिए 1 लीटर गोमूत्र, 1 किलोग्राम गाय का गोबर, 1 लीटर दूध, 250 ग्राम बुझा हुआ चूना और 50 लीटर पानी का मिश्रण बनायें तथा एक पखवाड़े के लिए छोड़ दें। इस घोल में 10 किलोग्रामध्लीटर के हिसाब से एक घंटे के लिए बीज डालें। बुवाई से पहले बीजों को छाया में सुखाएं।

(6) **जीवामृत**– 1 लीटर गौमूत्र, 1 किलोग्राम गाय के गोबर, 200 ग्राम गुड़, 200 ग्राम चने के आटे, 100 ग्राम उपजाऊ मिट्टी तथा 20 लीटर पानी का मिश्रण बनायें तथा 20 दिन के लिए छोड़ दें। 200 लीटरध्एकड़ की दर से इस घोल को 3–4 बार खड़ी फसलों में प्रयोग करने से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है तथा विभिन्न कीटों से सुरक्षा मिलती है।

(7) **गौमूत्र**– यह पुराने समय से ही कीटों के खिलाफ इसका प्रयोग किया जाता है। यूरिक एसिड की उपस्थिति के कारण शुद्ध –प में यह पौधों के लिए जहरीला होता है। इसलिए 15 दिन पुराने गौमूत्र के 10 प्रतिशत घोल का प्रयोग फसलीय पौधों के कीटों से बचाव के लिए सुरक्षित है।

(8) **लस्सी**– यह एक मजबूत कीट विकर्षक है तथा कई मानव और पौधों की बीमारियों के इलाज के लिए भी जाना जाता है। नये पत्तों को इसके जहरीले प्रभाव से बचने के लिए 15–20 दिन पुराने तथा 10–20 गुना पतले मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है। गौमूत्र और लस्सी के घोल (1 – 1) में 7 दिनों तक प्रतिरोधक प्रभाव पाया जाता है।

(9) **पंचगव्य**– 4 लीटर गाय के गोबर का घोल तैयार करके उसमे 2 किलोग्राम ताजा गाय का गोबर, 3 लीटर गौमूत्र, 2 लीटर दूध, 2 लीटर दही और 1 किलोग्राम देसी घी डालें। मिश्रण को 10–15 दिनों के लिए एक हवाबंद बर्तन में किण्वन के लिए धूप मे रखें तथा रोज हिलाएं। नर्सरी और पॉलीहाउस में मिट्टी को भिगोने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। यह 10 प्रतिशत की दर पर प्रयोग करने से विभिन्न रोगों एवं फसलों के कीटों से सुरक्षा प्रदान करता है।

(10) **घणनिरि अर्क (रस)**– यह पोलिगोनम हायड्रोपाईपर के 2 किलोग्राम पिसे हुए पत्तों को 4 लीटर गौमूत्र और पानी में मिलाकर बनाया जाता है। इस मिश्रण को एक हवाबंद बर्तन में किण्वन के लिए रखा जाता है तथा छानकर 5 प्रतिशत की दर से चूसने वाले कीड़ों (चेपा, चूरड़ा, माइट्स, मिलीबग) के नियंत्रण के लिए उपयोग किया जाता है। यह जैविक परिस्थितियों में सभी प्रकार के चेपा का रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में बहुत अच्छा प्रबंधन करता है।

(11) **लैंटाना अर्क (रस)**– इसे 4 किलोग्राम ताजे पिसे हुए लैंटाना के पत्तों को 12–12 लीटर गौमूत्र एवं पानी में मिलाकर तैयार किया जाता है। 15 दिनों के बाद इस घोल को छानकर, फसल कीटों के खिलाफ स्प्रे के –प

में उपयोग किया जाता है। लैंटाना पाउडर को 5 गुना ज्यादा राख या किसी भी अन्य धूल वाहक के साथ मिश्रित करके छिड़काव करने से भी अच्छे परिणाम मिलते हैं।

(12) **नीम के बीजों (निम्बोली) की गिरीध्पत्ती का अर्क**– 4 किलोग्राम पिसे हुए नीम के बीज ६ नीम के पत्तों को लगभग बराबर मात्रा में पानी में डालें और इस सामग्री को आधा होने तक उबालें। 2 लीटर पुराना गौमूत्र मिलाकर, छानकर, 15–20 गुना पतला करने के बाद इस घोल का उपयोग विभिन्न फसलों में कीटों और रोगों के खिलाफ किया जाता है।

(13) **हिम्सोल**– यह फसलों के जीवाणु तथा फफूंद रोगों के प्रबंधन का एक अच्छा विकल्प है। यह 200 मिलीलीटर पानी में 200 ग्राम अग्निहोत्र राख, 15 लीटर गौमूत्र और 75 किलोग्राम गोबर का उपयोग करके तैयार किया जाता है। घोल को एक टैंक में रखकर, रस्सी से बंधा हुआ एक श्री यंत्र अंदर लगाया जाता है। फिर इसे गाय पैट पिट (सी.पी.पी.), केंचुआ खाद और गौमूत्र के साथ समान मात्रा में मिलाकर स्प्रे के लिए प्रयोग किया जाता है।

(14) **ताम्र लस्सी**– ताम्र लस्सी बनाने के लिए लस्सी को 15–20 दिनों के लिए तांबे के बर्तन में डालकर, एक गड्ढे में रखकर रोज हिलाया जाता है। इस सामग्री का उपयोग 100 लीटर प्रति एकड़ की दर से शहतूत और टमाटर में पीले मोजेक वायरस, झुलसा रोग तथा कीटों के निवारण के लिए किया जाता है।

(15) **यूफोर्बिआ (दूधी)**– इस पौधे का दूध बहुत जहरीला होता है तथा 1 लीटर पानी में इसके दूध की केवल 10 बूंदें ही कीटों के नियंत्रण के लिए पर्याप्त होती हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए की प्रयोग के दौरान इसका दूध त्वचा पर ना गिरने पाए।

(16) **गाय का दूध**– इसका प्रयोग पुराने समय से ही मटर एवं कद्दू फसलों में पाउडरी मिल्ड्यू (खर्राध्दहिया) रोग के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

(17) **अन्य**– कैलोट्रोपिस (आक), सफेदा, नींबू घास का तेल, यूपाटोरियम (हॉर्स टेल), काली मिर्च, डलबर्गिया सिसु (शीशम), एल्बिजिया (सिरस), विटेक्स नेगुंडो आदि पौधों के अर्क कीटों के प्रबंधन के लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

4. जाल (ट्रैप) फसलों का कीट प्रबंधन में उपयोग

ट्रैप (जाल) फसलें मुख्य फसलें नहीं हैं, लेकिन कीटों को आकर्षित करने या धोखा देने के लिए खेत की परिधि पर लगाई जाने वाली फसलें हैं। ये पौधे आमतौर पर कीटों के लिए फसलीय पौधों से ज्यादा आकर्षक हैं। ऐसी फसलों के कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं–

- चूसने वाले कीटों के प्रबंधन के लिए स्ट्रॉबेरी की फसल के आसपास अल्फाल्फा घास की रोपाई की जाती है।
- ग्रीष्मकालीन स्क्वैश का रोपण अच्छे परिणाम देता है।
- साधारण मिर्च, शिमला मिर्च के कीटों को अपनी तरफ आकर्षित करती है।
- टैगेटस (गेंदा) के पौधे लहसुन के थ्रिप्स को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं।
- सामान्य गोभी में चीनी गोभी का उपयोग छेदक कीटों को आकर्षित करके मारने के लिए किया जाता है।
- सरसों की फसल के अधिकांश कीटों के प्रबंधन के लिए शलजम के पौधे लगाए जाते हैं।
- दलहन फसलों में मक्का का प्रयोग परिधि फसल के रूप में किया जाता है।
- गोभी में डी.बी.एम. (डायमंड बैक मोथ) के प्रबंधन के लिए जाल फसल के रूप में टमाटर का उपयोग किया जाता है।
- गोभी के तना छेदक का प्रबंधन करने के लिए ट्रैप फसल के रूप में सरसों का उपयोग किया जाता है। टमाटर में अमेरिकन तथा चित्तीदार सुंडी के प्रबंधन के लिए प्रत्येक 10 पंक्तियों के बाद टगेट्स (गैंदा) या ओसीमम (तुलसी) की एक पंक्ति लगाई जाती है।

5. जैव कीटनाशक

- विभिन्न फफूंद जैसे बिवेरिआ बासियाना और मेटेरहिजियम अनीसोपली का प्रयोग 5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर या 1.15 प्रतिशत पाउडर फार्मूलेशन 5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से, मिट्टी में रहने वाले सभी कीड़ों (कटुआ, भूंड, दीमक) के खिलाफ किया जा सकता है।

ये बाजार में दमनवीरा, बायोपाउडर, बायोगॉर्ड, बायोमेटा, बायोमैजिक के नाम से प्रचलित हैं।

- एक अन्य फफूंद, वर्टिसिलियम लेकेनी नरम शरीर वाले कीड़ों (चेपा, चूरड़ा, माइट्स, मिलीबग) के प्रबंधन में बहुत उपयोगी है और वर्टिसॉफ्ट, वर्टिगॉर्ड, बायोलिन, वर्सेटाइल, बायोकैच आदि के नाम से बाजार में उपलब्ध है। सामान्य तौर पर इसका उपयोग 2–3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से किया जाता है लेकिन यह फार्मूलेशन के हिसाब से बदल सकती है।
- बेसिलस थुरिनजेनसिस (बी.टी.), डाइपेल, डेल्फिन, बायोलेप, बेक्टीन, बायोबिट, बायोएस्प, लिपल इत्यादि जैसे कई नामों से उपलब्ध है तथा इसका प्रयोग 1–2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से साप्ताहिक अंतराल पर सभी प्रकार की सुंडियों के खिलाफ किया जाता है।
- जैविक खेती में हानिकारक कीटों के प्राकृतिक नियंत्रण के लिए मित्र कीटों और पक्षियों का संरक्षण लाभकारी है।
- कोक्सीनेला सेप्टम्पंक्टाटा (लेडी बर्ड बीटल) चेपा का एक शिकारी कीट है जो व्यावसायिक रूप से उपलब्ध हैं और प्रकृति में बहुतायत से पाया जाया है। कृत्रिम रूप से छोड़े गए क्राइसोपर्ला कारनिया मक्का, सरसों और गोभी फसलों में कीटों के प्रभावी नियंत्रण में सहायक हैं।
- डैम्सेल और ड्रैगन फ्लाई नम क्षेत्रों में पाए जाने वाले शिकारी हैं जबकि ततैया कई कीटों की अपरिपक्व सुंडियों के नियंत्रण में सहायता करते हैं।
- ट्राइकोग्रामा काईलोनिस एवं ट्राइकोग्रामा जपोनिका अन्य पैरासाइटोइड्स (जो कीटों में रहते हैं, उन्हें मार सकते हैं या नहीं मार सकते हैं लेकिन उन्हें नुकसान पहुंचाते हैं) हैं और व्यावसायिक रूप से पालकर 1.5 लाख/ हेक्टेयर की दर से फसलों के अधिकांश कीटों के नियंत्रण के लिए छोड़े जाते हैं।
- मकड़ियाँ भी महत्वपूर्ण शिकारी होती हैं इसलिए कीट प्रबंधन के लिए उनकी संख्या को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- वायरस जैसे न्यूक्लिअर पॉलीहेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.) अमेरिकन सुंडी, भिंडी छेदक, तम्बाकू की सुंडी के प्रबंधन में लोकप्रिय होते जा रहे हैं तथा बड़े पैमाने पर प्रयोग होते हैं। स्पोडोवैक्स, हेलिवैक्स, एनपीवी हाली, एनपीवी स्पोडो आदि इनकी उपलब्ध फॉर्मूलेशन्स हैं। साइटोप्लास्मिक और ग्रैनुलोसिस वायरस का उपयोग भी विभिन्न कीटों के नियंत्रण के लिए किया जा रहा है।
- स्यूडोमोनस, ट्राइकोडर्मा विरिडे, स्ट्रेप्टोमाइसेस, पैसिलोमाइसेस आदि अन्य जैविक प्रतिनिधि हैं जो जैविक खेती में रोगजनकों के खिलाफ काफी लोकप्रिय हो रहे हैं।
- कीट प्रबंधन में विभिन्न प्राकृतिक साबुनों का उपयोग भी किया जा सकता है। जैविक कृषि में नीम, मिलिया, करंज, सोपनट आदि जैसे साबुनों का व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है।
- पहले पेट्रोलियम तेल का उपयोग बागवानों द्वारा स्प्रे के रूप में नरम शरीर के कीड़ों के प्रबंधन के लिए किया जाता था। ये तेल अब कृषि फसलों में भी कीट प्रबंधन के लिए नए विकल्प बन गए हैं। इन भारी तेलों को भृंग कीटों एवं सुंडियों के खिलाफ प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन इनके प्रयोग में सावधानी बरतने की जरूरत है क्योंकि इनका उपयोग केवल परिपक्व पौधों पर ही किया जाना चाहिए।

- **6. पारंपरिक एवं अनुशंसित कीट प्रबंधन तकनीक**

- प्रकाश जाल (लाइट ट्रैप) किसानों के बहुत महंगा होता है, इसलिए रात के दौरान बिजली के बल्ब से भी वयस्क कीटों को आकर्षित किया जा सकता है। इन कीटों को झाड़ू द्वारा एकत्र करके उनको मिट्टी के तेल में डालकर मारा जा सकता है। इस कार्य से खेतों में कीटों की संख्या प्रोत्साहित होगी। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए की इससे मित्र कीटों को कोई नुकसान न पहुंचे। जैविक खेती में उपयोग योग्य कुछ प्रमुख तकनीकें निम्नलिखित हैं–
- पौध–रोग प्रबंधन के लिए समृद्ध खाद का उपयोग करना चाहिए।
- चेपा, सफेद मक्खी आदि के प्रबंधन के लिए फव्वारा सिंचाई प्रणाली का प्रयोग करना चाहिए।
- उड़ने वाले कीड़ों को पकड़ने के लिए कीट संग्रह जाल का उपयोग करना चाहिए।

- पौधों की रोगग्रस्त पत्तियों तथा उनपर मौजूद अंडो और सुंडियों को संग्रहित करके नष्ट कर देना चाहिए।
- पौधों को हिलाकर या उनपर से रस्सी फेरकर कीटों की प्रारंभिक अवस्थाओं को अलग कर सकते हैं।
- लाल मिर्च और लहसुन के पेस्ट को बराबर मात्रा में 10 गुना पानी में एक दिन के लिए भिगोकर रखें तथा इसको 10 गुना पतला करके कीट प्रबंधन के लिए इस्तेमाल करें।
- 5 किलोग्राम नीम के बीज के पाउडर, 200 ग्राम तंबाकू एवं 5 लीटर गौमूत्र को 2–3 दिनों के लिए 30 लीटर पानी में डालकर रखें तथा इसका इस्तेमाल नरम शरीर वाले कीटों के प्रबंधन के लिए करें।
- फफूंद रोगों के प्रबंधन के लिए आधा किलोग्राम करंज (पापड़ी) की पत्तियां और 100 ग्राम तंबाकू को 3 लीटर पानी में उबालें तथा तैयार अर्क को 20 लीटर पानी में पतला करके एक एकड़ में स्प्रे करें।
- 40 ग्राम हींग और 1 लीटर किण्वित लस्सी का उपयोग दालों के सुरक्षित भंडारण के लिए किया जा सकता है।
- पेड़ों में कांट–छांट की वजह से होने वाली क्षति एवं बिमारियों से बचाने के लिए उनको हिम खाद मलहम से उपचारित किया जाता है। यह 2.5 किलोग्राम हिम खाद, 10 किलोग्राम गाय के गोबर, 5 ग्राम सिलिका और 50 ग्राम बी.डी. 505 का उपयोग करके तैयार किया जाता है।
- चूहों के नियंत्रण के लिए 3 किलोग्राम आइपॉमिआ की पत्तियाँ, धतूरे के 3 पके फल और आधा किलोग्राम बेसन को एक साथ 3 लीटर पानी में मिलाकर गाढ़ा पेस्ट बनने तक उबाला जाता है तथा इसके बिस्कुटों को चूहों के बिल के सामने रखा जाता है। इसको खाने के तुरंत बाद चूहों की मौत हो जाती है।
- दीमक के नियंत्रण के लिए मक्की से आधा भरा मिट्टी का घड़ा खेत या घर के बीच में दबाया जाता है तथा कुछ समय बाद इसे बाहर निकालकर दीमकों को मार दिया जाता है। इसके अलावा गाय के ताजा गोबर को खेत के किनारों पर डाला जाता है तथा कुछ समय बाद इसको वहां से हटाकर इकट्ठी हुई दीमकों को नष्ट कर दिया जाता है।

ये सभी क्रियाएं प्रत्येक फसल के प्रमुख कीटों, उनके व्यवहार एवं जीवन में कमजोर कड़ियों और उनके संक्रमण के समय की पहचान करने के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती हैं। फसल के आसपास उचित स्वच्छता एवं पर्याप्त निषेचन (फर्टीलाइजेशन) भी कीटों के संक्रमण को हतोत्साहित करते हैं। किसानो को अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त प्रबंधन उपाय का चुनाव करना चाहिए।

गेहूँ जानकारी : किसानों के लिए एंड्राइड ऐप

अजय वर्मा एवं जी पी सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग कृषि को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ बनाने की दिशा में काम करने वाली सेवाओं के प्रसारण के समर्थन में है, जबकि सभी के लिए पौष्टिक और किफायती भोजन के वितरण में योगदान – इसमें डिजिटल कृषि शामिल है। इससे मोबाइल ऐप्स का विकास हुआ है जो सरकारी योजनाओं और कृषि आधारित अन्य जानकारियों को ग्रामीण किसानों तक पहुंचाने में मदद कर रहे हैं। यह बदलाव भारतीय कृषि के लिए एक गेम–चेंजर के रूप में काम कर रहा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 2015 में शुरू किए गए डिजिटल इंडिया का उद्देश्य डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना और ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाने के लिए बुनियादी ढांचे का निर्माण करना है। यह देखते हुए कि 58 प्रतिशत ग्रामीण परिवार कृषि पर अपनी आजीविका के प्रमुख स्रोत के रूप में निर्भर हैं, इंडिया के लिए डिजिटल कृषि की भूमिका पर विचार करने की आवश्यकता है।

एंड्रॉइड एक शक्तिशाली ऑपरेटिंग सिस्टम है और यह स्मार्टफोन में बड़ी संख्या में एप्लिकेशन का समर्थन करता है। ये एप्लिकेशन उपयोगकर्ताओं के लिए अधिक आरामदायक और उन्नत हैं। एंड्रॉइड मुख्य रूप से टच स्क्रीन मोबाइल उपकरणों जैसे स्मार्ट फोन और टैबलेट कंप्यूटर के लिए डिजाइन किया गया है। ऑपरेटिंग सिस्टम ने पिछले 15 वर्षों में काले और सफेद फोन से लेकर हाल के स्मार्ट फोन या मिनी कंप्यूटर तक बहुत कुछ विकसित किया है। इन दिनों सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाले मोबाइल ऑपरेटिंग सिस्टम में से एक एंड्रॉइड है। एंड्रॉइड सॉफ्टवेयर है जिसे 2003 में कैलिफोर्निया के पालो अल्टो में स्थापित किया गया था। एंड्रॉइड एक ओपन सोर्स ऑपरेटिंग सिस्टम है जिसका अर्थ है कि यह मुफ्त है और कोई भी इसका उपयोग कर सकता है। एंड्रॉइड के लाखों एप्लिकेशन उपलब्ध हैं जो आपके जीवन को एक या दूसरे तरीके से प्रबंधित करने में आपकी सहायता कर सकते हैं और यह बाजार में कम कीमत पर उपलब्ध है क्योंकि एंड्रॉइड बहुत लोकप्रिय है।

दुनिया की महत्वपूर्ण फसलों में गेहूँ एक मुख्य खाद्य फसल है, जो कि वैश्विक कृषि अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक अनुमान के अनुसार दुनिया भर में 20 प्रतिशत कैलोरी इसी फसल की खपत से पूरी होती है। लेकिन जनसंख्या और बदलती जलवायु किसानों पर अधिक गेहूँ उत्पादन करने के लिए दबाव बना रही है। हरित क्रांति के फलस्वरूप देश में खाद्यान वाली दो फसलों, चावल और गेहूँ के क्षेत्रफल व् उत्पादन में जबर्दस्त तेजी से वृद्धि हुई है जो की देश में खाद्य सुरक्षा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। भारतीय गेहूँ एवं जौ संस्थान, करनाल पिछले कई वर्षों से गेहूँ एवं जौ की उत्तम प्रोद्योगिकियों को विकसित कर खाद्यान उत्पादन को नयी ऊँचाइयों पर ले जाने के साथ किसानो की आमदनी को बढ़ाने में बहुमूल्य योगदान दे रहा है। गेहूँ जानकारी ऐप भारतीय किसानों के लिए बहुत उपयोगी हैं जो गेहूँ की नवीनतम तकनीक के साथ अद्यतित रहते हैं।

खुम्ब (मशरूम) के पोषक गुण

ओ. पी. अहलावत, लोकेन्द्र कुमार, अनिल खिप्पल, सोनिया श्योराण एवं भूमेश कुमार

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

आज का शिक्षित व्यक्ति अपने भोजन के प्रति अधिक जागरूक एवं सतर्क है। भोजन में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्वों की जानकारी प्रत्येक शिक्षित उपभोक्ता चाहता है जिसका उस विशेष भोज्य पदार्थ की मांग तथा मूल्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है। खुम्ब हमारे देश के लिये एक नवीन खाद्य पदार्थ हैं जिसे यदि भोजन के रूप में प्रचलित तथा प्रोत्साहित करना है तो इसके विशिष्ट पौष्टिक एवं औषधिय गुणों को प्रचारित करना होगा। यहां पर यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि विकसित देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति खुम्ब की खपत भारत में बहुत कम है जैसे जर्मनी के 3 किलो ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष की तुलना में भारत में मात्र 30 ग्राम खपत होती है। खुम्ब उत्पादकों के हित में होगा कि वे इसके गुणों के बारे में उचित माध्यम एवं तरीके से लोगों को अवगत कराये ताकि खुम्ब की खपत बढ़े और किसानों को विपणन की समस्या का समाधान हो सके। किसी भी खाद्य पदार्थ के पौष्टिक गुणों के मूल्यांकन हेतु पोषण विज्ञान में सर्वमान्य तरीका है कि उसमें कितने शुष्क तत्व (ड्राईमैटर), ऊर्जा (कैलोरीज), प्रोटीन, शर्करा (कार्बोहाईड्रेट्स), वसा (फैट), रेशा (फाईबर) विटामिन्स तथा खनिज तत्व (मिनरल्स) पाये जाते हैं।

ऊर्जा (कैलोरीज)

मानव को शारीरिक एवं मानसिक कार्य करने के लिये ऊर्जा चाहिए जो उसके मुख्य खाद्य पदार्थों जैसे गेहूं, चावल, मक्की, आलू इत्यादि शर्करा–आधारित तथा तैलीय खाद्य जैसे मूंगफली, घी, सोयाबीन इत्यादि से मिलती है। खाद्य पदार्थ में स्टार्च, शुगर तथा तेल ऊर्जा के मुख्य स्रोत है। जहां तक खुम्ब का प्रश्न है वह एक बहुत कम ऊर्जा का स्त्रोत (लो कैलोरी फूड) है क्योंकि इसमें पानी अधिक (90 प्रतिशत), शुष्क अवयव कम (10 प्रतिशत) और वसा कम (0. 6 प्रतिशत) है। खुम्ब की ऊर्जा में कमी अभिशाप नहीं अपितु मोटापा के शिकार लोगों के लिये वरदान है। आज के जीवन में जिसमें शारीरिक कार्य बहुत ही कम करना पड़ता है, लोग मोटापे के शिकार हो रहे हैं और उन्हें डाइटिंग पर जाने की सलाह दी जाती है। खुम्ब में ऊर्जा कम होने के दो मुख्य कारण है। स्टार्च तथा शर्करा का न होना और वसा की मात्रा। स्टार्च तथा शर्करा जो खुम्ब में न के बराबर है जिसके कारण यह मधुमेह के रोगियों के लिये उत्तम है। वैसे भी मधुमेह के रोगी को कम ऊर्जा–अधिक प्रोटीन (लो कैलारी–हाई प्रोटीन) खाने की सलाह दी जाती है जो खुम्ब में पायी जाती है। वसा कम है, थोड़ी ही सही अच्छी गुणवत्ता की वसा है तथा कोलेस्ट्राल–विहीन है। इन तीनों गुणों के कारण हृदय रोग के प्रतिरक्षण तथा निवारण हेतु खुम्ब एक उत्तम आहार है।

खुम्ब की सामान्य पौष्टिक संरचना

पानी	90 प्रतिशत
शुष्क अवयव	10 प्रतिशत
प्रोटीन	2.5–3.0 प्रतिशत
कार्बोहाईड्रेट	4–6 प्रतिशत
वसा	0.4–0.6 प्रतिशत
रेशा	1 प्रतिशत
राख	1 प्रतिशत

प्रोटीन

खुम्ब का हमारे भोजन में वास्तव में प्रोटीन के स्त्रोत के रूप में महत्व है। ऊर्जा के लिये हम रोटी, चावल का प्रयोग करते हैं। खुम्ब में सामान्य सब्जियों की तुलना में प्रोटीन की मात्रा अधिक है। खुम्ब में लगभग 2.5– 3.0 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है। सूखी हुई ढिंगरी और अन्य सूखे खुम्बों में प्रोटीन 20–30 प्रतिशत हो जाती है। प्रोटीन की मात्रा से अधिक उसकी गुणवत्ता महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जंतु–जनित प्रोटीन (दूध, अण्डा, मांस, मछली) वनस्पति जनित प्रोटीन की तुलना में बहुत अच्छी गुणवत्ता की होती है। उसका कारण है कि वनस्पति प्रोटीन में कुछ आवश्यक अमीनो अम्लों की कमी पाई जाती है जैसे गेहूं और चावल में लाईसीन तथा ट्रिप्टोफेन की कमी है उसी तरह दालों में मिथियोनीन तथा सिस्टीन की कमी है। हम रोटी–दाल साथ इसलिये खाते हैं कि रोटी की कमी दाल पूरी कर दे और दाल की कमी रोटी। गुणवत्ता के मापदण्ड पर दूध को 100 मानकर अन्य खाद्य पदार्थों की

तुलना की जाती है।

खाद्य पदार्थ प्रोटीन की गुणवत्ता (वॉयोलॉजिकल वैल्यू)

1	दूध	100
2	अंडा	95
3	मीट, मछली, मुर्गा	80–85
4	खुम्ब	82
5	गेहूं/चावल	40–45
6	दाल	50–55

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट हो जाता है कि खुम्ब के प्रोटीन की गुणवत्ता मांसाहारी भोजन के बराबर है। एक शाकाहारी भोजन में मांसाहारी भोजन के गुण – इससे उत्तम और क्या चीज होगी। खुम्ब के प्रोटीन की गुणवत्ता इसलिये अच्छी है कि इसमें सभी आवश्यक अमीनों अम्ल पाये जाते है। इसकी प्रोटीन में एक और विशेष बात है कि लाईसीन नामक अमीनो अम्ल की बहुलता है जिससे यह भारत जैसे देश जहां गेहूं और चावल मुख्य आहार है और जिनमें लाईसीन की कमी होती है, के लिये अति उत्तम आहार है। खुम्ब गेहूं तथा चावल की प्रोटीन गुणवत्ता की कमी की भरपाई करता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि खुम्ब लाईसीन से भरपूर अच्छी गुणवत्ता की प्रोटीन का अच्छा स्त्रोत है। यहां पर यह बता देना लाभदायक होगा कि प्रोटीन की सबसे ज्यादा आवश्यकता बढ़ते बच्चों, गर्भवती एवं दूध पिलाती माताओं की होती है।

विटामिन्स

खुम्ब में विटामिन ए, डी, इ, और के. मात्र नाम के बराबर या नहीं होती है। इसका मुख्य कारण है कि उपरोक्त विटामिन वसा (तेल) में घुलनशील है और खुम्ब में तेल कम है इसलिये ये विटामिन भी कम है। विटामिन–सी भी कम (6–8 मिलीग्राम) पाई जाती है। वास्तव में खुम्ब में प्रचुरता विटामिन बी–कम्पलेक्स की है। वैसे लगभग सारे कवक बी–कम्पलेक्स से भरपूर है। इसमें थाईमीन, राइबोफ्लैविन, नियासिन इत्यादि बी–काम्पलेक्स विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें फॉलिक एसिड तथा बी–12, पाये जाते हैं। खुम्ब में इन दोनों विटामिनो के साथ आयरन तथा प्रोटीन पाये जाते हैं इस तरह हीमोग्लोबिन बनाने के सभी अवयव उपलब्ध हैं। इसलिए खुम्ब हीमोग्लोबिन की कमी (एनीमिया) हेतु अति उत्तम खाद्य पदार्थ है। इसलिये गर्भावस्था में तथा एनीमिया के रोगियों के लिये खुम्ब एक उत्तम आहार है।

वैज्ञानिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि अकेले खुम्ब में वह शक्ति है कि यह रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य बनाये रख सकता है। यहां यह बता देना उचित होगा कि साधरणतया शाकाहारी भोजनों में फॉलिक एसिड तथा बी–12 नहीं पाये जाते। ये वहीं पाये जाते हैं जहां इनकी आवश्यकता होती है यानि खून बनाने में, यानि मांसाहारी भोजन में। यह भी एक कारण है कि भारतवर्ष जैसे शाकाहारी देश में रक्त की कमी (एनीमिया) एक बड़ी समस्या है।

लवण तत्व

खुम्ब में पोटेशियम, सोडियम, मैग्नीशियम की बहुलता है। आयरन का जिक्र पहले किया जा चुका है। वैसे आयरन की मात्रा के साथ–साथ शरीर के लिये इसकी उपलब्धता ज्यादा महत्वपूर्ण है। खुम्ब में आयरन तो है ही परन्तु उसकी बहुत अधिक मात्रा उपलब्ध आयरन (अवेलेबल–आइरन) के रूप में पाई जाती है यानी संपूर्ण आयरन की मात्रा का अच्छा भाग शरीर के लिये उपलब्ध है। कैल्शियम की थोड़ी कमी पाई जाती है। खुम्ब पाचन के बाद यह पेट में क्षारीय अवशेष छोड़ता है जिसका मतलब है यह एसिडिटी के मरीजों के लिये वर्जित नहीं अपितु लाभप्रद है। अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में खुम्ब में पोटेशियम–सोडियम का अनुपात अधिक है (10:1) यानी सोडियम की तुलना में पोटेशियम बहुत अधिक है जिससे यह रक्त–चाप (ब्लडप्रेशर) में उत्तम आहार है।

रेशा

खुम्ब में रेशा की मात्रा बहुत अधिक है (ताजे में 1 प्रतिशत तथा शुष्क में 10 प्रतिशत) जिसके कारण कब्ज में लाभदायक हैं। साथ ही रेशे का महत्व भोजन में इस कारण भी बढ़ गया है कि रेशा, शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता (इम्यूनिटी) बढ़ाता है। रेशा भोजन का वह भाग है जो पाचन के बाद अवशेष बचता है और मल के रास्ते बाहर निकलता है। हरी–सब्जियों में रेशा अधिक होता है।

खुम्ब के औषधिय गुण

उपरोक्त पौष्टिक महत्व में लिखे हुए रोगों में खुम्ब अपनी विशिष्ट संरचना के कारण भोजन के रूप में उचित आहार है। इसे इसका औषधिय गुण नहीं समझना चाहिए। खुम्ब में बहुत सी विशिष्ट औषधिय गुण (हर्बल प्रापर्टीज) पाये जाते हैं। कुछ खुम्बों में ये औषधिय गुण इतने ज्यादा हैं कि उन खुम्बों का मात्र दवा के रूप में प्रयोग हो रहा है। विशिष्ट खुम्बों में कुछ औषधिय गुण ज्यादा हो सकते हैं लेकिन शेष खुम्बों में भी कई औषधिय गुण पाये जाते हैं।

कैंसर प्रतिरोधी क्षमता, खून में कोलस्ट्रॉल कम करने की क्षमता, ब्लड शुगर कम करने की क्षमता, रक्तचाप कम करने का गुण, ये खुम्ब के बहुचर्चित औषधिय गुण हैं। आयस्टर मशरूम किडनी रोग में लाभप्रद पाया गया है।

खुम्ब के औषधीय गुण

	खुम्ब	व्याधियों हेतु औषधि
1	रिशी (गैनोडरमा ल्यूसिडम)	कैंसर
2	मेटाके (ग्राइफोला फ्रोन्डोसा)	हृदय रोग
3	शिटाके (लेंटाइनस इडोड्स)	वृक्क रोग
4	कार्डीसेप्स	मधुमेह
5	हेरिसियम	रक्तचाप, एलर्जी, एंटी इन्फ्लेमेटरी, एंटी आक्सिडेज

आज संसार में यदि 15 बिलियन डालर के बराबर खुम्ब भोजन के रूप में प्रयोग हो रहे हैं तो 3 बिलियन डालर के बराबर औषधि के रूप में। पूर्वी एशिया (कोरिया, चीन, जापान, थाईलैंड) की औषधि पद्धतियों में खुम्बों का प्रयोग सबसे ज्यादा होता है। रिशी मशरूम सबसे महत्वपूर्ण औषधिय खुम्ब है और औषधिय खुम्बों के व्यापार का 70 प्रतिशत भाग रिशी मशरूम का है।

उपरोक्त जानकारियां यदि उपभोक्ता तक पहुंचाई जाती हैं तो खुम्ब न खाने वाला इसे खाना शुरू कर देगा और जो खा रहा है वह खुम्ब उपभोग की मात्रा तथा बारम्बारता बढ़ाएगा जिससे किसानों को खुम्ब की बिक्री की समस्या का समाधान ही नहीं होगा, उसे उचित मूल्य भी मिलेगा।

मखानाः पोषक तत्वों एवं औषधीय गुणों का खजाना

लोकेन्द्र कुमार, ओमप्रकाश अहलावत, अनिल खिप्पल, भूमेश कुमार, अनुज कुमार एवं चरण सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

मखाना, निम्फेसी परिवार के फॉक्स नट नामक एक जलीय पौधे के बीजो का उत्पाद है। परंपरागत रूप से यह पौधा 4-10 फीट गहरे स्थिर पानी वाले जलाश्यों (तालाब, झील, पोखर इत्यादि) में ही पैदा होता है। इन तालाबो की तलहटी पर पुराने पौधो की पत्तिया एवं अन्य अवयव गल–सड कर जमा होते रहते है और आने वाली फसल के लिए ये सड़े– गले पादप अवयव ही खाद का काम करते है । इतने अधिक पानी में पैदा होने के कारण मखाने की फसल में किसी भी रासायनिक उर्वरक का प्रयोग कारगर नहीं है। दूसरे, इसमें कीट पतंगे व बीमारियो का प्रकोप भी अन्य फसलो की अपेक्षा बहुत कम है जिसके कारण किसान खतरनाक जहरीले रसायनों को बिलकुल भी इस्तेमाल नहीं करते है और फसल सुरक्षा के लिए वे सिर्फ नीम आधारित जैविक उत्पादों से ही अपना काम चला लेते है। इस कारण किसी भी रासानिक तत्व के इस्तेमाल न होने की वजह से मखाना पूरी तरह से एक जैविक उत्पाद है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मखाना एक प्रीमियम फूड है और देश और विदेशो में दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पौष्टिकता की द्रष्टि से यह सूखा मेवा बादाम और अखरोट जैसे ड्राई फ्रूट्स से भी अच्छा होता हैं। फैट एवं कोलेस्ट्रोल जैसे तत्वों से मखाना लगभग पूरी तरह फ्री होता है। प्रसंस्करण किये गए मखाने में लगभग 79% कार्बोहाइड्रेट एवं 9% प्रोटीन होती है। इसके अलावा कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम आदि खनिज तत्व भी मखाने में प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। मखाने की प्रोटीन में 20 में से 17 एमिनो अम्ल पाए जाते है और सिर्फ ट्रिफ्टोफेन नामक एमिनो अम्ल को छोड़कर अन्य सभी 8 आवश्यक एमिनो अम्ल भी मखाने की प्रोटीन में पाए जाते है। गुणवत्ता की दृष्टि से मखाने की प्रोटीन अंडे से भी बेहतर मानी जाती है।

आर्थिक महत्वः आम जनता में यह धारणा है कि मखाना कमल के बीजो का ही उत्पाद है परन्तु यह धारणा सरासर गलत है। मखाना के पौधे कमल से सर्वथा भिन्न है और इन दोनों के बीच में कोई भी आनुवंशिक सम्बन्ध नहीं है। कमल का पौधा आकार में छोटा एवं चिकना होता है जबकि मखाना का पौधा कमल से कई गुना बड़ा एवं भयंकर काँटों वाला होता है। मखाने का हमारे दैनिक जीवन में विशेष महत्व है। इसको भोजन सामग्री से लेकर औषधी और धार्मिक से लेकर औद्योगिक महत्व के विभिन्न प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हमारे देश के अलावा खाडी देशो में भी मखाना की बहुत अधिक खपत है।

(अ) खादय सामग्री के रूप मेंः पौषक तत्वों एवं औषधीय गुणों के कारण मखाने को देवताओ का आहार माना जाता है। मखाने का प्रयोग विभिन्न व्यंजनों को बनाने में किया जाता है। इसके कुछ प्रमुख व्यंजनों का वर्णन निम्न प्रकार है।

- **मखाने की खीरः** यह मखाने के सबसे लोकप्रिय एवं अति स्वादिष्ट मीठे व्यंजनों में से एक है । मखाने की खीर बनाने के लिए सबसे पहले 100 ग्राम मखाना को एक कड़ाही में लेकर लगभग 5 मिनट तक माध्यम आंच पर करछी की सहायता से चलाते हुए गर्म करते है । मखाना आर्दताग्राही होता है और खुला होने पर वातावरण से काफी नमी सोख लेता है । नमी सोखने के कारण यह चिकटा हो जाता है और इस कारण बगैर नमी निकाले इसको खाने का मजा नहीं आ पाता है । इसी वजह से खाने से पहले इसको गर्म करके इसमें उपस्थित नमी को निकालकर इसे कुरकुरा करना होता है। फिर इनमे लगभग 20 ग्राम देशी घी डालकर अच्छी तरह मिलाते हुए 2 मिनट तक गर्म करते है। इसके बाद इनको आंच से उतारकर 5 मिनट के लिए ठंडा होने के लिए रख देते है। ठंडा होने के बाद इन्हें मिक्सी में डालकर हल्का सा पीस देते है। पाऊडर ज्यादा महीन नहीं होना चाहिए। अब प्रेसर कुकर में लगभग 1.5 लीटर दूध लेकर अच्छी तरह उबाल लेते है। उबलने के बाद इसमें मखाने का पाउडर डालकर अच्छी तरह मिला देते है। मखाना मिलाते समय इस मिश्रण में कोई गाँठ नहीं पडनी चाहिए। अब प्रेसर कुकर के ढक्कन को बंद करके इसे माध्यम आंच पर गर्म करते रहते है। जब कुकर में प्रेसर बढ़कर सीटी लगने वाली हो तो सीटी लगने से ठीक पहले ही चुल्हा बंद कर दे और इसको इसी अवस्था में 10 मिनट के लिए छोड़ दे। पूरी तरह से ठंडा होने के बाद प्रेसर कुकर के ढक्कन को खोलकर इसमें 50 ग्राम चीनी, थोडा सा केसर तथा कुछ काजू एवं बादाम के टुकड़े डालकर अच्छी तरह मिला देने

चाहिए। अब मखाना खीर खाने के लिए तैयार है । इस प्रकार तैयार की गयी मखाना खीर का लुत्फ गर्मा–गर्म या कुछ समय तक फ्रीज में ठंडा करके भी लिया जा सकता है।

- **मखाने का हलवाः** हलवा बनाने के लिए भी सबसे पहले मखाने की नमी निकालकर मिक्सी में डालकर महीन पाउडर बना लिया जाता है। फिर एक कड़ाही में घी डालकर इसमें मखाना पाउडर मिलाकर धीमी आंच पर अच्छी तरह से भूना जाता है। भूनने के बाद इसमें आवश्यकता के अनुसार चीनी एवं पानी डालकर गाढ़ा होने तक पकाया जाता है। इसी बीच इसमें हरी इलायची का थोडा सा पाउडर मिला दिया जाता है। पूरी तरह से पकने के बाद इसे नीचे उतारकर इसमें काजू एवं बादाम के टुकड़े डालकर खाने के लिए परोस दिया जाता है।

- **मखाने के लड्डूः** मखाने के लड्डू बनाने की विधी बहुत आसान है। इसके लिए सबसे पहले मखाने का पाउडर बनाया जाता है फिर इसमें घी डालकर अच्छी तरह से भूना जाता है। इसके बाद आवश्यकता के अनुसार इसमें खांड एवं कुछ मेवे डालकर मिश्रण को गर्म करके तैयार कर दिया जाता है। थोडा ठंडा होने पर इसके लड्डू बना लिए जाते है। मखाने के लड्डू में नारियल के बुरादे एवं भूने हुए गोंद का भी प्रयोग किया जा सकता है।

- **मखाने की पंजीरीः** पंजीरी या सांधा हमारे देश के ग्रामीण भागो में एक बहुत ही लोकप्रिय घरेलू उत्पाद है। यह घरेलू उत्पाद उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रो में प्रसव के उपरांत महिलाओ की शारीरिक कमजोरी को दूर करने प्राचीन काल से ही चलन में है। पंजीरी का अर्थ है पांच खाद्य तत्वों का मिश्रण। इसमें देशी घी,खांड,मखाना,बादाम तथा अजवाइन जैसी उर्जावां एवं औषधीय गुणों से युक्त पांच खाद्य चीजे है।

- **मखाना स्नैक्सः** मखाने को एक प्रीमियम स्नैक्स के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसके लिए सबसे पहले मखाने को रोस्ट करके पहले इसकी अतिरिक्त नमी निकाल लेते है फिर रोस्ट होने के बाद इसमें थोडा सा देशी घी या बटर डालकर अच्छी तरह मिलाकर रोस्ट करते है। थोडा ठंडा होने के बाद इसके ऊपर स्वादनुसार काली मिर्च एवं काला नमक छिड़ककर अच्छी तरह मिला देते है। अब यह रोस्टेड मखाना स्नैक्स के रूप में खाने के लिए तैयार है। बीते कुछ वर्षो में मखाने को स्नैक्स के रूप अलग पहचान मिली है और हल्दीराम जैसी कई बडी–बड़ी कंपनिया इस कारोबार में आ चुकी है।

- **दाल मखानीः** दाल मखानी एक बहुत ही स्वादिष्ट भारतीय नमकीन व्यंजन है। यह लगभग सभी होटलों एवं ढाबो पर आसानी से उपलब्ध हो जाती है। इसका प्रयोग अक्सर नान या रोटी के साथ किया जाता है परन्तु चावल के साथ भी इसका लुत्फ लिया जा सकता है।

- (ब) **मखाना औषधी के रूप मेंः** मखाना कुदरत का एक अनुपम उपहार है। भारत के आयुर्वेद एवं चीन की जेम ठमद ब्व डमकपबंस ठववा में मखाने के औषधीय गुणों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। अनेक प्रकार की बीमारियो को दूर करने के लिए मखाने को एक प्रमुख हर्बल औषधी के रूप में प्राचीन काल से ही प्रयोग किया जा रहा है। वैसे तो मखाने के पौधे का हर भाग (जड़, तना ,पत्ता, फल, फूल एवं बीज) औषधीय गुणों से भरपूर है परन्तु अन्य भागो के मुकाबले इसके बीजो का इस्तेमाल ज्यादा किया जाता है। मखाना के कुछ औषधीय इस्तेमाल निम्न प्रकार है।

- **रक्त छाप के नियंत्रण मेंः** पोटेशियम से लबरेज और कम मात्रा में सोडियम होने के कारण यह उच्च रक्त चाप से पीड़ित लोगो के लिए बहुत अच्छास होता है। यह रक्त के संचार को सही करके रक्त चाप को कम करता है और उच्च रक्त चाप से राहत दिलाता है। यह मानव शरीर के रक्त चाप को सही बनाए रखने और इसको नियंत्रित करने में बहुत अच्छी है।

- **चेहरे की सुन्दरता के लिएः** मखाने में मौजूद फ्लेवोनाइड्स एंटी–ऑक्सीडेंट होता है। यह फ्री रेडिकल्सच से लड़ता है और एंटी एजिंग प्रोसेस को धीमा करता है। जी हां मखाना बढ़ती उम्र के लक्षणों जैसे झुर्रिया और बालों का सफेद होने को कम करता है।

- **पुरुषो में प्रजनन संबंधी दोषों को दूर करने मेंः** मखाने में कमोद्दीपकता का प्राकृतिक गुण होता है। यह पुरुषो में स्तम्भन दोष, स्वपन दोष, जल्द स्खलन एवं नपुसंकता जैसी समस्याओ को दूर करने में बहुत प्रभावी होता है।

- **शरीर को सुडौल करने मेंः** मखाने में कसावट का अद्भुत गुण होता है इसके खाने से त्वचा का ढीलापन दूर होकर शरीर सुडौल हो जाता है। इस विशेष गुण के कारण ही हमारे देश में प्राचीन काल से प्रसव के उपरांत महिलाओ को पंजीरी के रूप में मखाना खिलाया जाने की परम्परा है।

- **वजन घटाने के लिए:** मखाना फैट एवं कोलेस्ट्रोल से लगभग फ्री होता है। इसके अलावा मखाने का ग्लिसेमिक इंडेक्स भी कम होता है। इसलिए यह आपकी भूख को काफी समय तक शांत रख कर वजन घटाने मे मदद करता है। नियमित रूप से एक कटोरे मखाने को स्नैक के तौर पर खाने से वजन कम करने में मदद मिलती है।
- **हृदय रोगों को दूर रखने के लिए:** मखाने में प्रचुर मात्रा में मैग्नीशियम होता है। मैग्नीशियम ब्ल ड, ऑक्सीजन और अन्य पोषक तत्वों के संचार को बेहतर बनाता है। मैग्नीशियम और फोलेट की पोषण संबंधी सामग्री कोरोनरी हार्ट डिजीज और अन्य हार्ट संबंधी प्रॉब्ल्मसत से जुड़े जोखिम को कम करती है।
- **हड्डियों एवं दांतों की मजबूती के लिए:** कैल्शियम के सबसे अच्छा् स्रोत होता हैं। कैल्शियम बच्चों और किशोरों के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण पोषक तत्व है जो उनके विकास और बोन मास के लिए जरूरी होता है। यह वयस्कों के लिए भी फायदेमंद है, खासकर प्रेग्नेंसी के दौरान। यह दांतों की हेल्थर के लिए बहुत अच्छी होता है क्यों कि यह दांतों को कैविटी के खिलाफ एक प्राकृतिक ढाल प्रदान करता है। आप इसका सेवन लंबी अवधि के लिए भी कर सकती है।
- **अच्छी नींद का वरदान:** यह अनिद्रा संबंधी प्रॉब्स्तों का प्रभावी ट्रीटमेंट हैं। यह स्ट्रेस को दूर कर एक शांतिपूर्ण निंद्रा दिलाने में सहायक है। इसमें शान्ति के गुण पाएं जाते हैं जो बेचौनी व घबराहट को भी कम करने में लाभदायक हैं। मखाना एक प्राकृतिक शामक है जो अनिंद्रा को दूर रखता है।
- **डायरिया की रोकथाम:** मखाने में एक ऐसा गुण होता है जो दस्त को ठीक करने में मदद करता है। घी में भुने हुए मखाने खाने से दस्त में लाभ मिलता है। अगर आप लंबे समय तक दस्त से पीड़ित हैं, तो मखाना खाना आपके लिए फायदेमंद हो सकता है
- **ब्रैस्ट कैंसर की रोकथाम:** चीनी चिकित्सा साहित्य के अनुसार मखाने के बीजो को डायटरी फाइबर में लपेटकर खाने से महिलाओ में एस्ट्रोजेन हार्मोन का स्तर बढ़ जाता है। यह हार्मोन ब्रेस्ट केंसर की रोकथाम में मददगार होता है।

(स) धार्मिक महत्व: मखाने का हमारे जीवन में विशेष धार्मिक महत्त्व है। कुदरती तौर पर यह एक ऐसी जैविक खाद्य वस्तु है जिसमें किसी भी तरह के जहरीले रसायन का प्रयोग नहीं होता है । इसी गुण के चलते मखाने को देव भोजन माना गया है। मंदिरो में देवी–देवताओं को मखाने का भोग लगाया जाता है और फिर प्रसाद के रूप में भक्तो को बांटा जाता है। मखाना एक गैर अन्नीय खाद्य पदार्थ है इसलिए व्रत के समय, विशेष कर नवरात्री में, महिलाओ द्वारा इसका बहुत अधिक इस्तेमाल किया जाता है। हिन्दू धर्म में सभी मांगलिक कार्यो में मखाना का इस्तेमाल किया जाता है। होली जैसे शुभ अवसरों पर बच्चो को मखाना की माला पहनाना काफी शुभ माना जाता है। मिथिलांचल को मखाने का आवास माना जाता है यहा पर कोई भी शुभ कार्य मखाने के बिना सम्पन्न नहीं होता है। सभी सामाजिक कार्यकर्मो में अतिथियों का सम्मान मखाने की माला पहना कर की जाती है।

(द) औधोगिक महत्व: मखाने का स्टार्च बहुत ही उम्दा किस्म का होता है। सिल्क एवं कॉटन के बहुत महंगे परिधानों में मखाने के स्टार्च को प्राथमिकता दी जाती है।

वर्तमान परिदृष्य में जीरो बजट प्राकृतिक खेती की संभावनाए एवं चुनौतियां

सुरेन्द्र सिंह, रतन तिवारी, निशु राघव एवं रुचिका शर्मा

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

हरित क्रांति की सफलता से भारत जहां एक ओर खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हुआ हैं वहीं दूसरी ओर बढ़ती हुई जनसंख्या की जरुरतों की पूर्ति करने के साथ–साथ खाद्यान्न का निर्यातक भी बन गया है। यह सब अर्जित करने में उन्नत किस्म के बीजों, खाद व उर्वरकों का प्रयोग तथा कीटनाशकों रसायनों का योगदान सर्वोपरि है। इसके पश्चात् आज भी प्रतिस्पर्धा के इस दौर में किसान अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए अपने खेतों में अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग कर रहा है देश के केवल सात राज्यों में ही लग–भाग 70 प्रतिशत कीटनाशको की खपत हो रही है। जिसमें 45 प्रतिशत कीटनाशको की खपत केवल आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना व सीमान्ध्रा), महाराष्ट्र एवं पंजाब में हो रही है जबकि 24 प्रतिशत की खपत अकेले आन्ध्र प्रदेश में ही होती है। इससे किसानो की फसल के लागत मूल्य में आशातीत वृद्धि हो रही है और मुनाफा कम होता जा रहा है और किसान लगातार कर्ज में डूबते जा रहे है। जो आज किसान की दुर्दशा का कारण बनता जा रहा है साथ ही साथ कीटनाशक एवं रसायनों के अत्याधिक प्रयोग ने एक सवाल खड़ा किया है। अब हम इस तरह की खेती को कब तक जारी रखना चाहते है क्योंकि रसायनों पर आधारित खेती को पर्यावरण, आर्थिक व सामजिक मुद्दों से जोड़ा जाता है। इस पर हमें ध्यान देने की जरुरत है आज देश के लिए खाद्य सुरक्षा कोई बड़ा मुद्दा नहीं है परन्तु बढती आबादी के लिए स्वस्थ एवं पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना हमारे लिए एक चुनौती है क्योंकि कृषि रसायनों के अँधाधुंध उपयोग से अस्वस्थ फसलों का उत्पादन हुआ है। यदि इन कृषि रसायनों के प्रतिकूल प्रभावों का विश्लेषण किया जाए तो इनका प्रभाव हमारी खाद्य प्रणाली व पर्यावरण पर अधिक महसूस किया जा सकता है। तथा कृषि रसायनों बड़ा हिस्सा मिटटी, हवा व पौधों द्वारा अवशोषित होता है इसके अलावा यह जमीन में रिस कर जल स्रोतों को प्रदूषित करतें है। इन रसायनों के कारण से जलवायु परवर्तन तथा पारिस्थितिक असंतुलन पैदा हुआ और इसके साथ ही मानव जीवन भी इससे प्रभावित हो रहा है। इस तरह हमें मृदा स्वास्थ्य, स्थायी उत्पादन और लोगो के लिए स्वस्थ एवं पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने के लिए इस सम्बन्ध में कोई नया कदम उठाकर किसी और वैकल्पिक खेती के बारे में ध्यान देने की आवश्यकता है जिसमे कृषि रसायनों का प्रयोग न करके अन्य और उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का इष्टत्म उपयोग हो। जिससे हमारी मृदा की सेहत में भी सामान्य रूप से अच्छी बनी रहे। ऐसे में जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग खेती की पद्धति का नाम हमारे सामने उभर कर आता है जो आज के हालात को देखते हुए देश के लिए आवश्यक बन गई है।

अभी हाल ही में देश की वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने अपने बजटीय भाषण में भी "जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग" खेती को बढ़ावा देने पर बल दिया। जिसकी प्रधान मंत्री सहित देश के कृषि मंत्री श्री नरेन्द्र सिंह तोमर ने भी सरहना की और कृषि मंत्रालय द्वारा भी इस दिशा में सकारात्मक कार्य की पहल हो रही है जो किसानो के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती है। खेती की इस पद्धति से किसानों की आत्महत्या एवं ग्रामीण प्रवास को रोकने तथा जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग से संबंधित अन्य पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान का एक अच्छा तरीका हो सकता है।

क्या है जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग ?

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग खेती की एक पद्धति है। इसको सबसे पहले सन 1970 के दशक में एक जापानी किसान मसानोबू फुकुओका ने इस पद्धति (नेचुरल फार्मिंग) को अपनाने पर जोर देते हुए इसे एक प्रकार की ''डू नथिंग फार्मिंग" की संज्ञा दी थी। जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग खेती में किसान का लागत मूल्य (कृषि रसायनों एवं उर्वरको का मूल्य) जीरो होता है। यानि खेती की इस पद्धति से किसी भी सामान्य खाद्य या बागवानी फसलों का उत्पादन किया जाए तो उसकी लागत मूल्य शून्य होनी चाहिए। तथा इस पद्धति में मुख्य रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का ही उपयोग कर फसलों का उत्पादन किया जाता है।

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग देसी गाय के गोबर एवं गोमूत्र

पर आधारित है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि एक देसी गाय के गोबर एवं गोमूत्र से एक किसान तीस एकड़ जमीन पर जीरो बजट की खेती कर सकता है। इसके अतिरिक्त इस विधि से खेती करने पर फसलों को सिंचाई की कम आवश्यक होती है जिससे पानी एवं बिजली की मौजूदा खेती–विधि की तुलना में काफी बचत होती है।

देश में जीरो बजट खेती के जनक श्री सुभाष पालेकर जी है जिन्होंने इस पद्धति को देश के विभिन्न राज्यों में पहचान दिलाने का महान कार्य किया। जिनकी देश के विभिन्न राज्यों, कृषि विश्वविद्यालयों एवं खेत–खलिहानों में चर्चा होती है। कुछ वर्षों पहले कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि बाजार से खेती सम्बन्धी सामान (उर्वरक, कीटनाशक, फफुन्द्नाशी व शाकनाशी) आदि खरीदे बिना भी किसान अपनी खेती से अधिक मुनाफा कमा सकते है। इस महत्तव पूर्ण कार्य को श्री सुभाष पालेकर जी ने कर दिखाया।

श्री सुभाष पालेकर ने 'कृषि स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद वह अपने गांव में एक किसान के रूप में 1973 से 1985 तक आधुनिक और रासायनिक खेती की परन्तु एक समय ऐसा आया खेती में सीमित लागत (इनपुट) बढ़ाने के बाद भी जब उत्पादन नहीं बढ़ा तो चिंता होने लगी। तो उन्होंने अपने कृषि शिक्षक से इसका निदान पूछा तो उन्होंने इनपुट बढ़ाते रहने के लिए कहा। इसके बाद वह इसके समाधान के लिए जंगलों की ओर चले पड़े। और जंगल में जाकर उनके मन में प्रश्न पैदा हुआ कि बिना मानवीय सहायता के हरे–भरे जंगल खड़े हैं, यहां पर इनके पोषण के लिए रासायनिक उर्वरक व कृषि रसायन कौन डाल रहा है। जब यह इनके बिना अच्छे फल–फूल सकते हैं तो हमारी फसलें क्यों नहीं। इसी को आधार बनाकर श्री पालेकर जी ने बिना लागत की खेती करने का अनुसन्धान शुरू किया।

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग के मुख्य उद्देश्य

- खेती की इस प्रणाली में किसान को बाजार से बीज, उर्वरक और फसल सुरक्षा से सम्बंधित कृषि रसायनों को खरीदने में धन निवेश करने की आवश्यकता नहीं है।
- किसान स्वंय अपने यहाँ बीज का उत्पादन कर या दूसरे किसानो के पास उपलब्ध बीजो का उपयोग कर सकता है।
- इसमे दूसरी महत्तवपूर्ण बात यह कि इस प्रणाली में उर्वरकों एवं फसल सुरक्षा से सम्बंधित कृषि रसायनों के लिए कोई जगह नहीं है।
- इस प्रणाली के पीछे सम्पूर्ण दर्शन किसान को आत्मनिर्भर बनाना ताकि वह कर्ज दाताओं के चंगुल से मुक्त हो सके और खेती की उच्च लागत से बचा जा सके।

सुभाष पालेकर के अनुसार खेती की यह पद्धति निम्न लिखित विशेषताओं पर आधारित है जो इस प्रकार से है।

(1) जीवामृत से मिटटी का उपचारः यह एक किण्वित माइक्रोबियल तरल पदार्थ है। इसको पोषक तत्त्व के रूप नहीं लेना चाहिए परन्तु भूमि में यह एक उत्प्रेरक एजेंट के रूप में कार्य करता है जो कि मिटटी में अत्यधिक जैविक गतिविधियों को बढ़ावा देता है। और फसलों को पोषक तत्व उपलब्ध कराता है। किण्वन प्रक्रिया के दौरान, गोबर और मूत्र में मौजूद एरोबिक और एनारोबिक बैक्टीरिया कार्बनिक पदार्थों (जैसे दाल का आटा) को खाने से कई गुना बढ़ जाते हैं। इसको तैयार करने के लिए मिट्टी को भी इसमें मिलाया जाता है। पालेकर के सुझाव के अनुसार मिटटी में जीवामृत की आवश्यकता केवल शुरू के तीन वर्षों के लिए ही होती है इस इसके बाद यह प्रणाली आत्मनिर्भर हो जाती है ।

जीवामृत बनाने की विधिः किसान भाईयो तरल जीवामृत बनाने के लिए हमे निम्नलिखित सामग्रियों की आवश्यकता होती है। एक बड़े प्लास्टिक के ड्रम में 200 लीटर पानी लें उसमे 10 किलोग्राम ताजा गाय का गोबर, 5–10 लीटर गाय का मूत्र, 2 किलो पुराना गुड़ तथा 2 किलो किसी भी दाल का आटा (बेसन) और एक किलो मिट्टी (पीपल के पेड़ के नीचे की मिटटी बेहतर रहेगी) को मिलाए और ड्रम में इसको अच्छी तरह से लकड़ी के डंडे की सहायता से घुमाए फिर इसको छाया में किण्वन के लिए छोड़ देते है। अगले दिन फिर से एक बार इसको लकड़ी के डंडे की सहायता से घुमाए यही प्रक्रिया लगभग 6–7 दिनों तक करते रहे। 7 दिनों के बाद जीवामृत उपयोग के लिए बनकर तैयार हो जाता है। यह 200 लीटर जीवामृत एक एकड़ फसल के लिये पर्याप्त है।

जीवामृत को प्रयोग करने की विधिः किसान भाईयों इस तरल जीवामृत को विभिन्न प्रकार से अपने खेतों मे प्रयोग कर सकते है। परन्तु इसका सबसे अच्छा तरीका है जब किसान अपनी फसल में पानी लगातें है उसके साथ जीवामृत देना अच्छा रहता है जिस खेत की आप सिंचाई कर रहे हैं उस खेत में जाने वाली पानी की नाली के ऊपर ड्रम को रखकर वाल्व की सहायता से जीवामृत पानी मे डाले इसकी धार इतनी रखें कि खेत में पानी लगने के साथ ही ड्रम खाली हो जाए। जीवामृत पानी में मिलकर अपने आप फसलों की जड़ों तक पहुँच जाएगा जिससे किसानो की फसलों को इसका भरपूर लाभ मिलेगा। इस प्रकार से

जीवामृत को हम 21 दिनों के अंतराल पर फसलों को दे सकते है।

(2) **बीजामृत से बीज उपचारः** बीजामृत मुख्य रूप से बीज, पौध या किसी भी रोपण सामग्री को उपचार लिए उपयोग में लाया जाता है। बीजामृत अंकुरण एवं स्थापन के दौरान फसल को मिट्टी जनित एवं बीज जनित बीमारियों से बचाता है। जो आमतौर पर फसलों की बढवार के समय पौधों को प्रभावित करतें है जिससे फसल की उपज पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

बीजामृत बनाने की विधिः एक प्लास्टिक के टब में 20 लीटर पानी ले इसमे 5 किलो देशी गाय के गोबर को एक कपडे में रख कर अच्छी तरह से बाँध कर एक बण्डल (पोटली) बनालें और 12 घंटे के लिए टब में भरे पानी में लटका दे। एक दूसरे बर्तन में एक लीटर पानी लेकर उसमें 50 ग्राम चुना डालें और इसको एक रात के लिए रख देते है। अगले दिन गाय के गोबर के बंधे बण्डल (पोटली) को पानी में दो तीन बार करके अच्छे से निचोड़ दें। ताकि गोबर का सारा अर्ख पानी में मिल जाए इसके बाद एक मुट्ठी मिटटी (खेत के डोल की) इसमे मिलाकर अच्छे से हिला लें फिर इस घोल में 5 लीटर देशी गाय के मूत्र एवं दूसरे बर्तन में रखे चुने के पानी को भी मिलाकर लकड़ी के डंडे से अच्छी तरह से हिला लेते है। अब यह बीजामृत बीज उपचार के लिए तैयार है।

बीजामृत को प्रयोग करने की विधिः बीजामृत से बीज उपचार करने के लिए एक पोलिथीन शीट के ऊपर बीज को फैला लें फिर इसमे बीजामृत डालकर बीज को हाथों से अच्छे से मिला लें और बीजों को छांया में सुखाकर बिजाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है। दाल वाली फसलों के बीजों को बीजामृत में तुरंत डुबोकर निकाल कर छांया में सुखा दें और इसके बाद बिजाई करें।

(3) घन जीवामृत बनाने एवं प्रयोग की विधिः इसमे 100 किलोग्राम देसी गाय का गोबर, 5 लीटर गौमूत्र, 2 किलोग्राम दाल का आटा, एक किलो सजीव मिट्टी और 2 किलोग्राम गुड़ यह सब सामग्री एकत्रित कर अच्छी तरह से मिश्रण तैयार कर लें। इस मिश्रण में थोड़ा–थोड़ा गौमूत्र डालकर उसे अच्छी तरह मिलाकर गूंथ लें ताकि उसका घन जीवामृत बन जाये। अब इस गीले घन जीवामृत को छाँव में अच्छी तरह फैलाकर सुखा लें। सूखने के बाद इसको लकड़ी के डंडे से कूटकर बारीक कर लें तथा इसे बोरों में भरकर छाव में रख दे। इस प्रकार स बने घन जीवामृत को आप 6 महीनों तक इसका भण्डारण करके रख सकते है। इस घन जीवामृत को खेत में जुताई के समय प्रयोग में लाया जाता तथा यह मिटटी में मिलने के उपरांत इसमें उपलब्ध लाभकारी जीवाणु अपनी सुप्तावस्था को तोड़कर सक्रिय हो जाते है। जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ावा मिलता है तथा मिटटी के भौतिक गुणों में भी सुधार होता है।

(4) मृदा आच्छादन (मल्चिंग): आच्छादन खेती का एक महत्तवपूर्ण घटक है वर्तमान समय में यह खेती के लिए और भी प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि यह पानी को बचाने में सहायक है। खेती में जैविक या कार्बनिक आच्छादन भू–परिष्करण को कम कर मिट्टी की उपरी उपजाऊ परत को बचा कर वायु संचार को बढाता है तथा इससे मिटटी में एक अच्छी हमूमस तैयार हो जाती है। ह्यूमस मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बढ़ाती है, साथ ही साथ फसल के लिए उपयुक्त वातावरण और पोषण प्रदान करती है। जिसके कारण मिट्टी में जल धारण क्षमता को बढ़ावा मिलता है। आच्छादन मिट्टी में वाष्पीकरण को कम कर, नमी को कम होने से बचाता है ताकि फसल सूखे की स्थिति में भी बेहतर ढंग से अपना प्रदर्शन कर सके।

(5) मिश्रित खेती एवं फसल चक्रः शून्य बजट प्राकृतिक खेती विशिष्ट कृषि जलवायु स्थिति के आधार पर फसलों की विभिन्न प्रजातियों की खेती की वकालत करती है। तथा मिश्रित फसलें सिंगल फसल की विफलता के विरुद्ध एक बफर प्रदान करती है। मिश्रित खेती में दलहनी फसलो को शामिल करने पर ज्यादातर जोर होना चाहिए जिससे मिटटी में उर्वरा शक्ति पुनः स्थापित हो सके। मिश्रित फसल योजना में विशेष रूप से अनाज, ज्वार, बाजरा, दलहनी और विशेष रूप से सब्जियों वाली फसलों को शामिल किया जा सकता है। यदि किन्ही फसलों में ज्यादा स्पेस हो तो उनमे अन्तः फसल प्रणाली (इंटर क्रॉपिंग) के अंतर्गत फसलों को भली–भांति उगाया जा सकता है। किसी निश्चित क्षेत्रफल पर निश्चित अवधि के लिए भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए फसलों को अदल–बदल कर उगाने की प्रक्रिया को फसल चक्र कहते है। इससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ एवं जीवाणुओं की संख्या में बढ़ोतरी होती है। जिससे मिटटी में उर्वरा शक्ति पुनः स्थापित होती है इसी कारण से खेत की मिटटी हमेशा उपजाऊ बनी रहती है।

देश में जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग के सफलतम प्रयोगः खेती की इस पद्धति को आगे बढाने में सुभाष पालेकर ने देश के दक्षिण राज्य जैसे कर्नाटक व आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्यों में किसानों के खेतों तक पहुचाया जा रहा है जबकि वर्ष 2015 के शुरुआत में कुछ पायलट कार्यकर्मों के सफलतम प्रयोगों से प्राप्त अनुभवों के आधार पर आंध्र

प्रदेश राज्य में इस पद्धति को अधिक व्यवहार में लाया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग को आगे बढाने के उद्देश्य से इसको नीतिगत तरीके से लागू करने वाला देश का पहला राज्य बन गया है। यहाँ एक अन्य सुखद बात यह है कि सूखा प्रभावित रायलसीमा क्षेत्र (आंध्र प्रदेश) में भी इस पद्धति के अनुपालना से काफी आशाजनक बदलाव देखने को मिले हैं, जिसने इसकी संभावना को और भी प्रबल बना दिया है। तथा इस पद्धति को राज्य के विभिन्न संगठनों जैसे महिला स्वंय सहायता समूह, नेचुरल फार्मिंग फेलो, कम्युनिटी रिसोर्स पर्सन्स, फार्मर्स प्रोड्यूसर संगठन, सस्टेनेबल कृषि केंद्र, दक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी व प्रभावी नागरिक संगठनों आदि ने प्रोत्साहित किया। वर्ष 2017–18 के अनुसार राज्य में 163000 किसान इस पद्धति को अपना कर खेती कर रहे है।

कुछ समय पूर्व आँध्रप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने घोषणा की थी कि जल्द ही आंध्र प्रदेश को पूरी तरह से जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग वाले राज्य के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास किया जाएगा। और वर्ष 2024 तक इस लक्ष्य के अंतर्गत राज्य के लगभग सभी किसानों को शामिल करने की योजना है। आंध्र प्रदेश के 60 लाख किसानों को रासायनिक खाद और कीटनाशकों पर आधारित मौजूदा खेती के तरीके से हटाकर जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग करने के लिये प्रोत्साहित किया जाएगा। राज्य सरकार का लक्ष्य है कि 2026 तक महिला स्वंय सहायता समूह, नेचुरल फार्मिंग फेलो, कम्युनिटी रिसोर्स पर्सन्स आदि संगठनों की सहायता से प्रदेश की 80 लाख हेक्टेयर जमीन पर खेती करने वाले 60 लाख किसानों को पूरी तरह से जीरो बजट नेचुरल फॉर्मिंग के अंतर्गत शामिल किया जाए। इसके लिए आने वाले समय में लगभग 15000 करोड़ रूपए की आवश्यकता पड़ेगी इस संकल्प के बाद आंध्र प्रदेश जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग करने वाला देश का पहला राज्य बन जायेगा। जिससे प्रदेश की जलवायु, जैव विविधता एवं खाद्य सुरक्षा के साथ दृसाथ लोगो को पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना भी सुनिश्चि हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त देश के हरियाणा राज्य में भी आर्य प्रतिनिधि सभा, रोहतक के माध्यम से हिमाचल के पूर्व राज्यपाल आचार्य देवव्रत के द्वारा जिला कुरुक्षेत्र के गुरुकुल में 180 एकड़ के फार्म पर कृषि रसायन मुक्त (जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग) को सफलता पूर्वक किया जा रहा है। इसी तरह से अगस्त 2018 में हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल आचार्य देव व्रत ने हिमाचल प्रदेश के किसान समुदाय से आग्रह किया कि वे जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग को दिल से अपनाते हुए वर्तमान रासायनिक खेती की प्रणाली को बदलने में सहायोग करे। इस साल के शुरुआत में प्रदेश सरकार द्वारा राज्य में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए लग भग रू. 250 मिलियन के बजट को स्वीकृत किया जो एक अनुकर्णीय व सरहानीय कदम है।

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग के लाभ

- आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा प्रस्तुत आंकड़ो (2017) के अनुसार कर्नाटक राज्य में 97 किसानो पर कराए गए सर्वेक्षण के आधार पर खरीफ फसल उत्पादन से जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग से परम्परागत खेती (रसायन खेती) की अपेक्षा 85 : किसानो की आय में सुधार, 90: किसानों की उत्पादन लागत में कमी की सूचना 92: किसानो ने कर्ज में कमी की सुचना दी 91: किसानो ने उपज की गुणवत्ता में सुधार की बात कही तथा 78: ने उपज में सुधार की सुचना दी।
- इन सबके साथ–साथ एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि ैठछथ मॉडल खेती में सूखे और बाढ़ का सामना करने की क्षमता सामान्य खेती की अपेक्षा काफी अधिक होती है, जो जलवायु परिवर्तन की समस्या के संबंध में एक बड़ी राहत प्रदान कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र और कृषि एवं खाद्य संगठन (एफएओ) जैसी संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों ने भी इस पद्धति के अभ्यास का समर्थन करने के लिए अपनी रुचि व्यक्त की है।
- इसके अतिरिक्त रासायनिक खेती प्राकृतिक संसाधनों के लिये निरंतर खतरा बनती जा रही है। इससे मिट्टी का पीएच मान लगातार बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक लागत पर जहरीला अनाज पैदा हो रहा है जिससे कैंसर जैसी घातक बीमारियां पनप रही है। इस पद्धति को अपनाने से हम उपरोक्त घातक परिणामो से बच सकते हैं।
- उर्वरकों, कीटनाशको (कृषि लागत) का खर्च लग भग शून्य हो जाता है।
- कम लागत में अधिक उत्पादन।
- प्राकृतिक संसाधनों व फसल अवशेषों का समुचित उपयोग।
- स्थानीय पर्यावरण, पारिस्थितिक तंत्र एवं जैव विविधता को समृद्ध बनाना।
- भूमिगत जल को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

- पानी व बिजली की खपत में कमी आना।
- स्वस्थ एवं पोषण युक्त उपज का उत्पादन।
- अंतर्राष्ट्रीय बाजार में रसायन फ्री खाद्यान्नों की मांग बढ़ने से देश की अर्थव्यवस्था में सुधार की सम्भावना।
- मृदा की भौतिक स्थिति में सुधार के साथ साथ मिटटी की उर्वरा शक्ति को बढाने में सहायक ।
- किसानो को इस पद्धति को अपनाने से फसल के लिए अतिरिक्त कर्ज की आवश्यकता नहीं होती है।
- भूमिगत जल की गुणवत्ता में सुधार।
- फसल अवशेषों को जलाने व फेंकने के बजाए इनको दोबारा आच्छादन व चारे के रूप में प्रयोग में लाना।

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग के लिए चुनौतियाँ

- जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग तकनीक को सबसे पहले व्यापक पैमाने पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सत्यापित किया जाना चाहिए तथा वैज्ञानिक प्रमाणों के समर्थन के बिना यह कृषि संकट को गहरा सकता है।
- भारत में इस पद्धति की अभी तक कोई वैज्ञानिक प्रमाणिकता प्रतीत नहीं होती है। इस लिए राष्ट्रीय कृषि अनुसन्धान प्रणाली (छ।ै) के अंतर्गत कृषि वैज्ञानिकों को एक रणनीति के तहत इस पर काम करना होगा ताकि जमीन पर खेती की यह पद्धति प्रकृति के अनुरूप हो।
- किसानो को इस पद्धति के बारे में सार्वजनिक संस्थागत भागीदारी, स्वंय सहायता समूह, किसान उत्पादक संगठन व अन्य सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से किसानो को जानकारी देने के लिए उनको पंचायत या ब्लाक स्तर प्रशिक्षण देने की जरुरत होगी।
- ज्यादातर कृषि सम्बंधित योजनाओ को लागु करना राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होती हैप जिसके लिए राज्य सरकारों को इसके लिए अलग से समुचित बजट रखने की आवश्यकता होगी।
- किसानो को उनकी उपज का सही और उचित दाम मिले और उत्दपादन के अनुसार इसके लिए सरकार द्वारा उपज के विपणन की समुचित व्यवस्था कराने की आवश्यकता है।
- किसानो द्वारा इस पद्धति को अंगीकृत करने के बारे में किसानो के दृष्टिकोण को भी जानने की आवश्यकता होगी।
- किसानो को देसी गोवंश के पालन, प्रजन व संरक्षण के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने पर बल देने की आवश्यकता है।

भारत में गेहूँ की उन्नत किस्में एवं प्रबंधन

ऋषि पाल गंगवार, स्नेहांशु सिंह, अमनदीप कौर, सुरेश कुमार, अमित कुमार शर्मा एवं संजय कुमार सिंह

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001, हरियाणा

भारत में गेहूँ अनाज की मुख्य फसल है। गेहूं फसल का कुल रकबा देश में लगभग 29.8 मिलियन हेक्टेयर है। आजादी के दौरान, देश देश की खाद्य मांग को पूरा करने के लिए गेहूं के आयात पर निर्भर था। लेकिन निरंतर कृषि क्षेत्र प्रगति के कारण देश में गेहूं का उत्पादन 2006–07 में 75.81 मिलियन टन से तथा 2018–19 में 102.19 मिलियन टन के सर्वकालिक रिकॉर्ड उच्च स्तर पर पहुंच गया है। 2004–05 में गेहूं की उत्पादकता जहां 2602 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, जो 2018–19 में बढ़कर 3507 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई है। गेहूं की उत्पादकता में बड़ी वृद्धि हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में देखी गई है। चीन के बाद भारत दुनिया में गेहूं का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। गेहूं उत्पादन में निरंतरता रखने के लिए कृषि के क्षेत्र के अनुसार गेहूं की प्रजाति का चयन करना बहुत आवश्यक है। भारत की विभिन्न कृषिगत परिस्थितियों के आधार पर पांच क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। ये क्षेत्र निम्नानुसार हैं:

(1) उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र : यह गेहूं के कुल 37 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ लगभग 45 प्रतिशत गेहूं के उत्पादन में योगदान देता है इस क्षेत्र में बोई जाने वाली गेहूं की किस्मे , उर्वरक की मात्रा, बुआई का समय आदि निम्नलिखित है:–

क्षेत्र का नाम एवं गेहूँ का क्षेत्रफल	क्षेत्र के अंतर्गत राज्य	नवीनतम संस्तुत किस्मे	उर्वरक की मात्रा	बुआई का समय
उत्तर पश्चिम मैदानी क्षेत्र 125.9 लाख हेक्टेयर	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा और उदयपुर संभागों को छोड़कर) पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी मंडल को छोड़कर), हिमाचल प्रदेश (ऊना व पोंटा घाटी), जम्मू–कश्मीर के कुछ हिस्सों (जम्मू और कठुआ जिले), और उत्तराखंड (तराई क्षेत्र)	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई : डबल्यूबी 2, पीबीडबल्यू 723, एचपीबीडबल्यू 01, एचडी 3086, एचडी 2967, डीबीडबल्यू 88, डबल्यूएच 1105. सिंचित देर से बुआई: डीबीडबल्यू 173, डीबीडबल्यू 90, डीबीडबल्यू 71, डबल्यूएच 1124, एचडी 3059, पीबीडबल्यू 590, डबल्यूएच 1021, डीबीडबल्यू 16. वर्षाधारित क्षेत्रो में समय से बुआई: पीबीडबल्यू 644, एचडी 3043, पीबीडबल्यू 396. संरक्षित खेती में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए अगेती बुआई के लिए उपयुक्त: एचडी सीएसडबल्यू 18 (2016) तथा देरी से बुआई के लिए उपयुक्त एचडी 3117 (2016) किस्में	**सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई:** 150:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) **संचित देर से बुआई :** 120:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (1ध्3 एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआई : 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर केवल बुआई के समय	**सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई** बुआई का समय: नवम्बर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में बीज दर: 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर **सिंचित क्षेत्रो में देर से बुआई** बुआई का समय: दिसम्बर के तीसरे या चौथे सप्ताह में बीज दर: 120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

(2) उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र

यह गेहूं के कुल 27 प्रतिशत क्षेत्रफल से गेहूं के कुल उत्पादन में लगभग 24 प्रतिशत का योगदान देता हैं। इस क्षेत्र में बोई जाने वाली गेहूं की किस्मे, उर्वरक की मात्रा, बुआई का समय आदि निम्नलिखित है:–

क्षेत्र का नाम एवं गेहूँ का क्षेत्रफल	क्षेत्र के अंतर्गत राज्य	नवीनतम संस्तुत किस्मे	उर्वरक की मात्रा	बुआई का समय
उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र 88.2 लाख हेक्टेयर	पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, असम और पूर्वोत्तर के मैदानी क्षेत्रों	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः एनडबल्यू 5054, के 1006, एचडी 2967, डीबीडबल्यू 39, सीबीडबल्यू 38, राज 4120, के 307, एचडी 2824. सिंचित क्षेत्रो में देर से बुआई : डीबीडबल्यू 107, एचडी 3118, एचडी 2985, एचआई 1563, एनडबल्यू 2036, डीबीडबल्यू 14, एचडी 2643. वर्षाधारित क्षेत्रो में समय से बुआई : एचडी 2888, एमएसीएस 6145, के 8027.	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः 150:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) सिंचित देर से बुआई : 120:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआईः 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर केवल बुआई के समय	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई बुआई का समयः नवम्बर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में बीज दरः 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर सिंचित क्षेत्रो में देर से बुआई बुआई का समयः दिसम्बर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में बीज दरः 120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआईः बुआई का समयः अक्टूबर के चौथे या नवम्बर के पहले सप्ताह में बीज दरः 120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

(3) मध्य क्षेत्र

यह गेहूं के कुल 17 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ लगभग गेहूं के उत्पादन में 13 प्रतिशत उत्पादन का योगदान देता है। फसल अक्टूबर के दौरान बोई जाती है और मार्च तक काटी जाती है। इस क्षेत्र में बोई जाने वाली गेहूं की किस्मे, उर्वरक की मात्रा, बुआई का समय आदि निम्नलिखित हैः–

क्षेत्र का नाम एवं गेहूँ का क्षेत्रफल	क्षेत्र के अंतर्गत राज्य	नवीनतम संस्तुत किस्मे	उर्वरक की मात्रा	बुआई का समय
मध्य क्षेत्र 71.8 लाख हे.	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, उत्तर प्रदेश के झांसी मण्डल राजस्थान के कोटा और उदयपुर मण्डलो में प्रतिबंधित सिंचित अवस्थाओ में समय से बुवाई के लिए उपयुक्त	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः डबल्यूएच 1142, एचआई 1544, जीडबल्यू 366, जीडबल्यू 322, जीडबल्यू 273. डयूरम गेहूँः एचआई 8737, एचआई 8713, एमपी 01215. वर्षाधारित क्षेत्रो में समय से बुआईः एमपी 3336, एमपी 1203, एचडी 2932, एचडी 2864, एमपी 4010. वर्षाधारित/सीमित सिंचाई क्षेत्रो में समय से बुआई : डीबीडबल्यू 110, एमपी 3288, एमपी 3173, एचआई 1531, एचआई 1500. डयूरम गेहूँः एचडी 4672.	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः 120:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) सिंचित देर से बुआई : 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआईः 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर केवल बुआई के समय	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई बुआई का समयः नवम्बर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में बीज दरः 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर सिंचित क्षेत्रो में देर से बुआईः बुआई का समयः दिसम्बर के पहले या दूसरे सप्ताह में बीज दरः 120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआईः बुआई का समयः अक्टूबर के चौथे या नवम्बर के पहले सप्ताह में बीज दरः 120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

(4) प्रायद्वीपीय क्षेत्र

यह गेहूं के कुल 6 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ 2.5 प्रतिशत गेहूं के उत्पादन में योगदान देता है। इस क्षेत्र में बोई जाने वाली गेहूं की किस्मे, उर्वरक की मात्रा, बुआई का समय आदि निम्नलिखित हैः–

क्षेत्र का नाम एवं गेहूँ का क्षेत्रफल	क्षेत्र के अंतर्गत राज्य	नवीनतम संस्तुत किस्मे	उर्वरक की मात्रा	बुआई का समय
प्राद्ववीपीय क्षेत्र (पीजेड) 11.0 लाख हे.	महाराष्ट्रए कर्नाटक मैदानी भाग एवं तमिलनाडु एवं केरल के पहाड़ी क्षेत्र (नीलगिरी और पालनी की पहाड़ीया) वर्षाधारित/सीमित सिंचाई क्षेत्रो में समय से बुआई :	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई : एमएसीएस 6478, यूएएस 304, एमएसीएस 6222, एनआईएडबल्यू 917, राज 4037, जीडबल्यू 322ए सीओडबल्यू (डबल्यू) 1, एचडबल्यू 2044, डयूरम गेहूँ : यूएएस 428, डबल्यूएचडी 948, यूएएस 415 डाईकोकम गेहूँ : एमएसीएस 2971, डीडीके 1029, डीडीके 1025. वर्षाधारित क्षेत्रो में समय से बुआईः एचडी 3090, एकेएडबल्यू 4627, एचडी 2932, राज 4083, एचडी 2833. वर्षाधारित/सीमित सिंचाई क्षेत्रो में समय से बुआई :डीबीडबल्यू 93, एनआईएडबल्यू 1415, एचडी 2987, एचडी 2781, यूएएस 446ए यूएएस 347ए यूएएस 375ए एचडबल्यू 5216	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः 120:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाईएन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) सिंचित देर से बुआईः 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (1ध्3 एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआईः 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर केवल बुआई के समय	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः बुआई का समयः नवम्बर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में बीज दरः 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर सिंचित क्षेत्रो में देर से बुआईः बुआई का समयः दिसम्बर के पहले या दूसरे सप्ताह में बीज दरः 120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रतिबंधित सिचाई में समय से बुआई बुआई का समयः नवम्बर के पहले सप्ताह में बीज दरः 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

(5) उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र

यह गेहूं के कुल 4 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ गेहूं के उत्पादन का 3 प्रतिशत इस क्षेत्र द्वारा योगदान दिया जाता है। इस क्षेत्र में बोई जाने वाली गेहूं की किस्मे, उर्वरक की मात्रा, बुआई का समय आदि निम्नलिखित हैः–

क्षेत्र का नाम एवं गेहूँ का क्षेत्रफल	क्षेत्र के अंतर्गत राज्य	नवीनतम संस्तुत किस्मे	उर्वरक की मात्रा	बुआई का समय
उत्तर पहाडी क्षेत्र (एनएचजेड) 9.0लाख हे.	जम्मू एवं कश्मीर (ऊना व पाटा घाटी को छोड़कर) हिमाचल प्रदेश (ऊना व पोंटा घाटी को छोड़कर) उत्तराखंड के पहाड़ी (तराई क्षेत्र को छोड़कर), और सिक्किम०	वर्षाधारित क्षेत्रो में अगेती बुआई : एचएस 542, एचपीडबल्यू 251, वीएल 829. वर्षाधारित/सीमित सिंचाई क्षेत्रो में समय से बुआई : एचपीडबल्यू 349, एचएस 507, वीएल 907, वीएल 804. वर्षाधारित क्षेत्रो में देरी से बुआई : एचएस 490, वीएल 892, एचएस 420. अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रो के लिए : वीएल 832, एचएस 375.	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआईः 120:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय) सीमित सिचाई में देर से बुआईः 90:60:40 किलोग्राम एनपीके प्रति हेक्टेयर (एक तिहाई एन बुआई के समय और बाकी दो हिस्से पहले और दूसरे पानी के समय)	सिंचित क्षेत्रो में समय से बुआई बुआई का समयः नवम्बर के पहले सप्ताह में बीज दरः 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर सीमित सिचाई में देर से बुआई बुआई का समयः दिसम्बर के पहले सप्ताह में बीज दरः 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

सारांश

भारत में घटते जल संसाधन वाले क्षेत्रों के लिए उच्च जल उपयोग दक्षता वाली गेहूँ की प्रजातियों की पहचान

राज पाल मीना, कर्णम वेंकटेश, सेंधिल आर, रिंकी, आर.के. शर्मा, एस. सी. त्रिपाठी एवं ज्ञानेद्र प्रताप सिंह

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

भारत में 30 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में सिंचित गेहूँ की सघन खेती होती है, जो भूजल संसाधनों में गिरावट का मुख्य कारण है विशेष रूप से उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में। यह स्थिति तत्काल प्रभाव से तकनीकी हस्तक्षेप करके गेहूँ की जल उत्पादकता में सुधार करने की आवश्यकता पर बल देती है। इस दिशा में कार्य करते हुए गेहूँ की 71 प्रजातियो का अध्ययन अधिक जल उत्पादकता के लिए किया गया, जिसमें ड्रिप सिंचाईं प्रणाली की सहायता से नमी के विभिन्न स्तर (80 एवं 60 सी.पी.ई.) निर्धारित किये गए। इन 71 प्रजातियो में से श्रेष्ठ 16 प्रजातियो का चयन विस्तृत अध्ययन के लिए किया गया। सीमित सिंचाई उपचार ड्रिप सिंचाई के माध्यम से लगाए गए ताकि तय जल की मात्रा जड़ क्षेत्र में सुनिश्चित की जा सके। गेहूँ की जल उत्पादकता, बायोमास, हार्वेस्ट इंडेक्स, हजार दानो का वजन, प्रति वर्ग मीटर कल्लो की संख्या, पत्तियों में क्लोरोफिल की मात्रा, सापेक्ष जल की मात्रा का विस्तृत अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में यह पाया गया की बेहतर हार्वेस्ट इंडेक्स अधिक जल उत्पादकता के लिए जरुरी है। इस अध्ययन के द्वारा पहचान की गई उच्च जल उत्पादक प्रजातियाँ (डी.बी.डब्ल्यू. 243, डी.बी.डब्ल्यू. 166, डी.बी.डब्ल्यू. 222) शोधकर्ताओं के लिए एक उपयोगी संसाधन है, जिनका उपयोग भविष्य में विश्व स्तर पर बेहतर प्रजातियाँ विकसित करने के लिए हो सकेगा। ये बेहतर प्रजातियाँ कम से कम 20 प्रतिशत जल बचाने के अवसर प्रदान करती है, जो कि खेती की लागत कम करने में प्रत्यक्ष योगदान है तथा भूजल संसाधनों में गिरावट की रफ्तार को भी कम करेगा।

घटते जल संसाधन वाले क्षेत्रों में गेहूँ में सिंचाई प्रबंधन

राज पाल मीना, कर्णम वेंकटेश, एस. सी. त्रिपाठी, अंकिता झा, आर.के. शर्मा एवं ज्ञानेद्र प्रताप सिंह

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

गेहूँ भारत और दुनिया में दूसरी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। गेहूँ की खेती वाले क्षेत्रों में तेजी से हो रही जल संसाधनों की कमी एक प्रमुख समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए एक अध्ययन किया गया जिसमे यह देखा गया की क्या गेहूं में प्रति सिंचाई जल की वर्तमान मात्रा (60 मिलीमीटर) को कम किया जा सकता है? इस अध्ययन के लिए क्षेत्र में प्रचलित प्रसिद्ध गेहूँ की प्रजाति एच.डी. 2967 को चुना गया तथा लगातार तीन वर्षों तक कम सिंचाई जल (25 प्रतिशत एवं 50 प्रतिशत) के साथ जल उपयोग, फसल उत्पादन इत्यादि का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में गेहूँ की प्रत्येक ग्रोथ स्टेज जो मृदा नमी के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है पर तीन जल स्तर (60 मिलीमीटर, 45 मिलीमीटर एवं 30 मिलीमीटर जल की मात्रा) के साथ सिंचाई की गई जिसे विनियमित कम सिंचाई कहते है। परिणामों से ज्ञात होता है कि 45 मिलीमीटर जल प्रति सिंचाई से 60 मिलीमीटर जल प्रति सिंचाई के बराबर गेहूँ एवं बायोमास उत्पादन, हार्वेस्ट इंडेक्स, हजार दानो का वजन, प्रति वर्ग मीटर कल्लो की संख्या दर्ज की गई। परिणाम स्पष्ट करते है कि 45 मिलीमीटर जल प्रति सिंचाई लाभदायक है, इससे 25 प्रतिशत जल की बचत होती है। इस जल बचत के साथ 25 प्रतिशत बिजली तथा सिंचाई में प्रयुक्त लेबर एवं समय की भी बचत होती है।

रसभरी (*Physalis peruviana*): सीमान्त किसानों के लिए लाभदायक नकदी फसल

सौरभ पगारे[1] एवं भूमेश कुमार[2]

[1]भाकृअनुप–खरपतवार अनुसन्धान निदेशालय, जबलपुर

[2]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना भारत जैसे देश के लिए बहुत महत्व का मुद्दा है जिसके लिए खाद्य उपलब्धता और खाद्य तक सभी की पहुंच आवश्यक शर्तें हैं। खपत के पैटर्न में बदलाव के कारण, फलों, सब्जियों और अन्य सम्बंधित उत्पादों की मांग बढ़ रही है, इसलिए, फसल विविधीकरण को बढ़ाने की आवश्यकता है। ऐसी प्रजातियां जो पोषण की दृष्टि से उपयुक्त हों, पर्यावरण की दृष्टि से अच्छी तरह से अनुकूलित हों और स्थानीय रूप से स्वीकार्य हों, आहार विविधता के साथ खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। किसानों को स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों की प्रजातियों की व्यावसायिक खेती के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिन्हें अभी तक एक फसल के रूप में मान्यता नहीं दी गयी है। रसभरी की खेती एक व्यवहार्य और छोटे किसानों के लिए लाभदायक विकल्पों में से एक है। रसभरी के फल आवश्यक खनिजों और β–कैरोटीन से समृद्ध होने के कारण कुपोषण से लड़ने में मदद करते हैं। अच्छी गुणवत्ता वाले जर्मप्लाज्म का उपयोग करके और और वैज्ञानिक तरीके से रसभरी के खेती करके किसान भाई पांच महीने मे ढाई से तीन लाख रुपये की शुद्ध आय अर्जित कर सकते हैं। जो कि 2022 तक किसानों की आय के दोहरीकरण में सहायक हो सकती है

ग्रीष्मकालीन मूंगः मृदा की उर्वरा शक्ति एवं किसानो की आय बढाने हेतु एक बेहतरीन फसल

सोनू कुमार, कावेरी, सुषमा, सोनिया श्योराण, लोकेन्द्र कुमार, ओम प्रकाश अहलावत एवं अनिल खिप्पल

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

मूंग उत्तर भारत की एक प्रमुख दलहनी फसल है। यह खाद्य प्रोटीन का बहुत अच्छा स्रोत है। इसके अलावा इसमें कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्त्व व विटामिन भी होते हैं। कम समय में पकने के कारण इसे बहुफसली चक्र में आसानी से रखा जा सकता है। मूंग की फसल से फलियों की तोड़ाई के बाद पौधों को खेत में पलट कर मिट्टी में दबा देने से यह हरी खाद का काम करती है। मूंग की खेती करने से मिट्टी की ताकत में भी इजाफा होता है। मूंग को खरीफ, रबी व जायद तीनों मौसमों में आसानी से उगाया जा सकता है। उत्तरी भारत में इसे बारिश व गरमी के मौसम में उगाते हैं जबकि दक्षिणी भारत में मूंग को रबी मौसम में उगाते हैं। इस फसल के लिए ज्यादा बारिश नुकसानदायक होती है। ऐसे इलाके, जहां पर 60 से 75 सेंटीमीटर तक सालाना बारिश होती है। फलन के समय और फलियां पकते समय शुष्क मौसम व ऊंचा तापमान बहुत ज्यादा अनुकूल होता है। ग्रीष्मकालीन मूंग गेहूं, गन्ना, आलू आदि फसलो को काटने के तुरंत बाद अप्रैल माह में मूंग की बिजाई कर देनी चाहिए। मूंग की बोआई कतारों में 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए। बोने से पहले बीजों को कार्बेंडाजिम नामक कवकनाशी से उपचारित करना चाहिए। ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल लगभग 65–70 दिनों में तैयार हो जाती है। फसल की कटाई बोई जाने वाली किस्म पर निर्भर करती है। एक ही समय में पकने वाली प्रजाति जैसे पूसा विशाल एवं पूसा रत्ना में जब फसल 80 फीसदी तक पक जाती है, तो उसे जड़ से उखाड़ लेते हैं या काट लेते हैं। मूंग की औसत उपज 10 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टयर होती है। वैज्ञानिक तरीके से खेती करने पर इसकी पैदावार 15 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक ली जा सकती है ।

खाद्य जौ की कपास मे रिले क्रॉपिंग का गुणवत्ता तथा उत्पादन पर प्रभाव

अनिल खिप्पल[1], अजित सिंह खरब[1], दिनेश कुमार[1], अश्वनी कुमार[2], संजीव कुमारी[1], जोगिन्दर सिंह[1] एवं जसबीर सिंह[3]

[1]भा. कृ. अनु. प. भारतीय गेहूँ एवम् जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल

[2] भा. कृ. अनु. प. भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, करनाल

[3]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

जौ की फसल के अधिकतम उत्पादन और गुणवत्ता के लिए 2013–14 और 2014–15 मे अमरीक फार्म, हजवाना, कैथल (हरियाणा, भारत) पर कृषक सहभागिता से शोध परीक्षण किए गए। बिजाई समय तथा बीज दर के मानकीकरण के लिए मुख्य भू–भाग में चार बिजाई समय, डी1(12–18 नवम्बर), डी2 (26 नवम्बर– 2 दिसंबर), डी3 (10–16 दिसंबर) व डी4 (कपास की कटाई के बाद यानि दिसंबर का अन्तिम सप्ताह) तथा उप भूभाग में तीन बीज दर (100, 125 तथा 150 किलोग्राम प्रति हेक्टयेर) रखे गए। बिजाई के लिए बी. एच. 902 किस्म का प्रयोग किया गया। डी2 (26 नवम्बर– 2 दिसंबर) के 15 तथा 30 दिन बाद बिजाई के कारण जौ के उत्पादन में औसत आधार पर 2013–14 में क्रमशः 11.1 तथा 13.1 प्रतिशत की कमी आई । नवम्बर माह में बिजाई करने से सांख्यिकीय आधार पर बराबर पैदावार प्राप्त हुई। डी1 व डी2 में बीज दर 150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रयोग करने से सांख्यिकीय आधार पर अधिक पैदावार प्राप्त हुई। खाद्य जौ की मोटा बीज प्रतिशतता, अंकुरण प्रतिशतता, अंकुरण गति प्रतिशतता व बढ़वार सूचकांक : 1 पर डी2 (26 नवम्बर दृ 2 दिसम्बर) के बाद बिजाई करने से विपरीत प्रभाव पड़ा। नवम्बर माह के दौरान 150 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से रिले क्रॉपिंग करने पर परिवर्तनीय लागत पर अधिकतम मुनाफा और लाभ : लागत (2.45) प्राप्त हुआ ।

हरियाणा में शून्य जुताई आधारित धान–गेहूँ प्रणाली का विश्लेषण

अनुज कुमार, सेन्दिल आर, सत्यवीर सिंह, रमेश चन्द एवं मंगल सिंह

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

वर्श 2017–18 के दौरान हरियाणा के कैथल जिले के 100 नमूना किसानों के साथ अध्ययन किया गया। सर्वेक्षण आंकड़ो से संकेत मिलता है कि कुल 100 किसानों में से कुछ ने संसाधन तकनीकों जैसे शून्य जुताई (जीरो टिलेज) एवं धान की सीधी बीजाई तकनीक में से एक को या दोनों तकनीकों को अपनाया हुआ था। कैथल जिले के हजवाना, रसीना, क्यूरक एवं टीक गांव से एकत्रित किए गऐ आंकडे में पाया गया कि 99 प्रतिशत किसानों ने मुख्य व्यवसाय के रुप में कृषि का अंगीकरण किया हुआ था। साथ ही साथ अधिकांश नमूनों में किसान दुग्ध उत्पादन के लिए जानवर भी पाल रहे थे। किसानों को स्वामित्व वाली भूमि के आधार पर वर्गीकृत करने पर यह देखा गया कि 34 प्रतिशत किसान बड़ी श्रेणी में थे, जिनके पास 10 एकड से अधिक भूमि थी। जबकि 33 प्रतिशत किसान मध्यम श्रेणी के थे। लेकिन जब कुल भूमि के आधार पर वर्गीकृत किया गया तो यह 60 प्रतिशत किसानों को बड़ी श्रेणी में जबकि 27 प्रतिशत को मध्यम श्रेणी के समूह में रखा गया। सर्वेक्षण किए गए क्षेत्रों में अधिकांश किसानों (74 प्रतिशत) के लिए नलकूप ही सिंचाई का प्रमुख श्रोत था, जिसमें पानी की गुणवत्ता सामान्य थी। उर्वरा शक्ति के आधार पर भूमि को 40 प्रतिशत उच्च एवं 60 प्रतिशत मध्यम श्रेणी में रखा गया, जबकि बनावट के आधार पर भूमि 13 प्रतिशत भारी एवं 67 प्रतिशत मध्यम श्रेणी की पाई गई। कृषि विज्ञान केंद्र/राज्य के कृषि विश्वविद्यालय/भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद के विशेशज्ञ किसानों के लिए सूचना का मुख्य श्रोत, जबकि टेलीविजन एवं समाचार पत्र किसानों की जानकारी के प्रमुख श्रोत थे। किसानों द्वारा सीधी बीजाई तकनीक के 4 प्रतिशत अपनाये जाने को छोड़कर, जीरो टिलेज पद्धति का अंगीकरण शत प्रतिशत देखा गया। टर्बो हैप्पी सीडर (सीधी बीजाई तकनीक) के किराये की दर 900 से 1000 रुपये प्रति एकड़, जबकि जीरो टिलेज ड्रिल के किराये की दर 600 से 700 रुपये प्रति एकड़ के मध्य थी। अधिकांशतः किसानों ने गेहूँ की उन्नत किस्में एच डी 2967 (98 प्रतिशत) एच डी 3086 (52 प्रतिशत) एवं अन्य प्रजातियों (15 प्रतिशत) की बीजाई जीरो टिलेज पद्धति के तहत की। इस पद्धति के अंतर्गत औसतन क्षेत्रफल 11.79 एकड़/किसान था जबकि

पारम्परिक पद्धति के तहत 2.08 एकड़ / किसान देखा गया। किसानों द्वारा जीरो टिलेज पद्धति को अपनाने का सकारात्मक प्रभाव धन एवं समय की बचत, मंडूसी का प्रबन्धन, ईंधन की बचत तथा अंकुरण पर देखने को मिला। कैथल जिले के क्यूरक एवं टीक गांव के टाइम लाइन विश्लेषण से पता चलता है कि वर्ष 1997–98 से इस पद्धति / जीरो टिलेज मशीन को अपनाने की प्रवृति स्पष्ट रुप से बढ़ रही है। साथ ही इस तकनीक के अंगीकरण से मृदा में कार्बनिक तत्वों की मात्रा में वृद्धि, मृदा की जलधारण एवं जल अवशोषण क्षमता में सुधार, भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार, फसल का कम गिरना तथा अंतस्थ ताप से बचाव आदि कुछ अन्य महत्वपूर्ण फायदे भी दर्ज किये गये। इस तकनीक से परंपरागत तकनीक की तुलना में 2–3 कुंतल / एकड़ अधिक उपज प्राप्त की, साथ ही साथ खेतों में खरपतवार का प्रकोप भी कम देखने को मिला।

धान की सीधी बीजाई तकनीक का पानी व समय की बचत पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिला। अध्ययन में पाया गया कि पारंपरिक विधि (पौध रोपाई) की तुलना में धान की सीधी बीजाई से लगभग 50 प्रतिशत पानी की बचत हो जाती है। धान के कुल 100 नमूना किसानों में से 60 किसानों ने धान की सीधी बीजाई तकनीक को अपनाया हुआ था और अधिकतर किसानों ने सीधी बीजाई तकनीक के तहत सभी प्रकार की किस्में जैसे–पूसा 1121, हाइब्रिड पूसा 1509 एवं सी एस आर 30 का प्रयोग किया हुआ था। अधिकांश किसानों ने सुझाव दिया कि इस तकनीक को प्रचलित करने के लिए अनुदान पर मशीन की उपलब्धता आवश्यक है, अगर किसान धान की सीधी बीजाई के बाद टर्बो हैप्पी सीडर से गेहूँ की बीजाई करते हैं तो 5000 से 6000 रुपये प्रति एकड़ की दर अतिरिक्त आय ले सकते हैं। अभियान एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम् से इन दोनों तकनीकों के लाभों के बारे में किसानों को जागरूक करने की आवश्यकता है। इन दोनों ही मशीनों पर सरकारी अनुदान देकर अधिक से अधिक किसानों को प्रेरित व लाभान्वित किया जा सकता है। धान की सीधी बीजाई तकनीक के विस्तार को बढ़ावा देने के लिए चैंपियन किसानों एवं उनके विस्तार कार्यकर्ताओं को विकसित करने की आवश्यकता है। आने वाले वर्षों में फसल अवशेषों को जलाने से रोकने के लिए, जीरो टिलेज तकनीक अपनाने हेतु राज्य के किसानों को प्रेरित किया जाना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में गेहूँ एवं जौ के संवेदनशील क्षेत्रों में उपज अंतराल, संसाधन उपयोग तथा अनुकूल रणनीति की पहचान

सेन्दिल आर, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, मंगल सिंह एवं रमेश चन्द

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

वर्ष 2018 के दौरान बिहार के मुजफ्फरपुर एवं वैशाली जिले (200 गेहूँ के उत्पादक) में एक सर्वेक्षण किया गया, जो कि गेहूँ एवं जौ उत्पादन के सम्बन्ध में जलवायु परिवर्तन के अनुसार वर्गीकृत किए गए राज्यों में उच्च संवेदनशील क्षेत्र के अंतर्गत आता है। गेहूँ उत्पादन पर एकत्रित किए गऐ आकड़ों के साधारण प्रतिशत, सूचीवद्ध एवं चित्रमय विश्लेषण से संकेत मिलता है कि गेहूँ उत्पादन में तकनीकी दक्षता का पता लगाने के लिए **डाटा इन्वेलपमेंट विश्लेषण** (डीईए) का उपयोग किया गया। गेहूँ उत्पादन में संवेदनशील अवस्थाओं की पहचान के लिए प्रतिगमन (रिग्रेशन) का दो चरणों में इस्तेमाल किया गया। बिहार के मुजफ्फरपुर एवं वैशाली जिलों की कुल परिचालन जोत में फसल की हिस्सेदारी क्रमशः 51.14 प्रतिशत एवं 46.62 प्रतिशत था। कुल मिलाकरए बिहार में औसतन गेहूँ की फसल 2.85 एकड़ प्रति खेत (50.62) पर थी। मुजफ्फरपुर एवं वैशाली जिले में उपज अन्तराल–1 नकारात्मक जबकि वैशाली जिले में उपज अन्तराल–2 उच्चतम पाया गया। यह परंपरागत ज्ञान और सिद्धान्त के विरूद्ध है कि उपज अन्तराल–1 प्रयोगात्मक पैदावार जोकि किसानों की संभावित उपज नकारात्मक थी। उपज अन्तराल हमेशा प्रबन्धन एवं रणनीतियों के सामंजस्य में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है। संसाधन उपयोग के प्रतिमान (पैटर्न) का विश्लेषण यह दर्शाता है कि बिहार के मुजफ्फरपुर एवं वैशाली जिलों के बीच संसाधनों के उपयोग में महत्वपूर्ण अन्तर मौजूद है। बीजाई के समय प्रयोग किया गया बीज सिफारिश की गई मात्रा से अधिक था। सभी चयनित खेतों में उर्वरकों का उपयोग सिफारिश की गई मात्रा से कम या अधिक किया गया था। सभी आदानों के मध्य, खाद / जैव–उर्वरकों पर किए गए व्यय में महत्वपूर्ण अन्तर देखा गया। डाटा इन्वेलपमेंट विश्लेषण (डीईए) से पता चलता है कि गेहूँ उत्पादक 74.28 प्रतिशत की दर से तकनीकी रुप से कुशल है। आकड़ों के विश्लेषण ईशारा करते है कि समान उत्पादन स्तर पर आदानों का स्तर लगभग 26 प्रतिशत कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह देखा गया कि उत्तरदाताओं का बहुमत 61 से 70 प्रतिशत (58 किसानों) दक्षता के अंर्तगत था। लगभग 32 गेहूँ उत्पादक तकनीकी रूप से अक्षम पाऐ गऐ, जो कि 47 प्रतिशत

संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग की संभावनाओं का संकेत देते हैं।

सर्वेक्षण से संकेत मिलता है कि पिछले 30 वर्षों में जलवायु पतिवर्तन पर किसानों की धारणा जलवायु विज्ञान से मेल खाती है, अर्थात् जिसे दीर्घकालिक प्रवृति कहा जाता है। समय के साथ–साथ तापमान एवं सूखे में वृद्धि देखी गई। लगभग 192 प्रतिक्रियाओं के अनुसार गेहूँ के क्षेत्रफल में बहुत अधिक बदलाव नही देखा गया, जबकि 56 किसानों से प्राप्त सूचनानुसार क्षेत्रीय मतभेदों के वाबजूद भूसे की उपज में किसी भी प्रकार का बदलाव हुए बिना समय–समय पर अनाज के उत्पादन में वृद्धि देखी गई। तथापि, अधिकांश किसानों (160 किसानों) ने बताया कि पिछले वर्शों में गेहूँ की बीमारियों में वृद्धि हुई है, जबकि 182 प्रतिक्रियाओं के अनुसार मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट देखी गई। किसानों में गेहूँ प्रति जागरुकता, पंहुच एवं अनुकूलन रणनीतियों को अपनाने के स्तर का पता करके सूचित किया गया।

अनुकूलन रणनीति के संदर्भ में स्कोरिंग विश्लेषण से संकेत मिलता है कि तकनीकों पर कमजोर पकड़, नई फसल किस्मों के साथ बेहतर प्रबंधन को अपनाने की निम्न दर, अधिक कार्बनिक खादों का प्रयोग, भूजल के माध्यम से पूरक सिंचाई/आवृति एवं बीमा के सम्बन्ध में जागरूकता का स्तर बहुत कम पाया गया। विशेष रुप से संरक्षण कृषि के आकड़ों के विश्लेषण बिहार में गेहूँ उत्पादकों के बीच **जलवायु स्मार्ट कृषि पद्धति** एवं अनुकूलन रणनीतियों के प्रति जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता की ओर इशारा करते हैं। प्रक्षेत्र एवं क्षेत्रीय स्तर पर गेहूँ उत्पादन की दो संवेदनशील अवस्थाऐं जैसे–उपयुक्त अनुकूलन रणनीति एवं **जलवायु स्मार्ट कृषि पद्धति** की पहचान के लिए प्रतिगमन (रिग्रेशन) का दो चरणों में इस्तेमाल किया गया।

आदिवासी उप–परियोजनाः विस्तार शिक्षा और विकास कार्यक्रमों के माध्यम से जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं आजीविका में सुधार

अनुज कुमार

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001, हरियाणा

वर्ष 2018–19 के दौरान आदिवासी उप–परियोजना (टी.एस.पी. परियोजना) के तहत् निम्नलिखित सात केन्द्रों को शामिल किया गया था जो इस प्रकार हैंः खुदवानी (जम्मू एवं कश्मीर), लाहौल एवं स्पिति (हिमाचल प्रदेश), जबलपुर (मध्य प्रदेश), बिलासपुर (छत्तीसगढ़), उदयपुर (राजस्थान), धारवाड़ (कर्नाटक) एवं रांची (झारखंड)। इस परियोजना के अर्न्तगत खुदवानी केन्द्र पर बेसलाइन सर्वेक्षण किया गया। वर्ष 2018–19 के दौरान विभिन्न टी एस पी गतिविधियों को पूरा किया गया। लाहौल घाटी (हिमाचल प्रदेश) के 40 किसानों के लिए टी एस पी परियोजना के अर्न्तगत **भा कृ अनु प** –भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल के क्षेत्रीय केंद्र लाहौल एवं स्पिति, हिमाचल प्रदेश ने अत्याधुनिक तकनीकों की शिक्षा प्रदान की।

खुदवानी, बिलासपुर, रांची, उदयपुर, धारवाड़ एवं जबलपुर केन्द्रों पर क्रमशः 10, 30, 25, 30 एवं 25 किसानों के खेतों पर समग्र सिफारिशों पर आधारित गेहूँ के अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन आयोजित किए गए। गेहूँ उत्पादन प्राद्योगिकियों पर 12 प्रशिक्षण कार्यक्रम क्रमशः खुदवानी (4), बिलासपुर (4), रांची (1), उदयपुर (1) एवं जबलपुर (2) केन्द्रों पर आयोजित किये गये। खुदवानी एवं उदयपुर केन्द्रों पर एक–एक जबकि बिलासपुर, रांची एवं जबलपुर केन्द्रों पर दो–दो किसान मेलों/प्रक्षेत्र दिवसों का आयोजन किया गया। इस दौरान 06 प्रकाशन जैसे खुदवानी (3), बिलासपुर (1) एवं जबलपुर (2) प्रकाशित किए गए। वर्ष 2018–19 के लिए **कैपीटल हेड** के तहत निधि को स्वीकृत एवं जारी किया गया है।

A Product Of
TEJ SEEDS COMPANY

TEJ SEEDS

Inderjeet Singh
Managing Director
+91-98139-51520
+91-94167-24892

Naseeb Singh
Chairman
+91-94165-96028

Producer & Supplier of :
Certified and Foundation Seeds
(Wheat, Paddy, Barley, Guar, S.S.G. (Sudan)

Near Kahlon Real Estate, Sabzi Mandi,
Shri Jiwan Nagar Road, Rania, Sirsa
e-mail : tejseedscompany@yahoo.com

KESHAV SEEDS

Kamalu Road, Raman-151301
(Bathinda) Pb.

Call : 98720-72638, 98722-16204

Punjab Seeds Company

Producer & Suppliers of Certified Foundation & Hybrid Seeds.
Gur Bazar, Giddarbaha-152101 (Pb.)

Call : 999142-30458 | 98149-30458

BEST GROW SEED FARM

Joganand (Bathinda) Punjab

Tel. : 0164-2760184 (O&R) | Mobile : 98554-60184, 98768-24164

M/S. DARSHAN SINGH & SONS

Specialist in : ZERO TILL, MULTI PURPOSE THERSHER, SEED DRILL, TROLLY, RIPPER, PULLMAN THERSHER, PLOT THERSHER ALL KINDS OF AGRICULTURAL IMPLEMENTS

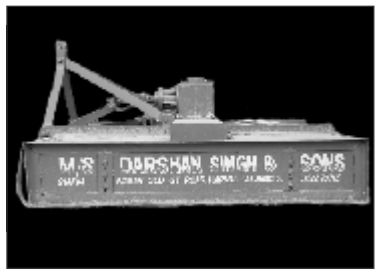

15, Sham Nagar, Near Namastey Chow, G.T. Road, Karnal-132001 (HR.)

Tel.: 0184-2262815 | M. : 098121-68515, 098122-70715

RONAK SEED FARM

Producers of Foundation, Certified & Hybrid Seeds
Malkana Road, RAMAN-151301 (BTI)

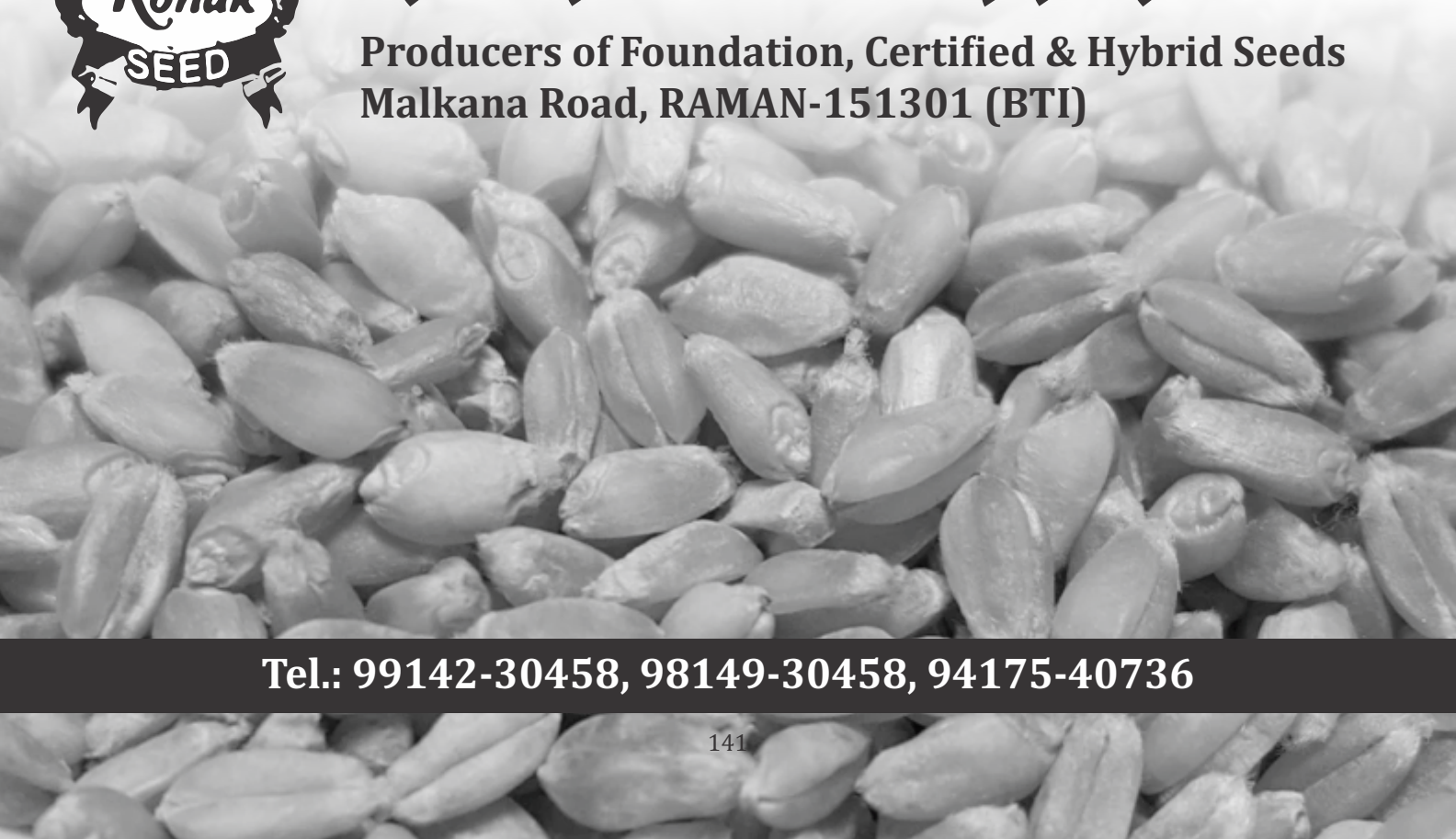

Tel.: 99142-30458, 98149-30458, 94175-40736

"COMMITTED TO FARMERS"

AN ISO 9001:2008 CERTIFIED COMPANY

हलधर सीड्स

गेहूँ , धान, उड़द, अरहर, मूंग के फाउण्डेशन एवं प्रमाणित बीजों के उत्पादक

प्रजनक एवं फाउण्डेशन बीजों से तैयार फाउण्डेशन प्रमाणित बीज

हलधर सीड्स एण्ड एग्रोटेक प्रा. लि.

इण्डस्ट्रीयल एस्टेट, जलेसर रोड, अवागढ़, एटा (उ.प्र.)

मो. 96750950409, 8006407609

E-mail: haldharseeds9@gmail.com

Shree Balaji Seeds Farm

Ind. Focal Point, Maur Road, Village Mandi Kalan
Rampura Phul-151103, Distt. Bathinda (Pb.)

Producer of Foundation & Certified Seeds of all crops

Tel.: 01651-243041, M. : 94170-22041 | 92161-43011

G SEEDS
The Seeds of Success

GEE AGRI SEEDS

Producer & Suppliers of
High Quality Agricultural Seeds.

Jakhal Road, SUNAM-148028 (Pb.)
01676-223969 (O), 223378 (R), 98145-21969 (M)

NAKSHATRA AGRO SCIENCE

Producer of Foundation, Certified & Hybrid Seeds

Kamali Road, Opp. Sham Palace, Raman-151301
(Bathinda) Punjab P. 01655-240109 (Processing Plant)

M. 94172-41409, 98788-41409, 94170-60333
E: nakshatra.rama@gmail.com

SAFAL SEED FARM

Producer of Foundation, Certified & Hybrid Seeds

Bajakhana Road, Goniana Khurd-151201 (BTI) Pb.

Mob. : 94630-89000, 84273-89000

SINGLA SEED STORE

Deals in : All kinds of seeds, Fertilizers & Pesticides

150, New Grain Market, Malout-152107 (Pb.)

Tel. : 263305, 264305 (O), Mob. : 94172-62305

Punjab Agri Seed Farms

Mansa, 151505

SINCE 1997

Producers of High-Class Foundation and Certified Seeds.

Following Wheat seeds Available:

HD-2967	HD-3086	HD-2851	HD-2733
HD-2894	HD-2932	PBW-343	PBW-373
PBW-502	PBW-550	PBW-621	PBW-677
PBW-725	DBW-17	WH-711	WH-1105
UNNAT PBW-343	UNNAT PBW-550	BARBAT	BLACK WHEAT

Contact: 98728-21669, 92167-34669, 92176-00993

Website - www.punjabagriseedfarm.com or E-mail: raman.matti@gmail.com

DASHMESH HYBRID SEEDS

A Class of Seed

WHEAT

- HD - 3086
- HD-2967
- HD - 2851
- WH-711
- WH-1105
- WH-1124
- DBW-17
- DBW-173
- UP-2338
- PBW-343
- PBW-550
- PBW-723

PADDY

- PB-6 (1401)
- PB-1728
- PB-1121
- PB-1718
- PB - 1
- PB-1637
- PB-1509
- PB-5(2511)

Office Address.: Rania Road, Shri Jivan Nagar,
Distt. SIRSA (HRY.) Ph.: 01698-272367

JASBIR SINGH
M.: 94167-00367, 98966-67067

एवन सीड्स

हिसार के शुद्ध व विश्वसनीय बीज

A-ONE HISAR

12TH K.M. STONE BALSAMAND
ROAD, HISAR-125001
9671772000

फेम सीड्स (इण्डिया)

FS INDIA

भरोसे का प्रतीक...

PRODUCER OF FOUNDATION & CERTIFIED SEEDS

Himanshu Bansal
M. 99918-50508

Wheat, Cotton, Mustard, Moong, Arhar, S.S.G., Paddy, Guar, Barley

Dayanand Rishi Vihar Colony, Opp. Swastik Gas Godown, Hisar
Email : fsindia0013@gmail.com

Rajat Bansal
M. 98022-40500

क्वालिटी सीड्स, हिसार के उन्नत व प्रमाणित बीज

Quality Seeds

खेतों की जान...
किसानों की शान...

PRIME SEEDS PVT. LTD.

Quality Hybrid Seeds Company, Hisar

Sister Concern : **Prime Seeds Pvt. Ltd.**

www.qualityseeds.in | info@qualityseeds.in | Ph. : 01662-275537, 98969-43953, 74191-77773

SHREE INTERNATIONAL SEEDS

SHREE RAM INTERNATIONAL SEEDS

Producer & Suppliers of : Certified & Foundation Seeds

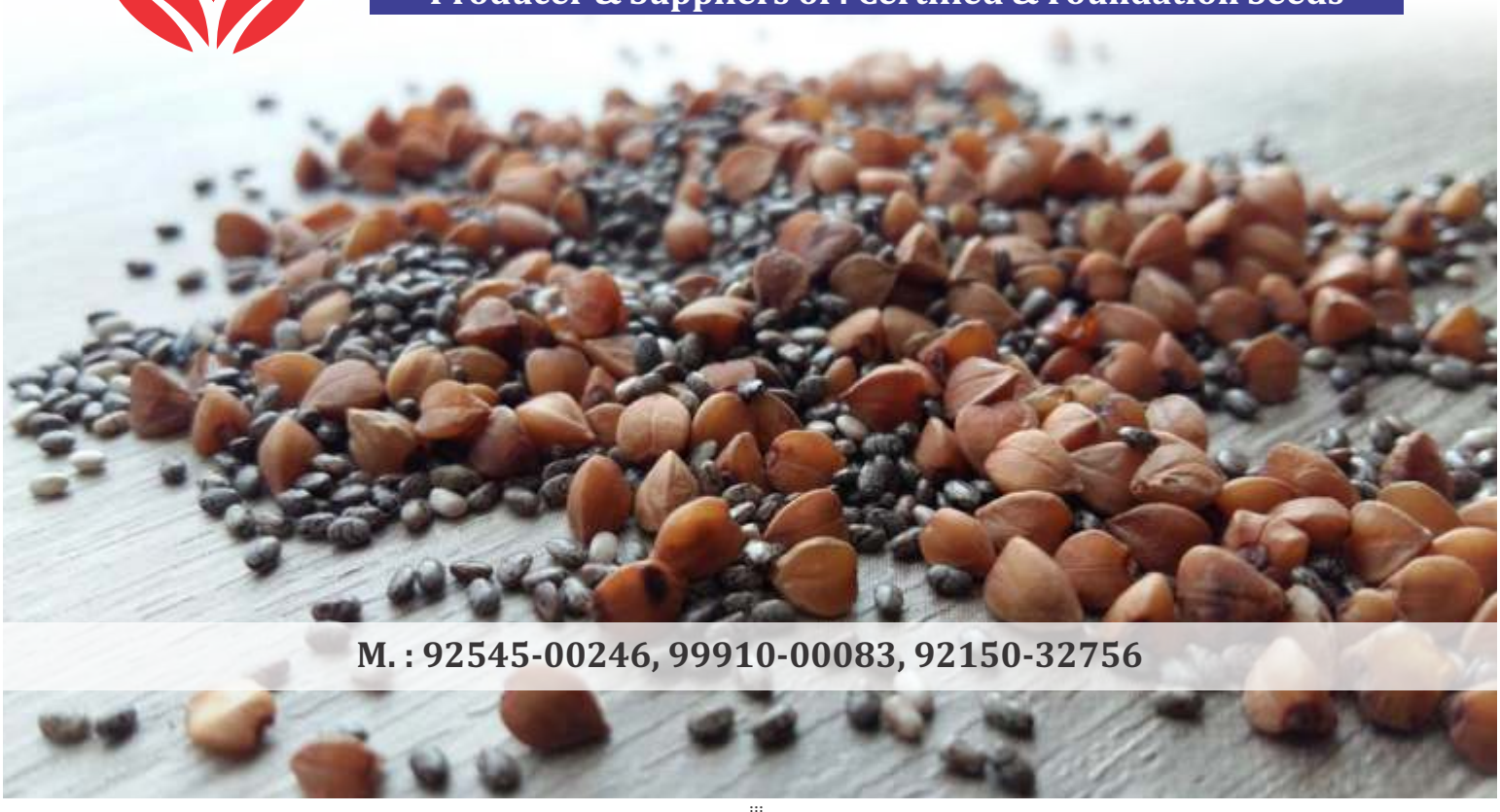

M. : 92545-00246, 99910-00083, 92150-32756

Dhanraj Dharnia Seed Co.

Mandi Dabwali - 125104

PRODUCERS OF WHEAT, PADDY & MUSTARD HIGH CLASS FOUNDATION AND CERTIFIED SEEDS

FOLLOWING WHEAT VARIETIES AVAILABLE

- HD-2851
- PBW-723
- WH-1124
- HD-2967
- PBW-725
- WH-1105
- HD-3086
- PBW-677
- WH-711

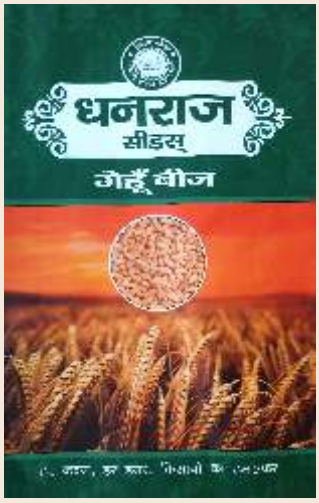

Note : MOA with
Indian Institute of Wheat and Barley Research
(Variety : Karan Vandana (DBW 187) & DBW 173

Contact us :

98960-32048, 99922-41525 vikasbishnoi355@gmail.com

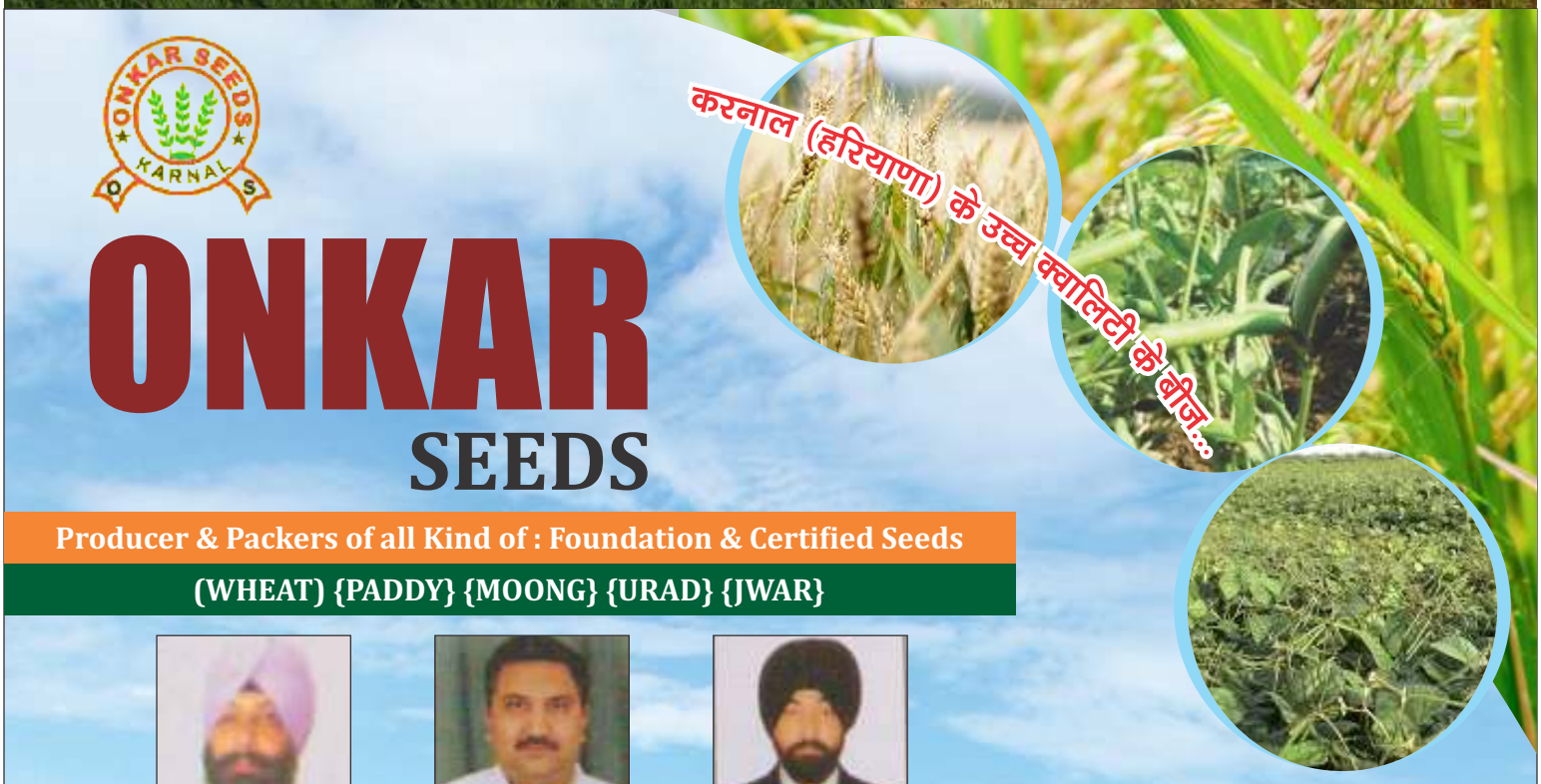

GRASIM INDUSTRIES LIMITED
UNIT - INDO GULF FERTILISERS
ADITYA BIRLA
GRASIM
TOTAL AGRI SOLUTIONS PROVIDER
Complete Solutions from Seed to Harvest
FERTILISERS
SPECIALITY FERTILISERS
QUALITY SEEDS
CROP PROTECTION
FOR MORE INFORMATION CALL US TOLL FREE NO. : 18001805244

ONKAR SEEDS KARNAL
करनाल (हरियाणा) के उच्च क्वालिटी के बीज...
ONKAR
SEEDS
Producer & Packers of all Kind of : Foundation & Certified Seeds
(WHEAT) {PADDY} {MOONG} {URAD} {JWAR}
Mohinder Singh
M. : 9813223618
Rajesh Wadhwa
M. 9896551280
Ajit Pratap Singh
M. 9896009745
Off. Vill. Gheer Block Indri (Karnal) HR | Email : onkarseeds@yahoo.com
Corporate Add. Rajesh Wadhwa - Onkar Seed, H.No. 1280, Sec-7, Urban Estate, Karnal, Hry.

JAI AGRO SEEDS

VPO Arya Nagar, Teh. & Distt. Hisar 125001 (Haryana)

M. +91-98124-36553

PAKKA SEEDS

M/s. PAKKA SEEDS

Producers of all kinds of Certified & Foundation Seeds

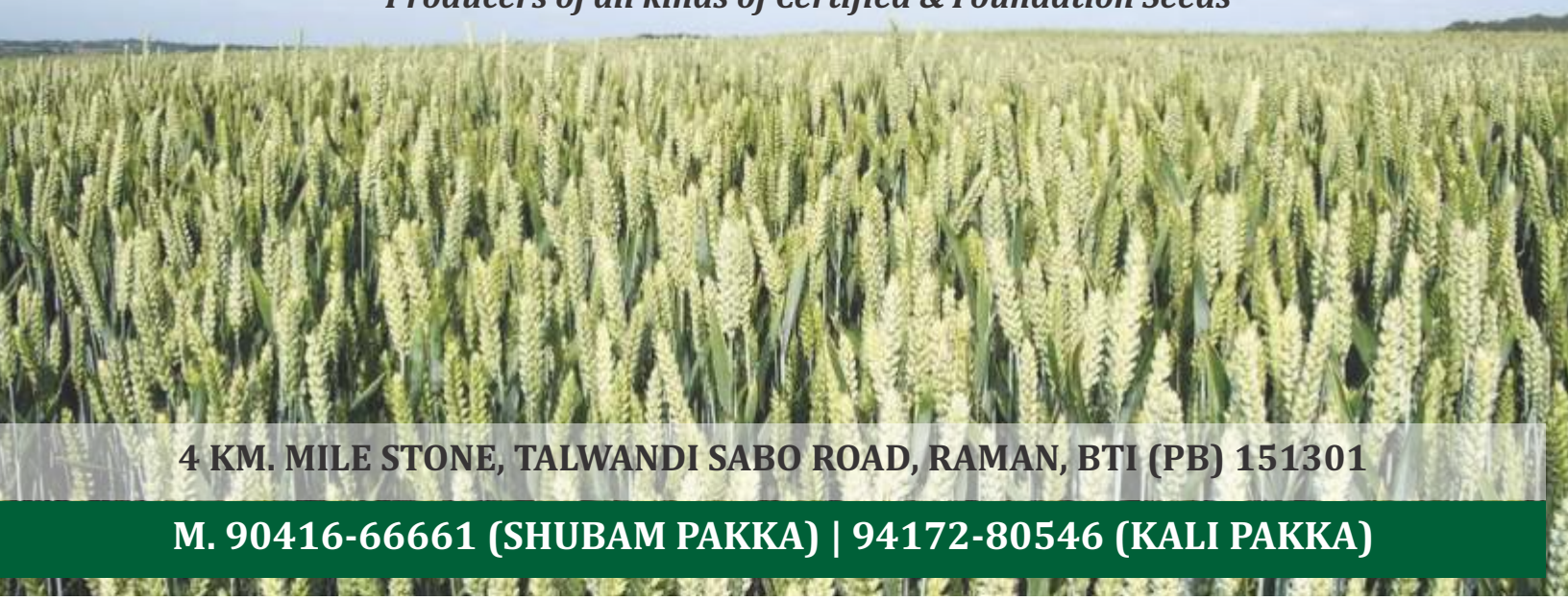

4 KM. MILE STONE, TALWANDI SABO ROAD, RAMAN, BTI (PB) 151301

M. 90416-66661 (SHUBAM PAKKA) | 94172-80546 (KALI PAKKA)

M-94170-40723 (DOCTOR)

M/s. AGGARWAL BEEJ BHANDAR

Producers of all kinds of Certified & Foundation Seeds

4 KM. MILE STONE, TALWANDI SABO ROAD, RAMAN, BTI (PB) 151301

The Malt Company

Home of Good Malt

pmv Maltings

Established almost 50 years ago, **The Malt Company (India) Pvt Ltd** and **PMV Maltings Pvt Ltd**, are a part of the **PMV Group**, which is one of **India's largest Malt and Malt Extract Manufacturers** with a **Malting Capacity** of more than **200,000 MTPA**, and **Malt Extract of 40,000 MTPA**. We believe in providing the best quality malts, malt extract, and customised malt based products by ensuring use of best quality raw materials originating from across the globe and processing it using our world-class machinery and equipment.

We offer a wide range of top quality products ranging from **Base Malts, Specialty Malts and Malt Extract for Home, Craft and Large Brew Houses.**

Our Products:

- Indian Barley Malt
- Imported Barley Malt
- Wheat Malt
- Pilsner Malt
- Pale Ale Malt
- Vienna Malt
- Munich Malt
- Biscuit Malt
- Crystal C10, C20, C30
- Roasted Barley
- Black Malt
- Chocolate Malt
- Dark Chocolate Malt
- Liquid Malt Extract
- Dried Malt Extract

Corporate Office: 702, 7th Floor Block 2, DLF Corporate Green,
Southern Peripheral Road, Sector - 74-A, Gurgaon, Haryana - 122004
0124 496 8600 marketing@pmvmaltings.com
www.pmvmaltings.com

ਕਣਕ ਦੇ ਵੱਧ ਝਾੜ ਲੈਣ
ਲਈ ਬੀਜ ਬੀਜੋ

RAMA SEEDS

BEST QUALITY SEED

ਕਿਸਾਨਾਂ ਦਾ ਸੱਚਾ ਸਾਥੀ

Seed Producing L.No. 715

RAMA SEEDS

Near Sirsa Railway Line, Talwandi Bye-Pass, **RAMAN - 151301 (Bathinda)**
Pb. Cell- 94175-00892, 94175-00897, 98554-42138
E-mail : Ramaseeds9@gmail.com

Other Concern :

Rama Seed Farm

Near Sirsa Railway Line, Talwandi Bye-Pass,
RAMAN - 151301 (Bathinda)
M. 76963-95800

गुरू गरीब दास सीड्स

सिरसा रेलवे लाईन के नज़दीक रामा पिंड

+91-76963-95800

Jindal

Agriculture & Seed Plant

JINDAL HYBRID SEED CO.

Producer, Processor & Suppliers of :-

Foundation, Certified, Truthful Seeds of

Wheat & Paddy

उच्च क्वालिटी के सुधरे बीज खरीदने

के लिए सम्पर्क करें :

M. 76969-17777, 90561-00077, 79865-77873

Bharu Road, Village Kotbhai

x

Pargat Singla
M. 93161-54590

SHREE GANESH SEEDS

Producer of Certified & Foundation Seeds

Talwandi-Rampura Road,
MAUR MANDI-151509 (BTI.) Pb.
E-mail:sgsmaur@gmail.com

FMC

Affinity®

SELECTIVE HERBICIDE

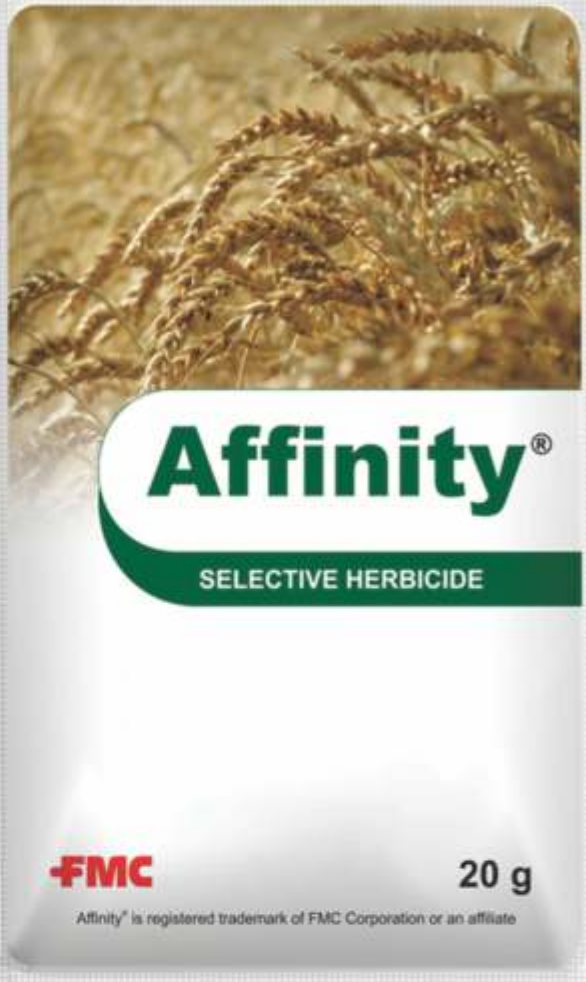

QUICK CONTROL ON TOUGH WEEDS

AFFINITY® effectively controls Broadleaved weeds with rapid action. It provides quick knockdown effect on weeds.

AFFINITY® is a registered trademark of FMC Corporation, Philadelphia, USA

PARBHAT

गेहूँ की संशोधित व नई किस्में

A STEP IN GREEN REVOLUTION

PARBHAT SEEDS

- प्रभात 72
- प्रभात 108
- एच.डी. 2967
- एच.डी. 3086
- एच.डी. 3226
- डी.बी.डब्ल्यू 222
- डी.बी.डब्ल्यू 187 (करण वन्दना)

प्रभात सीड्स

(फाउंडेशन सर्टिफाईड एवं संशोधित किस्मों के बीज उत्पादनकर्ता)

नजदीक पावर हाऊस, गांव अमीन, जिला कुरूक्षेत्र-136 038 (हरियाणा)
हैल्प लाईन : 01744-270684, 254684, pstkkr97@gmail.com